सतीसुचरित्र ।

प्रथम खंड

लेखक—
श्रोत्रिय शंकरलालात्मज
श्रोत्रिय जगदीशदत्त

प्रकाशक
श्रोत्रिय जगदीशदत्त
दीनबन्धु प्रेस
बिजनौर।
१६१६

द्वितीय संस्करण

मूल्य १)

* समर्पण *

श्री १०८ पूज्यपाद वैकुंठवासी पिता जी
(श्रोत्रिय शंकरलाल जी)
मुझ अभाग्य पुत्र को आपके जीवन में
आपकी पवित्र सेवा करने का सौभाग्य
प्राप्त नहीं हुआ सदैव आपको कष्ट
ही देता रहा। अब पवित्र
चरण कमलों में यह तुच्छ
पुस्तक समर्पित करता
हूं। कृपा कर
स्वीकार कर
के बाधित
कीजिये

विनीत—सेवक
श्रोत्रिय जगदीशदत्त

भूमिका

यदि आज अधिक नहीं तो भारतवर्ष की सौ वर्ष पहिली दशा पर आप दृष्टि पात करेंगे तो मेरा यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि आज वह भारतवर्ष ही नहीं या वह हिन्दू जाति ही नहीं जो सौ दो सौ वर्ष पहिले यहां निवास करती थी, । विशेष कर स्त्री जाति के विषय में तो यदि कोई वर्तमान दशा को देख कर सो दो सौ वर्ष पहिली स्त्रियों की वीरता, विद्वत्ता आदि पर विचार करे तो यही कहेगा कि स्त्रियों के विषय में जो कुछ इतिहासों में है वह लेखकों की विद्वत्ता मात्र है क्योंकि हमारी बहिनों में कोई गुण पहिले का शेष नहीं रहा। पराक्रम विद्वत्ता धर्मज्ञता उदारता आदि एक भी गुण दिखाई नहीं देता बल्कि आज हमारी मातएं कलह भीरुता संकीर्णता आदि दुर्गुणों की भूमि बनी हुई हैं।

पूर्वजों की वीरता, विद्वत्ता, पराक्रम आदि को पढ़ने और सुनने से कायर और निर्बल पुरुष भी आशातीत काम कर देते हैं। जैसा कि प्रसिद्ध विद्वान डाक्टर शिफर्ड ने लिखा है कि ऐसे इतिहास के पढ़ने से जिस में पूर्वजों के गुण यथावत दर्शाये गए हों संभव नहीं कि इतिहास प्रेमी युवाओं पर उत्तम और उत्तेजक प्रभाव न हो हमने इस छोटी पुस्तक में उन देवियों के पवित्र जीवनचरित्र लिखे हैं जिन्होंने प्राण अर्पण किये किन्तु धर्म को न छोड़ा और जिन्हों ने विद्वत्ता रण-कौशलता आदि में महान योग्यता दिखाकर संसार को यह दिखा दिया कि स्त्री पुरुषों से कम नहीं हैं. वह भी उसी सर्वशक्तिमान् परमात्मा की पुत्री हैं जिन के तुम पुत्र हो। और परमात्मा के दरबार सब के बराबर अधिकार।

आशा है अपनी माताओं के गुणको पढ़कर हमारी बहिनें उनका अनुकरण करेंगी लार्ड मैकाले ने कहा है— **जो जाति अपने पुरुषों के श्रेष्ठ कार्य का अभिमान नहीं करती वह कोई ऐसा कार्य नहीं करसकती जिसका भावी सन्तानको गर्व हो।** इससे पुर्वजों के चरित्र मनन करने की विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है। इस लिये आपकी सेवा में यह छोटी पुस्तक अर्पण की जाती है

उन सज्जनों का हार्दिक धन्यवाद बिना किये नहीं रहा जाता जिनकी कृपा से हमको छः मास के अन्दर ही दो बार छपने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ इसबार ३३ सतियों के चरित्र और बढ़ादिये गए हैं। आशा है इस बार भी पाठकगण ऐसी कृपा करेंगे।

भवदीय—निवेदक

श्रोत्रिय जगदीशदत्त

विषयानुक्रमणिका ।

सतीसुचरित्र ।

सं० नाम	पृष्ठ संख्या

सं० नाम | पृष्ठ संख्या

* सती-सुचरित्र *

सती अनसूया ।

हर्षि करदम जी के दो सन्तान थीं। पुत्री का नाम अनसूया और पुत्र का नाम कपिल देव था। ऋषि कपिल देव ने अपनी प्रातः स्मरणीया माता देवहुति जी के सदुपदेश से आत्मा का उद्धार किया और सांख्य शास्त्र को रचकर संसार में ज्ञान का प्रकाश किया। सती अनसूया का विवाह मुनिवर अत्रि महाराज से हुआ था। अनसूया देवी समस्त शक्तियों का उपयोग स्त्रीजाति के उद्धार सम्बन्धी कामों में करती थीं। अपने समय की पतिव्रताओं में यह सर्वश्रेष्ठ गिनी जाती थी। जब

शिव जी से पार्वती जी नें सतियों के विषय में प्रश्न किया तब उन्होंने पतिव्रताओं की गणना करते हुए अनुसूया देवी का शुभ नाम सब से प्रथम लिया था।

एक समय ऋषिवर अत्रिमुनि किसी कारण बाहर गए थे अनुसूया जी के सतीत्व की परीक्षा के लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश, भिन्न २ रूप धारण करके अत्रि मुनि के आश्रम में पधारे। अनुसूया प्रथम ही समझ गई कि यह मेरे सतीत्व की परीक्षा लेने आये हैं। अनुसूया की मन, वचन, और शरीर से अत्रि मुनि में ईश्वर समान अचल भक्ति और अनन्य प्रेम देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दत्तात्रेय रूप से अनुसूया देवी के गर्भ से जन्म लिया।

दैव कोप से एक बार महादुर्भिक्ष (अकाल) पड़ा जिसमें समस्त वनस्पति और जलाशय सूख गए। सूखे वृक्ष और निर्जल जलाशयों के कारण सम्पूर्ण वन भयंकर दिखाई देता था। घास, फल, फूल, जलादि के न मिलने के कारण समस्त मनुष्य, पशु, पक्षी आदि अत्यन्त व्याकुल थे। उसी भयंकर समय महर्षि अत्रि देव जी समाधि धा-धारण कर परमात्मा में मग्न होगए। तब सतीरत्न अनु-सूया देवी क्षुधा (भूख) पिपासा (प्यास) शीतोष्ण (सर्दी, गर्मी) सहन करती हुई अपने प्राणेश्वर महात्मा

अत्रि मुनि की सेवा में मन, वचन और कर्म से तत्पर थी। दुर्भिक्ष (अकाल) समाप्त होने में जब एक वर्ष शेष रह रह गया तब अत्रिमुनि समाधि से जागृत हुए और अनुसूया देवी को जल लाने की आज्ञा दी। पति की आज्ञा पाते ही नारीरत्न अनुसूया जी कमंडलू लेकर जल लेने के लिये चलीगई।

शीघ्रता से जाती हुई अनसूया को देख कर किसी स्त्रीने आवाज़ देकर कहा—हे पतिव्रते ! इतनी शीघ्रता से इस भयंकर समय में कहां जारही हो। इन कोमल चरण कमलों को इस गर्मी के समय क्यों कष्ट दे रही हो अयि ! देवि ! यह तप्तवायु (लू) तुम्हारे सुकोमल श-शरीर को कष्ट देरहा है। ऐ कृशाङ्गि ! इस प्रकार क्यों अपने अनूपम सुन्दर और कोमल शरीर को कष्ट दे रही हो।

इन सहानुभूति पूर्ण मधुर वचनों को सुनकर पति परायणा अनसूया देवी ने पीछे को विना देखे ही कहा—हे ! सखी आप कौन हैं और किस शुभ स्थानको पवित्र करती हैं (अर्थात् कहां पर रहती हैं) तथा इस वन को किस कारण पवित्र किया। क्षमा कीजिये मैं आपको पहि-चानती नहीं हूं और इस समय मुझे इतना समय

नहीं है कि आपका आतिथ्य करूं। अभी जल लाकर आपका अतिथि सत्कार करूंगी उस समय तक आप यहां पर ही पधारिये। क्योंकि पतिसेवा में देरी होने के कारण मैं इस समय आपका दर्शन और परिचय प्राप्त करने के लिये रुक भी नहीं सकती।

अनुसूया के यह सारगर्भित मधुर वचन सुनकर उस देवी ने कहा—देवी अनुसूया चिरकाल के दुर्भिक्ष के कारण सौ कोस तक भी कहीं जल नहीं है आप इस समय वृथा कष्ट न उठायें।

आगन्तुक देवी के यह वचन सुन कर अनुसूया अत्यन्त व्याकुल होगई और परमात्मा से इस प्रकार प्रार्थना करने लगी है! देवाधिदेव जगत्प्रभो! हाय २ मेरे जीवन को धिक्कार है, जो अपने प्राणेश्वर की शुद्र आज्ञा का भी पालन करने में असमर्थ मालूम होती हूँ। हे सर्व शक्तिमान् परमात्मन्! क्या सत्य ही मैं स्वामी के लिये जल प्राप्त नहीं कर सकूंगी। शोक है कि आज प्राणनाथ वर्षों वाद समाधि से जाग्रत हुए है और आज भी मैं हतभाग्या उनकी सेवा को पूर्ण नहीं कर सकूंगी। हे मोक्ष दात्री गङ्गे जननि! पावनी यमुने! मैं आपकी पुत्री स्वामी के लिये क्या जल प्राप्त न कर सकूंगी। हे माते

श्वरि ! गङ्गे ! मुझे मोक्ष की इच्छा नहीं और न मुझे किसी सांसारिक ऐश्वर्य्य की ही इच्छा है । हे जगज्जननी यमुने ! आपही मेरे ऊपर दया करें हे ! परमेश्वर मैंने ऐसा क्या अपराध किया था जो मुझे आज यह महान कष्ट मिल रहा है । हे ! दयानिधि ! दीनबन्धो ? आप सर्व शक्ति मान हैं आप असंभव को संभव कर सकते हैं जड चेतन आपके अधीन हैं । हे ! प्रभो ! स्वामी ने मुझे जल लाने की आज्ञा दी और मैं मन्दभाग्या उनके लिये जल प्राप्त नहीं कर सकी क्या इस समय शुष्क भूमि में जल उत्पन्न करना आपकी शक्ति से बाहर है कदापि नहीं । अयि मात गङ्गे ! यदि मेरा पतिव्रत अक्षुण्य है और मैंने आज तक सच्चे चित्त से पति सेवा की है तो प्राणनाथ के लिये जल देने की कृपा कीजिये । मुझे किसी लौकिक और पारलौकिक सुख की इच्छा नहीं है । केवल मेरी आन्तरिक इच्छा पति के लिये जल की है ।

धन्य हैं वह देवियाँ जो पति की प्रसन्नता के सामने लौकिक और पारलौकिक सब सुखों को हेय समझती हैं । धन्य है वह पुण्य देश जहां ऐसी सच्ची आदर्श पतिव्रता हों जिन के महान् पुण्य वश भक्तवत्सल परमात्मा भी हों ।

अनुसूया देवा के इन मर्मभेदी एवं भावपूर्ण वाक्यों को सुन कर आगन्तुक देवी जिसने कि पीछे से कहा था कि क्यों वृथा जल के लिये श्रम करती हो पास आकर कहा प्रियपुत्रि अनसूये ! क्यों शोक कर रही है मैं तेरे अपूर्व पतिव्रत से प्रसन्न होकर तेरे पास आई हूं। मैं भागीरथी गंगा हूं। यहां पर गढ़ा खोद तुझे यथेष्ट जल मिलेगा।

भगीरथी के यह आशा जनक वचन सुनकर अनुसूया की विन्हलास्था दूर हुई और उसने शीघ्रता से गढा खोदकर कमंडलू को जल से भर भागीरथी देवी से प्रार्थना पूर्वक कहा हे ! मातेश्वरि ! देवि ! भागिरथी ! आपके शुभ आगमन के पवित्र समाचार जब स्वामी जी सुनेंगे तब उन्हें आपके दर्शन की इच्छा होगी अतएव मैं आप से नम्रता पूर्वक निवेदन करती हूं जबतक मैं तृतीय वार न आऊँ कृपया उस समय तक आप इस पुण्य शीला भूमि को सुशोभित करें। भागीरथी ने कहा देवि ! तुम अनन्य पतिव्रता हो यदि अपने एक वर्ष के पातिव्रत का फल मुझे दो तो मैं यहां रहूंगी।

अनुसूया यह स्वीकार कर जल लेकर पति के पास चली गई। अमृत समान मधुर एवं सर्वरोघ्न जलपान कर

के महर्षि अत्रि ने अनुसूया देवी से पूछा कि यह जल कहां से लाई हो अनसूया ने समस्त वृत्तांत सुनाया जिसको सुनते ही मुनिवर अत्रि जी दर्शन के लिये वहां गए। दर्शन करके अत्रि मुनि ने गंगा जी से अपने आश्रम को सुशोभित करने की प्रार्थना की जिसके उत्तर में भगवती भागीरथी जी ने कहा "यदि आपकी भार्या आदर्श पतिव्रता अनुसूया देवी अपने एक वर्ष के पातिव्रत का फल मुझे दें और शिव जी यहां पर रहना स्वीकार करें तब मुझे प्रसन्नता पूर्वक अनुसूया पास रहना स्वीकार है क्योंकि इसके समान मुझे अन्य कोई स्थान उत्तम नहीं मालूम होता।

अत्रि मुनि नें आज्ञानुसार शिव जी को प्रसन्न करके आश्रम में रक्खा गङ्गा जी नें वहां पर रहना स्वीकार किया (दक्षिण में अत्रीश्वर महादेव और अत्रि गंगा का स्थान अबतक है बड़े २ अकालों में भी वहां का जल नहीं सूखता)

एक समय माण्डव्य ऋषि ने सती नर्मदा के पति कौशिक जी को श्राप दिया कि सूर्योदय होते ही तेरी मृत्यु होजायगी। यह हृदय विदारक समाचार नर्मदा देवी नें सुनते ही अपने पातिव्रत के बल से सूर्य्योदय का होना ही बन्द कर दिया। सूर्य्योदय के न होने पर सर्वत्र हा

हा ! कार मच गया । तब इन्द्रादि देवता महा सती अनु-सूया के पास गए और प्रार्थना कि —हे पतिव्रता शिरोमणि ! अनसूया देवी ! सती नर्मदा देवी नें अपने पतिकी प्राणरक्षा के लिये सूर्य्योदय को रोक दिया है जिसके कारण सर्वत्र प्राणी मात्र अत्यन्त दुःखी त्राहि २ कर रहे हैं । आपके सिवाय इस महान् विपत्ति को दूर करनें में कोई समर्थ नहीं है इस लिये आप कृपा करके अपने पाति-व्रत बल से इसका उपाय कीजिये । देवताओं की इस प्रा-र्थना को सुन कर पतिपरायण अनुसूया देवी नें धैर्य्य देते हुए कहा—हे देवताओ ! आप कोई चिन्ता न करें मैं पतिव्रता नर्मदा देवी की इच्छानुसार आप की आज्ञाका पालन करनें का प्रयत्न करूँगी । यह सुन कर देवता प्रसन्न चित्त अपने २ स्थान को गए और अनुसूया देवी प्रतिष्ठानपुर नगर को नर्मदा देवी के घर गई ।

सौभाग्यवती प्रातः स्मरणीया सती नर्मदा नें अनसूया का अत्यन्त अतिथि सत्कार किया । तत्पश्चात् अनसूया बोलीं अयि नर्मदे ! तुम अपने प्राणेश्वर के पुनीत (पवित्र) चन्द्र मुख दर्शन करती हुई आनन्द पूर्वक तो हो । कुलांगानाओं का परम धर्म अपने स्वामी की चरण सेवा है । जिनको सास श्वसुर तीर्थ स्वरूप और नंन्द भगिनी स्वरूप हैं ।

जिठानी माता समान तथा देवर पुत्र देवरानी पुत्री समान है जो शील को धन सम्पूर्ण स्त्रियों को सखी समझती है। जो कोढ़ी तथा निर्धन पति की मन, वचन, और शरीर से सेवा करती है। ऐसी पुण्यवती स्त्रियों से देव दानव और परमेश्वर प्रसन्न रहते हैं। लौकिक और पारलौकिक सिद्धियां हर समय ऐसी स्त्रियों के पास रहती हैं। गुण सम्पन्न स्त्रियां को ही कुलवती, मानवती, पतिव्रता समझना चाहिये। प्रियपुत्रि ! आप में यह सब स्वाभाविक गुण हैं इसलिये तुम सब सतियों में श्रेष्ठ और पूज्य हो। आप किस के लिये आदर्श और वन्दनीय नहीं हो। धन्य हैं तुम्हारे माता पिता जिन्होंने तुम जैसी पतिपरायण देवी को जन्म दिया। धन्य २ यह भूमि जो आपके चरणों से पवित्र एवं सुशोभित होती है। इस प्रसंशा को सुन कर नर्मदा यह बोली। तीनों लोकों की भूषण मातः ! भगवति अनसूये ! मैं आपके समान सतियों की दासी हूं आप मुझ क्षुद्र दासी की इतनी प्रशंसा करके क्यों वृथा लज्जित करती हो। मैं आप की इस गुण ग्राहता की अत्यन्त कृतज्ञ हूं। वास्तव में यह मेरे लिये सौभाग्य और प्रशंसा के योग्य समय है कि आपने कृपा कर इस स्थान को पवित्र किया और दासी को दर्शन

देकर कृतार्थ किया है। बृहस्पति, शुक्राचार्य्य, वाल्मिकी व्यास आदि कवि और मुनि ही जब आपकी प्रसंशा नहीं कर सके तब मैं क्षुद्र क्या प्रसंशा कर सकती हूं। दया करके यह बताईये कि आपने यहां आने का क्यों कष्ट उठाया है दासी से कोई सेवा लेने की कृपा कीजिये। इस प्रकार नम्र भाव से प्रार्थना करते देख कर अनसूया देवी बोली—पुत्रि ! नर्मदे ! मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। और एक बात कहती हूं आशा है तुम अवश्य मानोगी क्योंकि इसमें संसार का उपकार होगा।

नर्मदा—मातः ! ऐसी कौन आज्ञा है जिसको मैं पालन न करूंगी आप निःसंकोच होकर कहिये।

अनुसूया—पुत्रि तुमने जो अपने पति की प्राण रक्षा के लिये उपाय किया है उससे प्रजा को अत्यन्त दुःख है सो ऐसा उपाय करो जिससे प्रजा के दुःख दूर हों।

नर्मदा—भगवति ! मातः ! अनसूये ! मांडव्य मुनि के शापसे सूर्योदय होने पर स्वामी का अमंगल होने की संभावना है इसलिये मैंने यह उपाय किया है। अब यदि आप की ऐसी इच्छा है तो आपकी आज्ञा पालन करूंगी।

अनुसूया—पुत्रि तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो। जब तुम अपने ऊपर विपत्ति लेना स्वीकार करती हो तो

न्यायकारी दयालु परमेश्वर तुम्हारी रक्षा करेंगे। मैं भी मैं अपने सतीत्व के प्रभाव से तुम्हारे पति की प्राण रक्षा करूंगी। अनसूया के इन वचनों को सुकर सती नर्मदा ने परमेश्वर से प्रार्थना कर प्रजा के हितार्थ सूर्य्योदय किया अनुसूया ने अपने पतिव्रत के बल से नर्मदा के पति की रक्षा की। जिस को देख कर समस्त देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और सर्वत्र जय२ कार की ध्वनि हुई।

रामचन्द्र जी वनवास में जब अत्रि मुनि के आश्रम में गए तब अनुसूया ने सीता जी को निम्न लिखित उपदेश दिया था।

कह ऋषि वधू सरल मृदुबानी।
नारि धर्म्म कछु व्याज बखानी॥
मात पिता भ्राता हितकारी।
मित सुखप्रद सुन राजकुमारी॥
अमित दान भर्ता वैदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपतिकाल परखिये चारी॥
वृद्ध रोगवश जड धन हीना।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥

ऐसेहु पतिकर किये अपमाना ।
नारि पाव यमपुर दुख नाना ॥
एक धर्म्म एक व्रत नेमा ।
काय वचन मन पति पद प्रेमा ॥
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं ।
वेद पुराण सन्त अस कहहीं ॥

दोहा—उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहौं समुझाय ।
आगे सुनहिं ते भवतरहिं, सुनहु सीय चितलाय ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं ।
स्वप्नेहु आन पुरुष जगनाहीं ॥
मध्यम परपति देखहिं कैसे ।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं ।
सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं ॥
विन अवसर भयते रहजोई ।
जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पतिवंचक परपति रति करई ।
रौरव नरक कल्प शत परई ॥
क्षण सुख लागि जन्म शत कोटी ।
दुख न समझ तेहि समको खोटी ॥

बिनश्रम नारि परमगति लहई ।
पतिव्रत धर्म छांड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई ।
विधवा होई पाई तरुणाई ॥

अरुन्धती ।

सती अरुन्धती का पाणिग्रहण महर्षि वशिष्ठ के साथ हुआ था । अपने पति महर्षि वशिष्ठ से इसने वेद, वेदांत, न्याय नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा पाईथी यह अपने समय में अनन्य पतिव्रता और विदुषी गिनी जाती थी । यह दम्पति [जोड़ा] अत्यन्त धर्म्मनिष्ठ था । आदि में अरुन्धती व्यवहार परायण स्त्री थी किन्तु पश्चात् आत्मज्ञान होने पर तपस्विनी होगई थी । मुनिवर वशिष्ठ जी के साथ इसने मुनिवेष धारण कर हिमालय पर्वत पर तपश्चर्या की थी । आत्मा का अनादित्व और अविनाशशीलत्व जगत् की क्षणभंगुरता पञ्चभूत निर्मित शरीर की अस्थिरता आदि विषयों

का उसने मुनि वशिष्ट के साथ अनुशीलन किया था। ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान तथा शारीरिक, मानसिक धर्मों का ज्ञान प्राप्त कर उसका पुनः प्रकाश कर आर्य्य जाति का ध्यान दिलाया था। इस ज्ञान को सनकादि महामुनि ही जानते थे। गृहस्थ धर्म का प्रचार औद्योगिक शिक्षा प्रचार भी अरुन्धती ने पूर्णतः किया था। अपने सद्व्यवहार से वह मुनिराज वशिष्ट जी को बहुत प्रिय थी और उससे वशिष्ठ जी सदैव प्रसन्न रहते थे। अरुन्धती के गर्भ से अनेक पुत्र हुए किन्तु उनका विश्वामित्र के हाथ से मारे जाने के कारण स्वर्गवास होगया था। केवल एक पुत्र शक्ति नामक शेष रहा था इसको शिक्षा देकर अरुन्धती ने विद्वान् और ज्ञानी बनाया था शक्ति के भी एक पुत्र था जो कि महर्षि पाराशर का पिता था। कलियुग में पाराशर की स्मृति माननीय है। अरुन्धती ने अपने सद्व्यवहार और विद्या के कारण संसार में यहां तक प्रतिष्ठा और ख्याति प्राप्त की थी आज तक विवाह मन्त्र में कन्या प्रार्थना करती है कि "हे अरुन्धती मैं भी तेरे समान पति-परायण बनूं यह ही मेरी इच्छा है।" आज नहीं तो लाखों वर्ष पश्चात् भी उसकी कीर्ति पूर्ववत् हैं। किसीने सत्य कहा है 'कीर्तिं यस्यः जीवति' अर्थात् कीर्तिवान् पुरुष जीवित है।

सती अहिल्या देवी

अब हम उस महा सती का संक्षिप्त जीवन लिखते हैं जिस के स्मरण मात्र से महा पातक भी नष्ट होजाते हैं जैसा कि कहा है "अहिल्या द्रोपदी तारा कुन्ती मंदोदरी तथा। पंच कन्या स्मरेन्नित्यं महापातक नाशकम् ॥१॥ अर्थात्—अहिल्या, द्रोपदी, तारा, कुन्ती, और मन्दोदरी इन पांच कन्याओं केस्मरण से महापातक भी नष्ट होजाते हैं।

ब्रह्मा जी ने सृष्टि के आदि में एक मात्र आदर्श पति परायणा अहिल्या नाम्नी कन्या उत्पन्न की। और उसका विवाह महामुनि गौतम के साथ किया। महर्षि गौतम परम तपश्चर्या और तत्वज्ञान की प्रबल शक्तियों द्वारा सम्पूर्ण ऋषियों में मुख्य समझे जाते थे। सती अहिल्या के आने पर इनका घर देव गृह या स्वर्ग धाम बन गया। अहिल्या पतिगृह में आकर पतिसेवा, शास्त्रानुसार सद् व्यवहार और तपश्चर्या में लगी रहती थी। उसके शतानन्द नामक पुत्र और अंजनी नाम्नी पुत्री थी यह दम्पति प्रेम, विद्या तपश्चर्यादि के कारण संसार में

आदर्श माना जाता था जिस की कीर्ति आज भी संसार में फैल रही है। संसार की लीला अत्यन्त विचित्र है।

संसार रूप नाटक में जिस पात्रको इस समय राजा देखते हैं वही फकीर दिखाई देता है। और फक़ीर राजा दिखाई देते हैं। सारांश यह है कि सुखी को दुःखी और दुःखी को सुखी होते कुछ देर नहीं लगती। किन्तु आश्चर्य्य का विषय है जो कि बड़े धर्मात्मा और विद्वान् जिनको स्वप्न में पाप की इच्छा उत्पन्न नहीं हुई उनको महान् कष्ट में देखते हैं। इसी संसार चक्र में आज अहिल्या की भी परीक्षा का समय उपस्थित है। जिस महान् पाप की सती अहिल्या के विषय में कोई संभावना भी नहीं कर सकता उसी पाप के धोके में आकर त्रिकाल दर्शी महात्मा गौतम मुनि भी अपनी निरापराध प्राण प्रिया अहिल्या को श्राप देकर महा कष्ट के कूप में धक्का देते हैं। किसी कविने ठीक कहा है:—"प्रायः समापन्न विपत्ति काले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति" अर्थात् आपत्ति काल के आने पर मनुष्यों की बुद्धि मलीन होजाती है।

ईश्वरेच्छा से इन्द्र महाराज के चित्त में अहिल्या के विषय में पाप उत्पन्न होगया और वह महर्षि गौतम का रूप

धारण कर उनके पीछे गौतम के आश्रम में अहिल्या के पास पहूँचे साध्वी अहिल्या गौतम मुनि समझ कर उनका सम्मान करनें को उद्यत हुई। अकस्मात् उसी समय महर्षि गौतम भी वहां आगए। इन्द्र को श्राप दिया कि रे दुष्ट! तेरे सहस्र भग हों और तू चिरकाल तक नपुंषक रहे। और अहिल्या को श्राप दिया कि "तू कपटी इन्द्र के कपट को पहिचान न सकी और इस लिये तुझसे मेरा वियोग होगा" इस महान् श्राप को सुनकर अहिल्या नें प्रार्थना की हे! नाथ मैनें इन्द्र के कपट को नहीं समझा था इस लिये आप क्षमा कीजिये यदि आपका वचन मिथ्या नहीं होसकता तब बताईये फिर आप कब दर्शन देंगे। गौतम मुनि को पत्नी की इस प्रार्थना पर दया आई और कहा—"तू श्रीरामचन्द्र के दर्शन के बाद मुझे प्राप्त होगी"।

दोनों का वियोग होगया। ऋषि गौतम पत्नी वियोग से दुःखित बद्रीकाश्रम को तप करनें चले गए और अहिल्या के उद्धार तक वहां पर ही तपश्चर्य्या करते रहे।

चिर काल पश्चात् जब श्रीरामचन्द्रजी के अहिल्या को दर्शन हुए तब सती अहिल्या का उद्धार हुआ और

वह बद्रीकाश्रम में अपने पति गौतम मुनि से मिली। महात्मा गौतम मुनि सती अल्या सहित अपने आश्रम को आए।

अहा कैसा विचित्र समय है मुनि निरापराध पत्नी को क्रोधवश श्राप देते हैं और पत्नी विनीतभाव से फिर भी दर्शन के लिये प्रार्थना करती है। धन्य है ऐसा आदर्श प्रेम। परमात्मा फिर हमारे देश में ऐसे प्रेमी दम्पति उत्पन्न करे।

अच्छन कुमारी

च्छन कुमारी का जीवन लिखते जहां इसकी वीरता, व उदारता, और पतिव्रत के लिए हिन्दू मात्र को आनन्द होता है वहां गुजरात के राजा भोलाभीमदेव की दुर्बुद्धि व अविचार पर शोक और पश्चाताप होता है यद्यपि यह शूरवीर और पराक्रमी था किन्तु अविचार शील भी ऐसा ही था।

सचतो यह है कि हमारे राजाओं की शक्तियें स्त्रियों की प्राप्ति के झगड़ों में नष्ट न होती। और राजा परस्पर न

लड़ते तो आज संसार में कौन ऐसी शक्ति थी जो भारत वर्ष की तरफ नज़र उठाकर भी देखता।

अच्छन कुमारी चन्द्रावती के राजा जगतसी परमार की पुत्री थी। यह बाल्यवस्था से ही सर्वगुण सम्पन्न धर्मात्मा सुशीला कुमारी थी। इसका वाग्दान अजमेर के राजा सोमेश्वर सिंह चोहान के पुत्र पृथ्विराज से हुआ। इसके रूप लावण्य की प्रशंसा चारों ओर फैल रही थी। जिसको सुनकर गुजरात के राजा भोला भीम सिंह ने मंत्री अमर सिंह को चन्द्रावती के राजा के पास अच्छन कुमारी से सम्बन्ध करने के लिए भेजा।

राजा जयतसी नें कहा—अच्छन कुमारी का वाग्दान (सगाई) अजमेर के राज कुमार के लिये हो चुका है। इस लिये भोला भीमदेव से सम्बन्ध करने में असमर्थ हूं। इसके उत्तर में अमर सिंह ने कहा इस मना करने का तुम्हारे लिए परिणाम अच्छा न होगा। यह सुनकर जयतसी बोले अच्छा यदि ऐसा है तब मैं भी क्षत्रिय हूं और रणविद्या को जानता हूं।

भोला-भीम देव पर यह खबर पहुंच ते ही उसने चन्द्रावती पर चढ़ाई करदी।

चन्द्रावती बहुत छोटी रियासत थी उसने अजमेर के राजा

सोमेश्वर सिंह से सहायता मांगी। जब सोमेश्वर सिंह को खबर मिली तबही कि गौर का बादशाह शहाबुद्दीन बड़ी सेना सहित भारतवर्ष पर आक्रमण करने आरहा है यह सुना। इस संकट समय अबला की रक्षा मुख्य समझ सोमेश्वर सिंह स्वयं सेना लेकर चन्द्रावती चला गया और अजमेर में हर प्रकार की सामग्री एकत्रित करने की आज्ञा देगया।

शत्रुओं के भय से अच्छन कुमारी को अचल गढ़ के किले में भेज दिया गया था।

सोमेश्वर सिंह के चन्द्रावती जाने के पश्चात् अच्छन कुमारी का पत्र राजकुमार पृथिवी राज के पास आया जिसका सारांश यह है:—गुजरात नरेश भीमदेव ने चन्द्रावती पर चढ़ाई करके मार्ग के अनेक नगर उजाड़ दिये। प्रजा त्राहि २ कर रही है पिता ने मुझे यहां (अचलगढ़) शत्रु के भय से भेजदिया है। कृपाकरके आप मेरी रक्षा कीजिये ताकि प्रबल शत्रु के हाथ बची रहूं।

पत्र के आने पर पृथिवी राज कुछ सेना दिल्ली में छोड़ शेष अजमेर भेज कर स्वयं अपने मित्र रामराव को कुछ सिपाहियों सहित अचलगढ़ को चला गया। और सायंकाल को वहां पहुंचा। प्रातः काल होते ही दो सखियों सहित अच्छन कुमारी को लेकर अजमेर को चल

गया।

पृथिवी ने सेना को ठीक किया इतने में शहाबुद्दीन ने युद्ध का डंका वजादिया। तलावड़ी के मैदान में खूब घमासान युद्ध हुआ और पृथिवी की जय हुई।इस समय पृथिवी एक भूल कर गया प्रबल शत्रु पर अधिकार पाकर न केवल उसको जीता ही छोड़ा प्रत्युतः स्वतन्त्र छोड़ दिया।

सोमेस्वर देव चन्द्रावती में भीम के हाथ से मारा गया अतः पृथिवी को राज तिलक किया गया और राज पुरोहित ने अच्छन के साथ उसका विवाह कर दिया।

अच्छन कुमारी की सम्मत्यनुसार पृथिवी ने वड़ी उत्तमत्ता से राज का प्रबन्ध किया। और दिल्ली को अपनी राजधानी वनालिया। शहाबुद्दीन धैर्य्य पूर्वक हिन्दुस्थान लेने का अवसर देखता रहा और अपनी शक्ति को वढ़ाता रहा। कन्नौज नरेश की पुत्री संयोगता के स्वयंवर के कारण जो पृथिवीराज को युद्ध करना पड़ा था उसमें अनुभवी शूर सरदार मारे जा चुके थे।

सन् ११९३ई०में शहाबुद्दीन ने फिर भारतपर चढ़ाई की किन्तु फिर भी उसे पराजित होना पड़ा। इस समय राजपूतों ने यह समझ कर कि अव यह कदापि चढ़ाईनकरेगा छोड़ दिया। किन्तु यहउनकी भूल थी। यद्यपि पराजित

शत्रु को मारना पाप है किन्तु उसको कैद करना राजनीति है। और ऐसे शत्रु का मारना राजनीति के अनुसार पाप भी न था। यदि राजपूतों ने यह भूल न की होती तो भारत कदापि परतंत्रता की बेड़ी न पहिनता।

दुर्भाग्यवश कुलकलंक कन्नौज नरेश जयचन्द शहाबुद्दीन से मिल गया और दोनों ने मिलकर दिल्लीपर चढ़ाई की।

इस युद्ध में पृथिवीराज बड़ी वीरता से लड़ा किन्तु इस समय न तो इसके पास अनुभवी सेनापति थे और न बल मद में इसने कपटी शत्रु के साथ राजनीति के अनुसार युद्ध किया। कविराज भारवि ने ठीक कहा है। "व्रजन्ति ते मूढ़ धियः पराभवं भवंति मायाविषु ये न मायिनः" अर्थात् वह मूर्ख सदैव हारते हैं जो कपटियों के साथ कपट नहीं करते।

पृथिवीराज जखमी होकर पृथिवी पर गिरगए और बेहोशी की दशा में शत्रु के हाथ में फंसगए इनका पकड़ा जाना था कि सर्वत्र हाहाकार मचगया और यह कोलाहल मचगया भागो २ धर्म बचाओ।

अच्छन कुमारी ने जो कि अपनी रोगिणी पुत्री के पास बैठी थी यह कोलाहल सुनकर पूछा—महाराज कहां

हैं उत्तर मिला "हमने उन्हें रण भूमिमें पड़ा देखा था यह सुनते ही कन्या उषावती ने पूछा कल्याणादि कहां है सिपाही ने उत्तर दिया सब वीरगति को प्राप्त होगये यह सुनते ही उषावती हिन्दूजाति की स्वतंत्रता के साथ ऐसी मूर्छित हुई कि आजतक होश नहीं हुआ।

यह सुनते ही अच्छन कुमारी चिता तैयार कराकर सती होने को तैयार हुई। चिता की परिक्रमा कर रही थी कि एक सेना पति ने आकर कहा कि रानी जी रुको महाराज का अमंगल नहीं हुआ किन्तु वह कैद हैं यह सुनना था कि रानी के क्रोध का ठिकाना न रहा और कड़क कर बोली—दुष्ट ! सेनापति होकर यह सन्देसा सुनाने आया है तुझे लज्जा नहीं आती। पापी कायर राजा कैद हैं तू सन्देसा सुनाने आया। तूने जन्म ले कर अपनी माताकी कोख को भी कलंक लगाया। बस आज क्षत्रियत्व नष्ट होगया अब केवल सन्देसा सुनाने वाले रहगए जा मेरे सामने से चलाजा इससे तलवार छीन लो।

रानी के कहने की देर थी तलावर छीन कर रानी को देदो। तलवार लेकर रानी कूदकर घोड़े पर चढ़गई।

उस समय की शोभा देखनें योग्य थी हाथ में नंगी तलावर केश खुले हुये माथे पर चन्दन

लगा हुआ घोड़े पर बैठी थी, उसने सेवकों से कहा, प्रजा का धर्म है राजा की रक्षा करे, मैं अकेली शत्रुओं से लड़ कर उन्हें छुड़ालाऊँगी यह सब शरीर राजा का है और राजा के काम में ही कटकर गिरेगा राजपूतों को उसकी वात सुनकर जोश आगया माता ! जव तक जान में जान है तव तक लड़ेंगे, मारेंगे कटेंगे काटेंगे।

वस फिर क्या था रानी घोडे को ऐड लगा यह जा यह जा शत्रुओं की फौज में घुस पड़ी राजपूत भी उसके संग थे मुसलमान लोग राज भवन लूटने को आरहे थे।

रानी ने जाकर महाप्रलय मचादी जिधर पड़ जाय गाजर मूली ही करदे मुसलमान डरे हाय ! कौन वहादुर औरत है जो इस तरह हमारी फौज काट रही है

परन्तु एक के लिये दो वहुत होते हैं यहां तो कुछ गिंती ही नहींसव मुसलमानों ने उसे घेर लिया और सवने उस पर तीर चलाना चाहा परन्तु वह वचगई, फिर एक तीर आया जिस से रानी परलोक सिधारी, मुसलमानों ने वहुत चाहा कि रानी का शरीर मिलजाय परन्तु वीर राजपूतों ने उसे चितापर पहुंचादिया, और स्वयं लड़कर प्राण दिये।

जव चिता में आग दी गई तव वहुत सी स्त्रियां

परिक्रमा कर चिता में बैठ गई और सांयकाल तक बहुत सी स्त्रियां इस प्रकार सती हो गई ।

आमिना ।

आमिना अर्ब देश के मदीना नगर के एक व्योपारी अब्दुल्ला नाम की गृहलक्ष्मी अपने गुण, शील स्वभाव तथा पतिव्रत धर्म्म में किसी प्रकार कम न थी । अकस्मात् उसका पति ग़ाज़ी शहर से लौटते हुए मार्ग में किसी भयंकर रोग से ग्रसित हो ठीक २५ वर्षका अवस्था में मृत्यु का ग्रास होगया । आमिना जैसी पतिव्रता स्त्री पर से पति का उठ जाना ऐसा भारी वज्रपात हुआ मानो उसके सारे सुख सदा के लिए विदा होगए सारी आशाओं से हाथ धुल गये वस तत्त्व तो यह है कि जिस संसार में उसको सर्व प्रकार का सुख था अब पल काटना भारी होगया किन्तु गर्भवती होने के कारण कई बार आत्म हत्या करने से रुक गई । आमिना के गर्भ से यद्यपि एक सुन्दर तथा प्रतापी मुहम्मद नाम का पुत्र हुआ किन्तु दुःख में

दुःख और यह हुआ कि आमिना को इतनी निर्बलता थी कि दूध पिलाने को भी धाय की आवश्यकता हुई और वह भी ऐसे समय में जब कि आमिना का दारिद्रता के कारण उदर पोषण भी कठिन था अन्त में बेचारी दीन दुखिया आमिना मुहम्मद को हमीना को पोषणार्थ दे आई जहां मुहम्मद कई वर्ष तक रहा और पांच वर्ष की अवस्था में फिर आमिना के पास मक्के में आगया तत्पश्चात् आमिना उस को मदीना ले आयी जहां कि वह नित्य अपने मृत पति की कबर पर रुदन किया करती थी अंत में एक दिन वह रुदन करते २ व्याकुल हो गयी तब मुहम्मद को अपने पिता के देवलोक होने का ज्ञान हुआ। इस से कुछ दिन पीछे आमिना मुहम्मद को लेकर फिर मक्के को लौटी किन्तु मार्ग में ही मुम्महद को अनाथ की दशा में छोड़ मृत्यु देवी की गोद में सुख की नींद सो गई वरन् अपनी सुशिक्षा का नमूना इतना दृढ़ कर गयी एक अनाथ जिसकी आयु ६ वर्ष हो आज दिन अपनी माता के प्रताप तथा शिक्षा से ईश्वर का भक्त हो सारी इसलामी दुनिया में पैगम्बर की पदवी से देखा जावे। धन्य है आमिना और उसके पतिव्रत धर्म्म को तथा पवित्र शिक्षा को।

इन्द्राणी

महारानी इन्द्राणी लोकत्रय प्रसिद्ध देवता इन्द्र देव महाराज की पत्नी थी। यह परम सुन्दरी पतिपरायण बुद्धिमती महासती थी।

एक बार महाराज इन्द्रदेव को राजा नहुष का अत्यन्त भय होगया, जिसके कारण वह रात दिन चिन्तित एवं दुःखित रहने लगे। पति को चिन्तित देख कर सती इन्द्राणी को अत्यन्त दुख हुआ और इस पतिव्रता ने अपने सतीत्व के बल से अपने प्राणनाथ को इस महा कष्ट से मुक्त किया।

चाहे पाप प्रकट हों या छिपे रहें किन्तु पापी को उस के पाप सदैव त्रास देते रहते हैं। इस ही अटल नियम के अनुसार इन्द्र के पाप उसको महान् कष्ट देने लगे। चिन्ता और आन्तरिक दुःख के कारण इन्द्रदेव का तेज नष्ट होगया और स्वर्गीय सम्पत्ति भी इसके चित्त को शान्त न कर सकी। तब उद्विग्न मन इन्द्रदेव स्वर्ग को छोड़ कर मानसरोवर के पद्म वन में छिप गए।

पति देव की इस दशा को देख महासती इन्द्राणी को बड़ा कष्ट हुआ और वह पद्म वन में अपने प्राणेश्वर इन्द्रदेव

के पास गई और प्रार्थना की कि:—हे ! प्राणनाथ ! हे ! प्राणेश्वर ! हे प्राणप्रिय ! हे ! प्राणवल्लभ ! आपकी यह शोकमयी दशा देख कर मुझे महान् कष्ट है । जहां तक मेरा खयाल है आपका कोई शत्रु प्रबल नहीं हुआ । फिर इस प्रकार क्यों दुःखित रहते हो । दया करके आप दासी को अपने दुःख का कारण बताइये । मैं आपकी सेवा कर कष्ट दूर करनेका प्रयत्न करूंगी । हे ! हृदयेश्वर आप मुझ से किस कारण रुष्ट हैं जो अपने दुःख की बात मुझ से छिपाते हो । पत्नी शास्त्रानुसार पुरुष की अर्धाङ्गिनी होती है । तब किस कारण आप अपना दुःख नहीं कहते । हे नाथ ! क्या अपनी सब ही प्रतिज्ञाओं को भूल गए । यदि कुछ अनुचित हो गया हो तो क्षमा कर दुःख का कारण बताईये ।

इन्द्राणी की विनीत भाव पूर्ण प्रार्थना को सुनकर इन्द्र देव बोले:—प्राणेश्वरी यद्यपि प्रत्यक्ष में मेरा कोई शत्रु नहीं है और सम्पूर्ण स्वर्गीय सम्पत्ति मेरे सुखके लिए प्रस्तुत है अप्सराओं का मनोहरनृत्य व गान्धर्वों के मधुर गान से मेरे पापी चित्त को शान्ति नहीं होती । प्रिये ? शोक मेरे दुर्भाग्यवश सम्पूर्ण सुखों की खानि तुम सी सती के होते हुए भी मुझे शन्ति नहीं इसका एक मात्र कारण मेरे

दुष्कर्म ही हैं। यह मुझे किसी समय शान्ति नहीं लेने देते बस प्यारी मेरे पाप ही मुझे दारुण दुःख दे रहे हैं।

महासती इन्द्राणी स्वामी के सन्ताप की दुःखमयी वार्ता सुनकर अत्यन्त दुःखी हुई और पति का कष्ट उससे सहन न होसका तब उसने सूर्य्य भगवान् से अत्यन्त नम्र भाव से प्रार्थना की कि—हे जगदीश हे प्रभो आप संसारका अपनी तेजोमय किरणों द्वारा अन्धकार दूर कर प्राणी मात्र का सुख देते हो। हे! आनन्ददाता दीनबन्धो! आनन्दमयी किरणों द्वारा आप अन्नादि उत्पन्न कर जगत की रक्षा करते हो। हे! दयालु सूर्य्य भगवान् यदि मैंनें मन वचन और शरीर से पतिव्रत धर्म का पालन किया है तो मेरे स्वामी की मनोवेदना को दूर कीजिये और पुत्री पर दया कीजिये सती की इस प्रार्थना से प्रसन्न होगए और क्रम से इन्द्र देव की मनोवेदना दूर होगई। पतिव्रत की महीमा के कारण ही विवाह के समय कन्याओं को इन्द्राणी के समान सौभग्य का आर्शीवाद दिया जाता है।

देवी धन्य है तेरे पतिव्रत को परमात्मा करे तेरे आ-आदर्श का संसार की स्त्रियां अनुकरण करें।

——०——

ईला।

—:—

सन्तान को माता के समान दूसरा कोई सुशिक्षित और धर्म्मात्मा नहीं बना सकता। मातृमान् पितृमान् ३ आचार्य्यो वेदः।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण महर्षि मनु की कन्या ईला थी। इसका पाणिग्रहण मुनिवर वशिष्ट के पुत्र शक्ति से हुआ था और इसके उदर से महात्मा पराशर ने जन्म लिया इन की माता विदुषी ईला ने इसको बाल्यावस्था में ही शिक्षा देकर अद्वितीय विद्वान और धर्मात्मा बनाया था। ईला की ही शिक्षा का प्रताप था कि यह अपने समय के अद्वितीय राजनैतिज्ञ एवं खगोल तथा नौका शास्त्र के पूर्ण विद्वान् थे। इनकी बनाई पाराशर स्मृति जगत्मान्य है। समयानुसार स्मृतियों का जब विभाग किया गया तब इनकी स्मृति कलियुग के लिये मान्य बताई गई। जैसा कि लिखा है "कलौ पाराशरा स्मृतः। महर्षि पाराशर ने समुद्र यात्रा भी बहुत की थी।

सती ईला का अपनी पुत्र वधु के साथ आदर्श व्यवहार था यह उसको पुत्रि के समान समझती थी। यही कारण था कि पाराशर की पत्नी मत्स्यगन्धा सती ईला को

माता ही नहीं प्रत्युत : तीर्थ स्वरूप समझती थी । आज कल की स्त्रितों के समान पुत्रवधु को दासी नहीं समझती थी । जो वह अनुचित दवाव से सासू का सामना करती या सेवा से इन्कार करती ।

ईसा का सद्व्यवहार अपने कुटम्बियों के साथ आदर्श रूप था यह अनन्य पतिव्रता एवं दया की मूर्ति थी । परमेश्वर फिर ऐसी देवियों को जन्म दे और कलहरूप गृहस्थों को स्वर्ग धाम बनावे !

उर्मिला
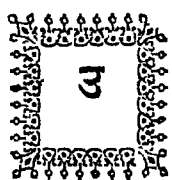
उर्मिला अजमेर के महाराना धर्मगज देव की पत्नी थी । यह बड़ी चतुर रानीति परायणा और वीर नारी थी । धर्मगजदेव के और भी कई रानियां थीं परन्तु बुद्धिमती और राजनीतिदक्ष होने के कारण राजा को यह सबसे ज्यादा प्रिय थी । राज्य कार्य्य में धर्मगजदेव को बहुत सहायता देती थी । और राजा के साथ शिकार खेलने जाया करती थी

महमूद गजनवी शाह ने अफगानिस्तान से भारत

पर चढ़ाई कर प्रथम गुजरात के सोमनाथ मन्दिर को लूटा फिर मुल्तान को लूट कर अजमेर पर चढ़ाई की। धर्मगजदेव ने यह खबर सुन कर अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। धर्मगजदेव से महमूद गजनवी पहिले भी हार चुका था। इस बार यह बहुत सेना लेकर चढ़ा था और पहिले युद्ध में धर्मगज देव की सेना बहुत नष्ट होगई थी। फूट देवी की दया से इसको अन्य राजाओं से सहायता मिलना कठिन थी। केवल उनही रा-जाओं से कुछ सहायता मिली जो अजमेर के आधीन थे।

हिन्दू जाति फूट देवी की कृपा से निशक्त होचुकी थी। जात्यभिमान देशाभिमान और ऐक्यता बिलकुल नष्ट हो गई थी। तथापि कुछ धार्मिकता शेष रही थी उसके जोश में महमूद गजनवी की लड़ाई का समाचार सुनकर माताओं ने पुत्रों को बुला कर कहाः—

पुत्रो आज वह समय आगया जिसके लिये क्षत्राणियां पुत्र उत्पन्न करती हैं बहने हर्षित प्रतीत होती थीं क्योंकि आज उन्हें ऐसा अवसर मिलने वाला था कि जब वह अपने भ्राताओं की कमर में कटार बांध कहती हैं कि हे वीर आज रणक्षत्र में जाकर धर्म युद्ध करो और धर्म के लिये प्राण तक गवां दो स्त्रियों को इस बात का अभिमान था

कि उनका पति धर्म की रक्षा में किसी से भी पीछे न रहेगा, स्त्री अपने पति से कहती थी "मेरे शिर के मुकुट ! ऐसे सुअवसर सदा नहीं आते क्षत्री को सुख संग्राम में है, घोड़े और वीर केवल रणभूमि में ही जागते हैं अब तक आप सोरहे थे अब जागने का समय आगया, जाओ संसार भर को दिखा दो कि सिंह जाग उठे हैं या तो शत्रुओं को अधो मुख करके आओ वा स्वर्ग लोक में जाओ और आनन्द करो प्राणनाथ ! कोई यह न कहे कि तेरा पति संग्राम में अपना कार्य न करसका, मेरी लाज आज आपके ही हाथ है, संसार में कोई सुख नहीं सबसेमहान सुख वही है जो स्वर्ग धाम में मिलता है। राजा एक पहर रात्र रहे उठे और शौचसन्ध्यादि कर्मों से निवृत्त होकर सेना के लेने के लिये छावनी को जाने लगे, उसी समय महाराणी उर्मला देवी नें कहा:—

"प्राणनाथ ! आप आज्ञा दें तो मैं भी आप के संग रणको चलूं मेरे लिये महिल अब वासस्थान नहीं है मेरा स्थान तो आप के बाईं ओर है। सुख दुख हरएक समय आपके संग रहनें का अधिकार मुझे है मेरी इच्छा है यदि आप आज्ञा करें तो मैं भी युद्ध के वस्त्र धारण करके आप के संग चलूं और इस देह को आप पर न्योछावर

करके अपना जन्म सफल करूं ऐसा समय मुझे फिर कब मिलेगा" । राजा भी रानी की बातों को सुनकर अति प्रसन्न हुआ और हँसकर कहने लगा "धन्य हो महाराणी धन्य हो ! मुझे आपको संग ले चलने में कोई भी हानि नहीं, मुझे दृढ़ विश्वास है कि जिस समय तेरी कटार रणक्षेत्र में चमकेगी शत्रु लोग भयभीत होकर भाग जावेंगे परन्तु कई एक बातें ऐसी हैं जिन पर विचार करना करना तुम्हारा काम है प्रथम तो यह कि तुम्हारे संग होने के कारण मुझे तुम्हारी ही रक्षा की चिन्ता रहेगी और ऐसा भी सम्भव है कि चिन्ता के कारण मैं अपना कार्य्य न करसकूं द्वितीय यह आज कल वर्षा के दिन हैं काली २ घटायें छारही है दामिनी दमक रही हैं जब वर्षा होगी तो तुम्हारा क्या हाल होगा उस समय मुझे तेरी दशा देखकर तरस आवेगा और मैं अपने को भूलकर तेरी रक्षा की चिन्ता में पड़ जाऊंगा, तीसरे मैं अजमेर में एक ऐसे आदमी को छोड़ना चाहता हूं जो राजव्यवस्था ठीक २ चला सके और जब मुझे अधिक सेना की आवश्यकता हो तब समय पर भेज सके तुम यह सब कुछ करसक्ती हो, अब जो कुछ तुम उचित समझो वही करो।

रानी नें यह सब बातें ध्यान पूर्वक सुनी और फिर

हंसकर और उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा "आपकी आज्ञा शिर आंखों पर ? ईश्वर आपकी रक्षा करे और आप कुशल पूर्वक शत्रुओं को जीतकर आवें यदि और प्रकार का समय भी आगया है तो भी कुछ शोक नहीं आप सदा उर्मिला को अपने संग पावोगे, अब आप प्रसन्नता पूर्वक जाकर अपना कार्य्य कीजिये।

बस दोनों स्त्री पुरुष अन्तिम वार एक दूसरे से मिले राजा छावनी में आया, प्रस्थान का धौंसा बजाया गया, राजपूत सब सजे सजाये बैठे थे आज्ञा पाते ही अपने २ घोड़ों पर सवार हो रण को चलदिये ऐसा घमसान युद्ध हुआ कि आकाश मानों अग्नि देवता का ही निवास स्थान बनगया था राजपूत ऐसी वीरता से लड़े कि शत्रुओं के छक्के छूट गये परन्तु हिन्दुओं के नाश का समय आगया था एक यवन के तीर ने राजा को बेकाम कर कर दिया जब संभलना चाहता था कि दूसरे तीरने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। राजपूतों को राजा के परलोक गमन से अत्यन्त शोक हुआ परन्तु वे और भी दिल तोड़ कर लड़े, सायंकाल को वे राजा के शव को किले में लाए और उस पर पुष्पवर्षा की। जब रानी ने सुना कि राजा स्वर्ग को सिधारे तो बाहर आई और शव को शोकार्त्त

आंखों से देख कर इर्द गिर्द की स्त्रियों और पुरुषों से कहा "अभी चिता तैयार करो" बहुत सी स्त्रियों ने उसके चारों तरफ इकट्ठे होकर उसे सती होने से रोकना चाहा पुरुषों ने कहा "माताजी आप हमें युद्धकी आज्ञादेवें और हम पर राज्य करें यह समय सती होने का नहीं है। उर्मिला हँसकर कहने लगी "राजपूतों का वह समय आ जिस समय के लिये राजपूतानियां पुत्र जनती हैं, राजा ने अपना धर्म पालन किया कल तुम भी अपना करोगे, और फिर स्त्रियों से कहने लगी 'जिस काम के लिये लिये क्षत्राणियां कन्या जनती हैं उस से मुझे कोई मत रोको तुम स्वयं भी वही कार्य करो और अपने २ धर्म पर दृढ़ रहो'। यह कह कर रानी उर्मिला सती होगई।

विदुषी अंशुमती।

शुमती नें बाल्यावस्था में महात्मा भृगु-मुनि से वेद, वेदान्त, पुराण, आयुर्वेद, धर्मशास्त्र आदि का अध्यन कर निपुणता प्राप्त की थी। इसका पाणिग्रहण महर्षि सुमन्त से हुआ था। यह बाल्यावस्था से

ही अत्यन्त चतुर और बुद्धिमती थी। यह दया, धर्म, परोपकार और विद्या की साक्षात् मूर्ति थी। पति सेवा और गृह कार्य्य से निवृत्त होकर सदैव रोगियों की सेवा किया करती और चिकित्सा कर उन के दुःख को दूर करती थी। पात्रापात्र का ध्यान करके भूखों को अन्न और प्यासों को पानी दिया करती थी। जब पूर्वोक्त कामों से समय मिलता था तब स्त्री पुरुषों में अनेक सदुपदेश दिया करती थी।

यह प्रायः धार्मिक उपदेश देती और अनेक कथा सुनाया करती थी। संसार की क्षणभंगुरता का उपदेश देकर बताती थी कि संसार में धर्म के सिवाय और कोई वस्तु स्थायी नहीं।

संसार में अंशुमती सच्ची उपदेशिका होने के कारण प्रसिद्ध हुई। धन्य है उन स्त्री पुरुषों को जो अपना जीवन परोपकार में व्यतीत करें।

कर्णिलिया ।

चीन कालमें किसी नगरमें कर्णिलिया नाम की एक बड़ी गुणवती साध्वी स्त्री रहती थी । एक दिन उसके घर पड़ोस की एक धनाढ्य नारी बहुत वस्त्र अलङ्कारों से विभूपित होकर आई । हाथ में मणि-मुक्ताओं से भरा हुआ एक छोटा सा डिब्बा भी था । कर्णिलिया को देखते ही बोली-क्या तुम्हारे पास कोई अच्छा वस्त्र या गहना नहीं है ? तुमने कोई आभूपण भी अच्छा नहीं पहिना ? यह कह कर उसने अहङ्कार के साथ अपना सारा भूषण और जवाहरातों का डिब्बा खोलकर दिखाया गुणवती कर्णिलिया तनिक हंस कर अपने दोनों पुत्रों को दिखा कर विनीत भाव से बोली-'बहिन जी ! मैं झूठे वस्त्र अलंकारों को क्या करूंगी ? परमेश्वर ने मुझे यही दो अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं, मैं इन्हीं से परम सुखी हूं'। यह सुनते ही वह अहंकारिणी लज्जित होकर बोली-तुम धन्य हो जिनके ऐसे परम सुन्दर रूप-गुण-युक्त पुत्र हैं ।' फिर कर्णिलिया से पुत्रों की शिक्षा के विपय पर उपदेश लाभ करके, उस दिन से वृथा गर्व को त्याग उसने भी

अपनी सन्तानों की शिक्षा में चित्त लगाया। सुनते हैं कि कर्णिलिया के इन्हीं दोनों पुत्रों ने भावी जीवन में बड़े योद्धा, वीर और गुणशाली बनकर स्वदेश का गौरव बढ़ाया था।

परमात्मा हमारे देश की स्त्रियों को ऐसी ही उदारता प्रदान करे जो पति व सन्तान को ही आभूषण समझें। पति पर ऋण कराकर ज़ेवर बनवाने वाली स्त्रियां इस से शिक्षा लें।

कुन्ती।

इसको राजा कुन्तभोज ने सूरसेन यादव से निसन्तान होने के कारण ले लिया था और पृथा नाम बदल कर कुन्ती कर दिया था। इसके पांच पुत्र हुए जोकि विद्या, वीरता, सौजन्यता तथा उदारता में संसार अद्वितीय आदर्श हुए हैं। इनके धर्मात्मा और यशस्वी होने का एक मात्र कारण कुन्ती के उपदेश का ही फल था। दुर्योधन से जुए में हारकर जब पांडवों को वनवास हुआ था तब माता कुन्ती भी इनके साथ गईं थीं। एक वर्ष के गुप्त वास

में यह एक शहर में ब्राह्मण के यहां ठहरे। उस ब्राह्मण पर एक राक्षस का बड़ा कोप था। उस की सन्तानों को विनाश करने पर तत्पर हुआ देख ब्राह्मण बड़ा भयभीत हुआ। कुन्ती देवी ने अपने आश्रयदाता को कष्ट में देख कर कारण पूछा। तब ब्राह्मण ने अपना सारा हाल आ-द्योपान्त कह सुनाया। कुन्ती ने कारण जान कर उनको धैर्य्य दिया, और बोली—'आप सोच न कीजिये, आप लोगों की जीवन रक्षा करने के लिये मैं अपने पुत्र को राक्षस के निकट भेज दूंगी।' ब्राह्मण ब्राह्मणी यह सुन कर बड़े दुःख में पड़े। परन्तु धर्म शीला कुन्ती ने अपने आश्रयदाता के परिवार की रक्षा करने के लिये अपने पुत्रों से कहा कि तुम में से कोई राक्षस के निकट जाओ तब महा वीर भीम माता की आज्ञा से राक्षस के निकट गये राक्षस के साथ बड़ा मल्ल-युद्ध हुआ। भीम वाहुबल से राक्षस का विनाश कर माता के पास आये और द-रिद्र ब्राह्मण के परिवार की रक्षा हुई।

धन्य हैं वह परोपकारिणी मातायें जो परोपकार में अपने पुत्रों तक को वलि दें। महान् आपत्तिकाल में सदैव पांडवों को धर्म पथ पर दृढ़ रहने का उपदेश देती रही। अहा! जो राजराजेश्वरी अनूपम महलों में रहती और अ-

संख्य सम्पत्ति की स्वामिनी थी वह वन वन फिरे और फिर भी धर्मपथ से स्वयं ही न गिरीं किन्तु सुदुपदेशों द्वारा अपने शत्रुओं को भी धर्म पथ पर अटल रक्खा।

कर्म देवी।

न् ११९३ ई० में जब कि हिन्दू जाति पर फूट देवी की कृपा हुई और दुष्ट जयचन्द्र नें शहाबुद्दीन गोरी से मिल कर दिल्लीश्वर महाराज पृथ्वीराज पर चढ़ाई की थी। और जब हिन्दू जाति सदैव के लिए परतंत्रता की वेड़ियों में जकड़ी गई।

जब वीर शिरोमणि दिल्लीपति पृथ्वीराज के साथ शहाबुद्दीन का घमसान युद्ध छिड़ गया और हज़ारों शूर वीर नित्य स्वतंत्रता देवी की भेट होनें लगे। यह भयङ्कर समाचार मेवाड़ाधिपति वीरवर समर सिंह सुनकर अपनी पत्नी कर्मदेवी के पास गए और कहाः—प्रिये! दुष्ट जयचन्द्र ने सहाबुद्दीन से मिलकर दिल्ली पर चढ़ाई की है यदि आपकी सम्मति हो तब मैं भी अपनी सेना को दिल्लीश्वर की सहायता के लिये भेजूं किन्तु महाराज की

तरफ़ से मैं निमंत्रित नहीं हूं। यह सुनकर कर्मयोगिनी पतिव्रता कर्मदेवी से न रहागया और बोलीः—प्राणनाथ! शोक का विषय है ऐसे समय जब कि दिल्लीश्वर पर नहीं प्रत्युतः समस्त हिन्दू जाति पर विकट समय उपस्थित है तब आप जैसे वीर के लिए निमंत्रण के न आनें का खयाल करना अत्यन्त लज्जा की बात है। आपको ऐसे विकट समय में मुझ से कदापि सम्मति नहीं लेनी चाहिये थी क्योंकि आप जानते हैं स्त्रीजाति स्वाभाविक भीरु होती हैं तब किस प्रकार समराग्नि में जानें को कह सकती हैं। अब आप देरी न कीजिये जहां तक हो शीघ्र दिल्लीश्वर की ही नहीं किन्तु जाति की मान रक्षा के लिये सेना सहित स्वयं जाईये। पत्नी के यह वीरत्व पूर्ण वचन सुन-कर शीघ्र प्रस्थान किया और पृथ्वीराज की सहायता करते हुए स्वतंत्रता देवी के लिये रणयज्ञ में आहुत हुए। वीरवर समरसिंह का वीरगति (मृत्यु) को प्राप्त होना सुनकर मेवाड़ में हा! हा! कार मच गया। और समर सिंह की गद्दी पर उनके सुकुमार पुत्र को बैठाया गया।

दिल्ली को विजय कर मुसल्मानों नें राजपूतानें पर चढ़ाई की। आपस की शत्रुता के कारण जहां तहां यवनों की जीत होनें लगी। मेवाड़ की रक्षा के लिये योद्धाओं में

पुनः वीरत्व का संचार हुआ और मुसल्मानों से युद्ध के लिये मेवाड़ के समस्त योद्धा तन, मन, धन से तैय्यार होगए। पति के राजसिंहासन को विकट दशा में देख कर मर्दाना वेश बनाकर शस्त्रास्त्र से सुसज्जित हो घोड़े पर सवार हो सेना में गई और इस प्रकार वीरों को उत्तेजित किया:—ऐ योद्धाओं! आज मेवाड़ पर ही नहीं किन्तु तुम्हारी मान मर्य्यादा और सम्पूर्ण भारतभूमि पर आपत्ति का समय उपस्थित है। जिसकी मान मर्य्यादा पर कलंक लग गया उसके जीवन से मृत्यु भली है। वीरो! तुम्हारी जन्म भूमि पर यवनों की विजय पताका न खड़ी हो यह समझ कर रणक्षेत्र में शत्रु को पराजित करो। यह समय क्षण भंगुर प्राणों की रक्षा का नहीं है। शास्त्र में लिखा है "जयो वधो वा संग्रामे धत्रादिष्ठः सनातनः। स्व धर्मः क्षत्रियस्यैव कार्पण्यं न प्रशस्यते॥

यह सुन कर योद्धाओं का उत्साह द्विगुण होगया और बात की बात में वीराङ्गना कर्मदेवी सहित रणक्षेत्र में जाकर रण कौशलता और वीरता का परिचय देने लगे। रणचण्डी कर्मदेवी का अनूपम रणकौशल और वीरता देख शहाबुद्दीन का पुत्र कुतुबुद्दीन थर २ कांपने लगा। यह वीराङ्गना वीरों को ललकार कर उत्साह देती और

शत्रुओं को गाजर मूली की तरह काटती हुई ऐसी मालूम होती थी मानों प्रकृति विकटरूप धारणकर धर्मरूप शस्त्रों से पापियों का नाश कर रही है। इस युद्ध में यवनों का त्यन्त विध्वंस हुआ कि जिससे उनका उत्साह बिलकुल जाता रहा और जय की आशा छोड़ कुतुद्दीन सहित रणभूमि से भाग गए। वीराङ्गना नें जय प्राप्त कर अपने देश और जाति की रक्षा की।

धन्य हैं वह जन जिनसे देश या जाति को लाभ हो।

कर्म्म देवी।

यह राजकुमारी अर्वन्त के राजा मानक राव की पुत्री थी। इसका सम्बन्ध मंडोर के राजकुमार से ठहर चुका था परन्तु एक दिन जयसलमेर अन्तर्गत पुँगल के भाटी राजा अनंगदेव का युवराज, जिसका नाम सादू था, किसी युद्ध से लौटता हुआ अर्वन्त में आया और राजा मानिकराव के यहां ठहरा। राजकुमारी इसकी वीरता की प्रशंसा सुनकर और अपने महल की खिड़की में से देख कर इस पर मोहित होगई। राजकुमारी पुँगल के कुमार पर ऐसी मुग्ध हुई

कि मंडोर की राजगद्दी के उत्तराधिकारी को छोड़ कर एक साधारण सरदार के कुमार से विवाह करना निश्चय किया। अपने पिता के पास भी इस बात का समाचार भेजा। पिता ने भी कन्या की इच्छानुसार सादू से विवाह कर देना स्वीकार कर लिया। सादू ने मंडोर के राजकुमार की अप्रसन्नता और विरुद्धता का कुछ विचार न करके सहर्ष कर्म्मदेवी के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया। और शास्त्र-विधि अनुसार विवाह होगया।

मंडोर के राजकुमार ने इस अपमान का बदला लेना चाहा और ४००० राठोर योद्धाओं को साथ लेकर मार्ग में आ ठहरा।

सादू के अर्वन्त से विदा होते समय लोगों ने कहा कि ४००० महेल योद्धाओं को साथ लेते जाओ; परंतु उस ने अपने साथ के भाटी योद्धाओं पर विश्वास करके उनकी बात न मानी और अपने साले सहित केवल ५० मनुष्य साथ लिये। वह मार्ग में चौन्दा स्थान में ठहरा जहां कि राठौरों ने आ घेरा। परन्तु वीर राठौर कुमार ने अपने योद्धाओं की अधिक संख्या से लाभ उठाना उचित न समझ कर द्वंद्व युद्ध की आज्ञा। सादू अश्वारूढ़ था और जो उसके सामने आता था उससे बड़ी वीरता से लड़ता

हुआ अपने भाले से घायल करता था। राजकुमारी कर्म्म देवी युद्ध क्षेत्र के समीप गाढ़ी में बैठी हुई युद्ध देख रही थी। जब कुमार सादू लड़ते २ उसके समीप आता था तो उसकी वीरता की प्रशंसा करती थी और उस को उत्साहित करती थी। शत्रु के ६०० और सादू के ३०० मनुष्य जब युद्धमें मारे गये तो राजकुमारी कर्म्म देवी ने अपने पति से कहा कि आप निश्चिन्त हो कर वीरता पूर्वक लड़ें और अपना पूर्ण पराक्रम दिखावें। यदि आप युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त होंगे तो मैं वहीं आप के साथ सती होऊँगी। यह सुन कर उसने अपनी भार्य्या से अन्तिम आलाप किया और अपने प्रतिद्वंद्वी मंडोर के युवराज को द्वन्द्वयुद्ध के लिये बुलाया। वह भी युद्ध की उमंग में था और अपने अपमान मार्ज्जनार्थ मरने को तैय्यार था। तत्काल युद्ध करने के लिये आया। दोनों एक दूसरे के सन्मुख युद्ध करने को उद्यत हुए। कुछ समय तक एक दूसरे से कहता रहा कि पहिला शस्त्राघात तुम करो। अन्त में दोनों ने एक साथ एक दूसरे पर खड्ग चलाया। राजकुमारी ने देखा कि सादू के खड्गाघात गम्भीर लगा है। कुछ काल तक दोनों का कायरों को कंपाने वाला भीषण युद्ध होता रहा। अन्त में अधिक घायल होकर दोनों एक

साथ धरातल पर गिर पड़े और सादू का प्राण पखेरू तत्काल शरीर पंजर से निकल गया परंतु मंडोर का राठोर कुमागार जीवित रहा ।

जब दोनों ओर के युद्धनायकों का भूमि पर पतन हुआ तो दोनों पक्ष के योद्धाओं ने युद्ध बन्द कर दिया । अब कर्म्मदेवी, जो इस युद्ध का कारण थी सती होने को प्रस्तुत हुई । उसने खड्ग लेकर एक हाथ अपना काट डाला और राठौर कुमार के पास भेजकर कहलाया कि यही तुम्हारा शत्रु हाथ है । दूसरा रत्नजटित आभूषणों सहित कवीश्वर महेश को प्रदान किया । । वहीं युद्धक्षेत्र में चिता तैय्यार हुई और कर्म्म देवी अपने पति के शव को अपनी गोद में लेकर प्रज्वलित अग्नि में बैठ कर थोड़ी देर में भस्म में परिणित होगई ।

राठौर कुमार भी शस्त्राघातों से अधिक क्षत विक्षत होगया था इसकारण चार मास पीछे परलोकगामी हुआ ।

श्री० सती कौशिल्या।

कौशिल्या परम सुन्दरि और दया दाक्षिण्यादि गुण युक्त पतिव्रता स्त्री थी। इसका विवाह परम प्रतापी अयोध्यापति महाराज दशरथ से हुआ था। महाराज दशरथ के सन्तान न होती थी इस कारण उन्हों ने केकैयी और सुमित्रा से विवाह किया किन्तु फिर भी सन्तान न हुई तब अन्त में महर्षि वशिष्ट की अनुमति से पुत्रेष्ठि नामक यज्ञ किया।

यज्ञ होने पर तीनों रानियां गर्वव्रती हुईं और तीनों के गर्भों से परम प्रतापी चार पुत्र उत्पन्न हुये। पटरानी सती कौशिल्या के गर्भ से मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र का जन्म हुआ, सुमित्रा के गर्भ से वीरवर लक्ष्मण का जन्म हुआ और केकैयी के गर्भ से युगल भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। यह चारों अत्यन्त पराक्रमी और धर्मात्मा थे जिनका प्रताप आज भी संसार में सूर्य के प्रकाश के समान किसी से छिपा नहीं है। इनके धर्मात्मा और पराक्रमी होने का एक मात्र कारण माताओं की सुशिक्षा का फल था। कौशिल्या समस्त सुखों का धाम अपने मा-

ऐश्वर को समझती थी प्रेम और श्रद्धा से अपने स्वामी की सेवा में तत्पर रहती थी। यह साक्षात् लक्ष्मी स्वरूप पति को अपने गुणों के कारण अत्यन्त प्रिय थी। यह सती पति सेवा में दासी के समान, भोजन कराने में माता के समान गृह प्रबन्ध में मंत्री और रहस्यालाप और धर्माचरण में पत्नी के समान व्यवहार करती थी।

राज्यारोहण से प्रथम दुष्टा मन्थरा के बहकाने से जिस समय केकैयी ने महाराज दशरथ से पहिले दिए हुये यह दो वर मांगे कि रामचन्द्र को वनवास और भरत को राज्य।

धर्मपरायण प्रतापी दशरथ महाराज प्रतिज्ञा में बन्धे हुये कुछ न कह सके और विवश रानी को वचन देकर शोक से विह्वल होगए। पिता के वचनानुसार पितृभक्त रामचन्द्र जी वन जाने को तैय्यार होगए और आज्ञा के लिये पूज्या माता कौशिल्या के पास गए। आहा! कैसा विचित्र समय है राज्या रोहण को उद्यत पुत्र राज की वजाय माता से वनगमन की आज्ञा लेने गए तब गद् २ स्वर से माता कौशिल्या कहने लगीः— प्रिय! वत्स मैं आज अपने को सौभाग्यशालिनी समझती हूं जो

तुम पिता की आज्ञा पालन करने के लिए राज्य को छोड़ कर वन को जा रहे हो परमेश्वर तुम्हें चिरायु करे तुम पितृ ऋण से मुक्त हो शीघ्र आयोध्या में आओ। यहकर धैर्यशालिनी कौशिल्या सती शिरोमणि सीता जी को छाती से लगा कर बोलीः—पुत्रि ! जो स्त्रियां आपद् समय में पति की सेवा नहीं करतीं वह परमेश्वर के यहां पापिनी समझी जाती हैं। स्वामी से सुख पाकर भी जो स्त्रियां पति के दोपों को निकाला करती है, झूठ बोलने वाली और पर पुरुष की इच्छा करने वाली को कदापि सुख नहीं मिलता जन्म जन्मान्तर अन्न वस्त्र और वैधव्य का महा कष्ट उठाती हैं जो स्त्रियो मन, वचन और शरीर से पति की सेवा करती हैं तथा जो सास स्वसुर और नन्द आदियों की पवित्रभाव से सेवा करती हैं वह दोनो लोको में अक्षय सुख और यश पाती हैं। इस लिये पुत्रि ! में तुम को उपदेश करती हूं तुम, रामचन्द्र को इष्ट देव के समान समझो। यद्यपि राम इस समय वनवासी है तथापि तुम्हारे लिये वह ईश्वर तुल्य है। पुत्र वियोग के समय में भी कौशिल्या धर्म पथ दृढ़ पुत्र और वधू को धर्मोपदेश ही करती हैं। इधर माता से आज्ञा ले रामचन्द्र वन गए और उधर शोकार्त महाराज

दशरथ ने स्वर्गयात्रा की। धन्य है मातेश्वरी कौशिल्या तुम्हारी दृढ़ता, सत्य तो यह है रामचन्द्र तुम्हारी ही शिक्षा बल से मर्य्यादा पुरुषोत्तम कहलाए। यद्यपि कौशिल्या का पंचतत्व निर्मित शरीर नहीं तथापि यशोरुप शरीर में जीवित हैं।

मैडम कुरी

इस समय तक किसी स्त्री को संसारमें विज्ञान विद्यामें पारंगत होता नहीं सुना मैडम कुरी पहिली स्त्री है जिसने उक्त विद्या में निपुणता प्राप्त कर संसारको आश्चर्यान्वित कर दिया।

इनका नाम मेरी स्क्लाडोस्का था यह रूस राज्य के आधीन पोलाराज की वासिनी हैं। इनके पिता वोयार्सो युनिवर्सिटी में रसायन विद्या के अध्यापक थे। इन्हें तनखाह बहुत ही थोड़ी मिलती थी उससे गृहस्थी का सारा खर्च निर्वाह करना कठिन था। कुमारी मेरी पिता के रसायन के परीक्षागार में सहकारिणी का काम करने लगी। इसके बाद इन्होंने विश्वविद्यालय के बहुत पाठ्य विषय पढ़े थे। मेरी अपने देश

की सेवा में जीवन अर्पण करने के लिए और भी अधिक विद्या सीखने को व्याकुल हुई । एक रूसी परिवार में अध्यापिका का काम लेकर वे उनके साथ दक्षिण यूरोप में गई जो तनखाह मिलती, उस में से बहुत सा हिस्सा बचा कर अपनी विद्योन्नति में खर्च करती थीं । भूखी रह कर भी पुस्तकें खरीदने में अपना रुपया खरच करती थी । इस प्रकार से बहुत चेष्टा करके एक कालेज में प्रवेश किया । थोड़े ही समय में उन्हों ने वहां बहुत उन्नति करली । उनके अध्यापक ने उन का ऐसा विद्यानुराग देख और रसायन शास्त्र में उन का अद्भुत ज्ञान देख कर उन्हें अपनी सहकारिणी बना लिया । अध्यापक के हृदय में इस नारी के प्रति प्रेम और गंभीर भक्ति का संचार हुआ । उन्होंने इससे विवाह करने का प्रस्ताव किया । यह प्रस्ताव सुनते ही वह उस नौकरी को त्याग कर पिता के पास अपने देश में चली गई । वहां से इसने अध्यापक को लिखा, कि मैंने अपना जीवन स्वदेश और विज्ञान की सेवा में अर्पण करने की इच्छा की है । विवाह करने से यह कामना पूरी न होवेगी । इस कारण विवाह करनेकी इच्छा नहीं । उत्तर में अध्यापकने पत्र लिखा दोनों मिलकर विज्ञान चर्चा करके

उसकी उन्नति करेंगे और वे सदा उसकी सहायता करेंगे। ऐसा लिखनेसे मेरी स्क्लाडोस्काने विवाह किया।

विवाह के बाद पति पत्नी दोनों मिलकर एक एकान्त स्थान में रह कर विज्ञान की चर्चा करने लगे। परन्तु नित्य नौ माइल दूर से कालेज आने में बहुत समय नष्ट होता है, यह देख कर फिर वे शहर में आकर रहने लगे अध्यापक का नाम प्रोफेसर क्युरी था। इस कारण विवाह के बाद मेरी स्क्लाडोस्का का नाम भी बदल कर मैडमक्युरी हुआ। विद्वान् पति को विद्यावती पत्नी मिलने से दोनों का उत्साह बहुत ही बढ़ गया। क्रम से विदुषी मैडम क्युरी के ज्ञान की बात सर्वत्र फैल गई उन्हें उसीकालेज में पति की सहकारिणी की पदवी मिली। इसके पहिले और किसी नारी को यह पदवी नहीं मिली थी। कई वर्ष तक परिश्रम करते २ कए दिन १८९८ ई० में उन्होंने अपने पति को एक आश्चर्य्यजनक वस्तु दिखाई। जोकि उन्हें बोहेमिया की किसी खान में पिचब्लेण्ड नामक पदार्थ से मिला था। यह बहु मूल्य था, इसका गुण यह है, कि अंधेरे में उज्जल दिखाई देता और किसी तरह से घटता नहीं। उत्ताप और प्रकाश दोनों इससे निकलते हैं। आज कल डाक्टर लोग इसकी सहायता से देह के आभ्यन्तरिक

बहुत से गुप्त रागों की चिकित्सा करते हैं। अध्यापक क्युरी ने इस बहू मूल्यद्रव्य के आविष्कार और परीक्षा में अपनी गुणवती पत्नी की बहुत सहायता की थी। पति पत्नी परस्पर सहायता करें, तो कितनी उन्नति होसकती है।

जब रेडियम के गुण की कथा उन्होंने सर्व साधारण में प्रकाश की, तो उनकी प्रशंसा देश देशान्तरों में फैल गई। इङ्गलेण्ड स्वीडेन प्रभृति देश के विद्वानों ने उनका बड़ा सम्मान किया। लण्डन की रायल सोसाइटी से उन्हें सोने के तमगे इनाम मिले। फ्रान्स के लोगो ने अध्यापक क्युरी का तो सम्मान करना स्वीकार किया परन्तु उनकी विद्यावती पत्नी जिनके एकान्त अध्यवसाय और उद्यम से यह अपूर्व पदार्थ पृथिवी के लोगों को मिला उनका गुण स्वीकार करने को सहमत न हुए। इस कारण अध्यापक क्युरी ने फ्रान्स का सम्मान ग्रहण न किया। मैडम क्युरी को डोसिरिस पुरस्कार २६००० रुपये मिले जिससे उनकी पारिवारिक दरिद्रता दूर हुई। पैरिस की सोरबन युनिवर्सिटी ने उनकी वक्तृताएँ शिक्षित मण्डली के लोगों को सुनाने के लिए प्रबन्ध किया।

मैडम क्युरी जगत्विख्याता विदुषी नारी हैं परन्तु उनकी रहन सहन और पोशाक ऐसी सादी है,

कि जो उन्हें नहीं पहिचानते वे साधारण स्त्री ही समझते हैं। परन्तु उनके गुण जितने प्रकाश होने लगे, उतनेही बड़े २ म ... राजा सम्राट् उनकी वक्तृता सुनने के लियेआने लगे। क्युरी दम्पति बाहर की दिखावट बिलकुल पसन्द नहीं करते थे। इस कारण राजाओं के सामने वक्तृता देने को भी राजी नहीं होते थे। परन्तु जब पारस्यके शाह वक्तृता सुननेको बड़ी उत्कण्ठासे पैरिस में आए, तोउन्हें सुनानी ही पड़ी। कहते हैं कि रेडियम को एक कांच के बर्तन में मेज के ऊपर रख वे वक्तृता देने लगी। उसमें से अचानक इतनी रोशनी निकली, कि जिसे देख कर शाह बड़े डरे और उन्होंने मेज को एक दम उलट दिया। रेडियम भी नीचे गिर पड़ा। उसकी हानि से क्युरी को बड़ा दुःख हुआ, और शाह लज्जित होकर अपनी महा मूल्य अंगुठियां मैडम क्युरी को देने लगे। इतने में रेडियम मिल गया। उसकी कुछ हानि नहीं हुई देख कर सब बड़े प्रसन्न हुए। वक्तृता सुन कर और रेडियम के गुण देख कर शाह प्रसन्न होकर मैडम क्युरी को बहु मूल्य भूषण देने को तैयार हुए, परन्तु जिस पुरुष को विद्या रूपी बहु मूल्यवान् रत्न मिला है, उसे झूठे भूषणों का लोभ नहीं रहता। मैडम क्युरी ने भी विनय के

साथ भूषण होना अस्वीकार किया।

कई वर्ष तक पति पत्नी दोनों मिल कर विज्ञान की चर्चा करते रहे। उनके दो कन्या हुईं। सन् १९०६ में एक दिन उनके पति राजपथ से जाते समय एक गाड़ी के नीचे आगए, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। इस समय उनकी उमर ५० वर्ष की भी पूरी न थी। इस विपद् से उनकी गुणवती पत्नी को ही हानि न हुई किन्तु सारे जगत् को बड़ी हानि हुई। उनकी मृत्यु से फ्रांस को तो बहुत ही हानि हुई। कारण वे फ्रांस के रहने वाले थे। परन्तु इस महा विपद में भी मैडम कुरी ने धैर्य्य के साथ अपना कर्त्तव्य पालन किया। और अभी तक वे अकेली ही पति का काम आप कर रही हैं। आज कल उन्होंने एक और मूल्यवान् पदार्थ का अविष्कार किया है जिस का गुण रेडियम से भी अधिक है। इस धातु का नाम पलोनियम रक्खा है परन्तु यह धातु बहुत ही थोड़ी इन्हें मिली है, और इसका अधिक संग्रह होना भी वर्तमान अवस्था में कठिन है। सोरबन में वे आज तक अपने पति की स्मृति रक्षा करने के लिये विज्ञान सम्बन्धी वक्तृता दे रही हैं। जिसे सुनने के लिये पेरिस के बहुत बड़े २ विद्वान् स्त्री पुरुष और पुर्तुगाल के राजा रानी भी आएथे।

आज कल रेडियम से जगत् के लोगों का बहुत उपकार हो रहा है, जिसके लिये मैडम कुरी ही धन्यवादाई हैं। इस विद्यावती गुणवती नारी से केवल उन्हीं के देशवासियों का गौरव नहीं हुआ, वरन् जगत के सारे नारी समाज का गौरव बढ़ गया है। जो लोग कहते हैं कि स्त्रियों को पुरुषों के तुल्य ज्ञान नहीं हो सकता, आज उनके भी भ्रम दूर हो गये।

फ्रांस ने बड़ी कृतघ्नता प्रकाश की है, जिसके लिये सब उसकी निन्दा करेंगे, कि उसने अपनी ऐसी गुणवती नारी रत्न का सम्मान नहीं किया। तौ भी वैज्ञानिकों की मण्डली में मैडम कुरी को सर्वोच्च गौरव प्राप्त हुआ है। उन्हें दो बार नोवल पुरस्कार मिला है, जो पहले किसी पुरुष को भी नहीं मिला था।

कयाधु।

धर्मावतार भक्त प्रह्लाद को कौन नहीं जानता पहाड़ पर से गिरने पर, अग्नि में जलाने के लिये रखने पर और अनेक प्रकार का दण्ड देने पर भी इस महात्मा ने परमेश्वर का भजन नहीं छोड़ा। परमेश्वर ने जिस

की रक्षा लिये स्वयं अवतार धारण किया। उसकी आत्मा को सती कयाधु ने अपने प्रभावशाली उपदेशों द्वारा महान् बनाया था। जिसके प्रताप से यह अद्वितीय भक्त हुआ।

यह दानव राज हिरण्यकश्यप की पत्नी थी। जब कयाधु गर्भवती थीं उस समय देवासुरों में बड़ा युद्ध हुआ इसमें असुरों की पराजय हुई। दानवराज हरण्यकश्यप को जयलाभ की आशा नहीं रही तब अपनी विजयके लिए किसी से बिना कुछ कहे सुने वन में तपस्या के लिये गंमन किया। रानियो और प्रजा की खबर भी न ली। रानियों ने जब सुना कि राजा युद्ध में हार कर वन को गये हैं। तब वे सब आत्म-रक्षा के लिए बड़ी व्याकुल हुई!

इस समय देवराज इन्द्र ने हिरण्यकशिपु की रानियों के महल में जाकर गर्भवती कयाधु को रथ में चढ़ाकर अपने राज्य को प्रस्थान किया। कयाधु भयभीत हो चिल्ला कर रोने लगी। नारद मुनि उस समय उस रास्ते से जा रहे थे। नारद जी ने देखा कि देवराज, कयाधु को हरण करके ले जा रहे हैं। नारद के मन में बड़ा दुःख हुआ और हृदय में दया का सञ्चार हुआ। मुनि ने देवराज से कहा, 'हे इन्द्र! ईश्वर की कृपा से असुरों का नाश करके युद्ध में तुम लोग विजयी हुए हो। परन्तु अब तुम इन अ-

वला नारियों को क्यों कष्ट दे रहे हो ? विशेष करके यह साध्वी रानी कयाधु तो गर्भवती है ।' इन्द्र ने उत्तर दिया 'हे मुनि ! यह रानी गर्भवती है यह जान कर ही मैं ने हरण किया है, इसके जब पुत्र उत्पन्न होगा, मैं उसी समय उसे मार डालूंगा, जिससे वह भी मेरा शत्रु न हो।' नारद जी ने यह सुनते ही तनिक हंस कर कहा, 'हे देव-राज ! तुम डरो मत, इस रानी का पुत्र बड़ा भक्त और धर्मात्मा होगा । उस पुत्र के समान हरि भक्त और कोई न भी होगा । तुम निर्भय होकर रानी को छोड़ दो ।'

इन्द्र ने नारद मुनि की बातों पर विश्वास करके कयाधु को छोड़ दिया । नारद जी उस निराश्रया रानी को अपने आश्रम में ले गए । वे रानी को प्रति दिन धर्मोपदेश देते थे । नारद जी के निकट धर्म और ज्ञान पूर्ण उपदेश सुन कर रानी सब शोक और दुःख भूल गई और परम शान्ति को प्राप्त हुई । कुछ काल व्यतीत होने पर दैत्यराज हिरण्यकश्यप बन से लौट आए और अपनी भार्य्या कयाधु को नारद जी के आश्रम से ले गये ।

गर्भावस्था में माता के मन का भाव जैसा रहता है, सन्तान उसी भाव को प्राप्त करती है । नारद जी की शिक्षा से कयाधु के हृदय में हरि की भक्ति और प्रेम का सञ्चार

हुआ था और इसी कारण उसके पुत्र प्रह्लाद जी माता के प्रेम और श्रद्धा मिश्रित दुग्धको पान करके भविष्य जीवन में महा भक्त और दृढ़ विश्वासी बने और अपने गुण से सारे जगत् को मुग्ध किया। प्रकृत कथा यही है कि सुमाता से ही सुपुत्र उत्पन्न होता है। यदि स्त्रियां सत्य-परायण और विद्यावती होवें, तो सन्तान भी सत्यवादी कर्तव्य परायण और विद्वान होंगी और उनके सुसन्तानों से हमारे देश और धर्म की उन्नति होगी।

हिरण्यकशिपु ने जब अपने कुमार पुत्र प्रह्लाद को ईश्वर का नाम लेने से मना किया और प्रह्लाद जीने पिता की आज्ञा धर्म विरुद्ध जान कर पालन नहीं की। तब पिताने पुत्र को बड़े कठोर दुःख दिये पर उस दुःख के समय भी धार्म्मिका माता कयाधु पुत्र की हरि भक्ति बढ़ाने के लिये उत्साह देती रही। प्रह्लाद को मारने के लिये दु-राचारी पिता ने हाथी के पांव में बांधा, अग्नि में जलवाया गरम तेल की जलती हुई कढ़ाई में डाला, गले में पत्थर बांध कर समुद्र में फेंकवाया, ऊंचे पहाड़ के ऊपर से नीचे गिर वाया, और बलवान मल्लों के साथ कुश्ती लड़वाई। दुष्टात्मा पिता ने भक्त पुत्र को मारने के लिये और भय दिखाने के कितने ही यत्न किये, परन्तु उसकी मनो-

कामना सुफल न हुई। जिसके रक्षक स्वयं परमात्मा हैं उसे कौन मार सकता है? जब प्यारे पुत्र के ऊपर इतना अत्याचार हो रहा था, उस विपद काल में भी साध्वी माता ने कहा, 'हे पुत्र कुछ भय नहीं, दयालू परमात्मा का नाम स्मरण करो, उन्हीं पर विश्वास रक्खो, वही तुम्हारी रक्षा करेंगे। उनके नाम से पाषाण भी पानी पर तैरेगा, असम्भव भी सम्भव होगा।' प्रह्लाद माताके स्नेह और उत्साह पूर्ण उपदेश को सुन कर दूने उत्साह के साथ हरिनाम गाने लगे। धन्य माता कयाधु।

रानी कोटा।

टा के अन्तिम हिन्दू राजा उदयदव की मृत्यु के पीछे उसकी रानी कोटेकी गद्दी पर बैठी परन्तु रानी कोटा के साथ उसके परिपालित दास शाहमीर ने विश्वासघात किया और छल बल से अपने को राजा बनाया रानी कोटा को विवाह करने के लिये बहुत तंग किया। वह अपने सतीत्व रक्षा के लिये छिप कर भागी परन्तु पकड़ी गई। जब विवाह के लिये लाई गई

तो साथ में वह एक कटार छिपा कर लाई। ठीक विवाह समय कटार पेट में मार कर आत्महत्या की। मरते समय कहा ले कृतघ्न विश्वसघातक ! जिस शरीर को तू चाहता है वह तेरे सन्मुख है। हिन्दुओं का राज्य कोटा में इसीके साथ समाप्त हुआ।

कलावती।

यह मध्य भारत के एक छोटे से राज्य के अधीश्वर राजा करणसिंह की रानी थी। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने राजा करणसिंह के राज्य पर चढ़ाई की। राजा करणसिंह का राज्य छोटा था न अधिक सेना ही थी फिर भी वह क्षात्र धर्मानुकूल शक्तिशाली बादशाह से लड़ने को उद्यत होगए। वे झटपट युद्ध की तय्यारी कर स्वराज्य...रक्षार्थ रणभूमिमें जाने को उद्यत होगये। पति को युद्धार्थ सन्नद्ध देख रानी कलावती भी अस्त्र शस्त्र धारण कर पुरुष वेश में घोड़े पर चढ़ कर अपने पति के साथ चलीं। युद्ध आरम्भ हुआ। धीरे २ युद्ध की भीषणता बढ़ने लगी। कुछ समय तक दोनों ओर के योद्धा

बड़ी वीरता से लड़ते रहे। राजपूत योद्धा यह देख कर कि हमारी संख्या बहुत कम है बडे पराक्रम से प्राणों का मोह छोड कर युद्ध करने लगे। राजपूत वीर असाधारण साहस और भीम वेग से मार काट करते हुए मुसल्मान सेना को ध्वंस करने लगे। जिस समय घोर युद्ध हो रहा था तो कलावती बड़ी वीरता से पति की सहायता कर रहीं थीं जिधर युद्ध में राजा करणसिंह लड़ रहे थे उधर ही वह भी शत्रु सेना से लड़ती हुई जाती थीं और पति की प्राण—रक्षा का भी ध्यान रखती थीं। शत्रुसेना के एक सिपई ने दूसरे योद्धा से लड़ते हुए देख बाईं तरफ से उन पर खड्ग प्रहार करना ही चाहा था कि रानी ने झट घोडे को बढ़ा कर उस सिपाही का सिर अपनी तीक्ष्ण तलवार से काटकर धरती पर गिरा दिया कुछ देर पीछे राजा के विषम अस्त्राघात लगा। राजा की ऐसी अवस्था देख कर रानी बडे रोष से शत्रुदल से लड़ने लगीं। रानी का पराक्रम देख कर राजपूत योद्धा भी अपूर्व विक्रम से लड़ने लगे। रानी और राजपूतों की वीरता के सन्मुख यवन—सेना न ठहर सकी, युद्धभूमि छोड़ कर भाग उठी। रानी कलावती अपने पति को लेकर राजधानी में लौटी, चतुर वैद्य बुला कर प्राण प्रिय पति की चिकित्सा क-

राने लगीं वैद्यों ने राजा के घावों की बहुत कुछ दवा की किंतु जब किसी तरह वह घाव अच्छा न हुआ तो उन्होंने रानी से कहा कि यह घाव विषके बुझाये हुये अस्त्र का है यदि मुख से चूसा जाय तो राजा अच्छे हो जायेंगे किन्तु चूसने वाला मर जायगा। इसके सिवाय अब किसी भांति राजा का घाव अच्छा नहीं हो सकता। रानी ने यह सुन कर विचार किया कि सब को अपने अपने प्राण प्यारे हैं कौन इस घाव को चूस सकता है इस लिये मुझे ही यह उपाय राजा की आरोग्यता के लिये करना चाहिये। जब राजा सोये हुये थे रानी ने उनके घाव को चूसा और चूसने पर उसके विष के प्रभाव से मर गई। राजा की जब निद्रा भंग हुई और उन्हों ने यह समाचार सुना तो यह कह कर—हा! जिस प्राण प्रिया रानी ने मेरी प्राण रक्षा के लिये अपने प्राण दिये क्या मैं उसके बिना जीवित रह सकता हूं अपने हृदय में कटार मार कर अपना प्राण दिया। धन्य हैं ऐसी पत्नी व पति को जिन्होंने कि एक दूसरे के लिये अपने प्राणों तक का मोह न किया।

कोई कोई इतिहासकार करणसिंह का नाम रणसिंह भी लिखते हैं। और किसी किसी का यह भी विचार है कि रानी के मरने के बाद राजा ने आत्म घात नहीं किया

प्रत्युत: स्त्री वियोग में आजन्म विवाह नहीं किया। जो हो कलावती का यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय और अनुकरणीय है धन्य है ऐसे दम्पति को।

कर्णवती, कर्मदेवी, कमलावती

व सन् १५६७ ई० में बादशाह अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की; राजपूतों ने स्वदेश रक्षा के लिये वीरता पूर्वक युद्ध किया जयमल्ल शत्रुओं के हाथ से मारेगये तब १६ वर्ष का नवयुवक फत्ता असीम उत्साह से युद्ध करने के लिये समस्त राजपूत सेना का अधिनायक बन कर युद्ध के लिये कटिबद्ध हुआ। इसी समय ३ वीरांगनाऐं स्वदेश के लिये प्राण अर्पण करने को उद्यत हुईं। तीनों ने शस्त्रास्त्र ले कर मुगल सेना की गति रोकने का यत्न किया। युद्ध में जाते समय फत्ता माता कर्म्म देवी बहिन कर्णवती और प्रियतमा कमलावती के पास गया तब सबने युद्ध में साहस दिखला कर पूर्वजों की कीर्ति को कलङ्क न लगने का उपदेश दिया।

अकबर की सेना दो तरफ युद्ध कर रही थी। एक भाग

की सेना अकबर की अध्यक्षता में लड़ रही थी, और दू-
सरे भाग की सेना एक और अनुभवी वीर सेना पति
की आधीनता में थी। इसी दूसरे सैनिक दल से फत्ता
का घोर युद्ध हो रहा था और बादशाह अकबर दूसरी
ओर से उस भाग की सहायता को जा रहा था। सहसा
एक तरफ़ से गोलियों की वृष्टि होने लगी और मुगल सै-
निक मर कर भूमि पर गिरने लगे इसलिये फत्ता
की तरफ़ फौज जाने से रुक गई। अकबर बड़े विस्मय से
जिधर से गोलीं आतीं थीं देखने लगा तो ज्ञात हुआ कि ३
नारियां पहाड़ की चोटी पर एक पेड़ की ओट से गोली
चला रहीं हैं। इनमें से एक फत्ता की माता दूसरी पत्नी
और तीसरी बहिन थी। जब फत्ता को युद्ध के लिये भेज
चुकीं तो माता कर्म्मवतीं ने पुत्रवधू कमलावती से कहा
बेटी अब चित्तौड़ बचता दृष्टि नहीं आता इसलिये आओ
हम तीनों भी युद्ध में चल कर फत्ता का युद्ध में साथ दें।
तीनों शस्त्र चलाने में कुशल थीं इस लिये उन्हों
ने गोली चलाने में बड़ी चतुरता और पराक्रम दिखलाया
और अकबर की बहुत सेना का नाश किया। अकबर ने
जब इस प्रकार तीन अबलाओं से अपनी सेना का
विध्वंश होता हुआ देखा तो तीनों को जीवित

पकड़ कर लाने वाले को इनाम देने को कहा किसी ने उसकी बात पर विशेष ध्यान न दिया। इसी बीच में कर्णवती के आकर गोली लगी और वह कोमलाङ्गि गिर पड़ी। उसकी माता कर्णवती ने यह देखा परन्तु घबराई नहीं और युद्ध करती रही। थोड़ी देर पीछे एक गोली कमलावती के बाऐ हाथ में आकर लगी और बन्दूक च-लाने को असमर्थ होगई और थोड़ी देर तक स्थिर भाव से शत्रुओं को देखती रह कर उस भयंकर आघात से बे-सुध होकर गिर पड़ी। पीछे कर्म्मदेवी की भी यही दशा हुई। जब फत्ता अकबर की सेना को पहिले दिन के युद्धमें जीत करके पहाड़ पर आया तो कमला ती और कर्णदेवी की वाणी बन्द हो गई थी। जिस समय फत्ता ने कमलावती के शरीर पर हाथ रक्खा तो कमलावती ने नेत्र खोल कर प्रियतम को एक बार देखा और सानन्द देह त्याग दिया। कर्म्मदेवी इस समय अन्तिम श्वास ले रही थी और उसे चेत न था इसलिये फत्ता के उठाते ही उसका प्राण परवेरू उड़ गया। कर्णवती तो पहिले ही स्वर्ग को चली गई थी। धन्य है देवियों तुम्हारे माता पिता को जिन के गर्भ से जन्म लेकर जन्म भूमि के हित प्राण दिये।

सती गङ्गा ।

यह एक दरिद्र ब्राह्मण की सम्पा नाम की पत्नी थी । यह अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी थी जिस को देख कर उस देश का राजा मोहित होगया । और उसको वश करने के लिए उसके पास एक कुटनी दूती भेजी । परन्तु जब किसी प्रकार से उस का मनोरथ सिद्ध न हुआ, तब धोखे से सम्पा को नदी के तीर एक मनोहर पुष्प वाटिका में लाकर, उसे लोभ और डर दिखाया । पतिप्राणा नारी राजा को निर्भय चित्त से बहुत धिक्कारने लगी । किन्तु राजा क्रोध और काम के वश होकर ज्यों ही उसे पकड़ने को उद्यत हुआ, त्यों ही सती दुष्टात्मा के स्पर्श रूपी कलंक से अपनी रक्षा करने के लिए और अपने क्षण भंगुर जीवन की अपेक्षा सतीत्व रत्न को अमूल्य जान तरङ्गमयी प्रवाहशालिनी गङ्गा में कूद पड़ी । वह भी उसको पकड़ने के लिये कूद पड़ा । सती तो ईश्वर की दया से तरङ्गों के वज्र से तीर पर जीवित आगई, परंतु पापाचारी राजा डूब कर मर गया । सती के सतीत्व की रक्षा हुई, इस

लिये गङ्गा के उस भाग का नाम ही तब से सती गङ्गा हुआ।

विदुषी गार्गी।

—०—

यह विदुषी परम दार्शनिक गर्गाचार्य की धर्म पत्नी थी। यह आधुनिक स्त्रियों की भांति आडम्बर पसंन्द नहीं करती थी। इसको आध्यात्म विद्या से अनन्य प्रेम था। यह कहा करती थी, आध्यात्म ज्ञान ही से आत्मा की शुद्धि और मन को शान्ति मिलती है। जिस शास्त्र में ब्रह्मज्ञान विषयक चर्चा न हो उसका पढ़ना व्यर्थ है।

मगध देश में विदेह नामक एक प्रदेश था वही विद्याओं के विचार का केन्द्र स्थान था। मिथला के राजर्षि वृहद्रथ जनक ने 'बहुदक्षिणा' नामक यज्ञ किया। और जहां तहां से धार्मिक और विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाया। जनक ने यह जानने की इच्छा से कि कौन ब्रह्म विद्या में पारंगत है। सौ गौओं के सींगों पर सुवर्ण मंढवा कर कहा—आप लोगों में से अधिक ब्रह्मज्ञ को यह गौवें दान देना चाहता हूं।

अन्त में याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपने शिष्य सोमश्रवा

को गौ लेजाने की आज्ञा दी। याज्ञवल्क्य के इस कार्य्य से ब्राह्मण कुपित हुए किन्तु वे कुछ भी नहीं बोले। जनक राजा के पुरोहित अश्वा ने कहाकि—याज्ञवल्क्य! क्या आप हम सब से अधिक वृक्षज्ञ हैं? तदन्तर यस्तकार वंशके आर्तभाग, लाह्यपुत्र, भुज्यु; चरक के पुत्र उपरस्त और कुषितक के पुत्र कहोड़ प्रभृति ने विविध प्रकार के प्रश्न पूछे, सब के उचित उत्तर मिलने पर गार्गी ने याज्ञवल्क्य के साथ प्रश्नोत्तर किये थे जिस को हम यहां पर उतद्धृ करते हैं।

गार्गी—यावल्क्य! यह जगत् जल से व्याप्त हो रहा है वह जल किस से व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य— वायु से।

गार्गी—वायु किस से व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—पृथ्वी, जल, तेज़ वायु और आकाश से।

गार्गी—फिर वह किस से व्याप्त हो रहा है?

याज्ञवल्क्य—गान्धर्व लोक के द्वारा।

गार्गी—वह किस से व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—सूर्य लोक के द्वारा।

गार्गी—सूर्य किस से व्याप्त है?

याज्ञवल्क्य—चन्द्र लोक के द्वारा।

गार्गी—फिर वह किस से व्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य—नक्षत्र लोक से व्याप्त है ।

गार्गी—नक्षत्र लोक किस से व्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य—देव लोक के द्वारा ।

गार्गी—देव लोक किस से व्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य—इन्द्र लोक के द्वारा ।

गार्गी—वह किस से व्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य—ब्रह्म लोक के द्वारा ।

गार्गी—फिर ब्रह्म लोक किस से व्याप्त है ?

गार्गी के इस अन्तिम प्रश्न को सुन कर याज्ञवल्क्यने कहा कि गार्गी ! पराजित होने की शंका से ऐसा असंभव प्रश्न मत कीजिए । आप ने जो प्रश्न पूछा है वह जिज्ञासासे बाहर की वस्तु है इस लिए हे देवि ! इस विषय में प्रश्न पूछना उचित नहीं है ।

फिर गार्गी समस्त ब्राह्मणों को सम्बोधन करके बोली हे ब्राह्मणवृन्द ! मैं याज्ञवल्क्य जी से और दो प्रश्न पूछना चाहती हूं । यदि इन दो प्रश्नों का उत्तर वे दे सकेंगे तो आप को स्वीकार करना पड़ेगा कि कोई ब्रह्मज्ञानी उनको पराजित नहीं कर सकता ।

गार्गी—नभो मण्डल के ऊपर के भाग में और भू-

लोक नीचे के भाग में कौन है ? आकाश व भूमण्डल क्या है ? और किस से यह सब कुछ ओतप्रोत भाव से रहा है भूत, भविष्य और वर्तमान कालके कौन पदार्थ में व्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य—ऊपर की ओर नीचे की सभी जगह महाकाश से ओतप्रोत है।

गार्गी—मुनिवर आप के इस संयुक्त उत्तर से कृतार्थ हुई हूं। मैं ऐसे सदुत्तर देने के कारण आप को प्रणाम करती हूं। अब अन्य प्रश्न का कृपा कर उत्तर दीजिए ?

आपने कहा था कि महाकाश से पृथ्वी ऊपर के व नीच के दोनों प्रदेश का सन्धिस्थान हैं। और भूत भविष्य और वर्तमान काल परिव्याप्त हो रहे हैं वह ठीक है किन्तु वह महाकाश किस से परिव्याप्त है ?

याज्ञवल्क्य—गार्गी ब्राह्मणगण जिसे प्रणाम करते हैं वह अक्षर ब्रह्म है। वह स्थूल किम्वा सूक्ष्म, ह्रस्व किम्वा दीर्घ नहीं है, लाल नहीं है, चिकनी वस्तु भी नहीं, छाया किम्वा अन्धकार वायु किम्वा शून्य नहीं है; वह माया फल किम्वा गन्ध भी नहीं है। नेत्र, कर्ण, मन, वाणी, तेज किम्वा प्राण नहीं है। वह मुख और उपमा रहित है।

हे गार्गी ! उस परमात्मा के शासन वल से चन्द्र, सूर्य्य, भूलोक और देवलोक, निमेष, मुहूर्त, रात्रि, दिवस,

पक्ष, मास, ऋतु, सम्वत्सर, स्थिति करते हैं, उस अवि-
नाशी जगदीश्वर के शासन से पूर्व और पश्चिम में बहिने
वाली नदियां, सफेद परवतों से निकल कर प्रवाहित
होती हैं।

हे ! गार्गी ! जो मनुष्य उस अक्षय परमात्मा के
यथार्थ तत्व को न जान कर केवल योग, यज्ञ, तपश्चर्या
और हवन करते हैं वे कदापि स्थायी मूल को प्राप्त कर
ने में समर्थ नहीं होते, किन्तु जो पुरुष उनके तत्व को
जान कर परलोक में गमन करते हैं वही ब्राह्मण अर्थात्
सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हैं। गार्गी उस परमात्मा को कोई नहीं
देखता, किन्तु वह सब किसी को देखता है, उनके कथन
को कोई नहीं सुन सकता, किन्तु वह सब किसी के कथन
को सुन सकता है। कोई उनको नहीं जान सकता, किंतु
वह सब को जानता है। गार्गी ! यह दृश्यमान नभो मंडल
उसी से ओतप्रोत भाव से परिव्याप्त हो रहा है।

शोक और पश्चाताप का विषय है कि हमारे देश की
नारियां आज कल कलह और द्वेष के सिवाय कुछ नहीं
जानतीं कि आचार किसे कहते हैं और नीति क्या वस्तु है।

सती गोपा ।

द्ध धर्म्म के प्रवर्त्तक बुद्धदेव को जगत् में कौन नहीं जानता। महात्मा बुद्ध जैसे धार्म्मिक थे, उनकी सहधर्म्मिणी गोपादेवी भी वैसी ही विद्यावती और धर्म्म परायणा तथा बुद्धिमती थीं । बाहर के आडम्बरों को त्याग करके केवल सार विषयों का ग्रहण करतीं थीं । इसी कारण वे घूंघट से अपना मुख कभी नहीं ढकती थीं । यह देख कर बहुतेरी मूर्खा स्त्रियां उनकी निन्दा करने लगीं । कोई कहती "यह बहू बड़ी निर्लज्ज है, कोई कहती इसे धर्म ज्ञान नहीं।' इन आक्षेपों को सुन कर गोपा ने इस प्रकार से उत्तर दिया करती थी—"धर्म्मशील मनुष्य जिस अवस्था में रहते हैं, उसी में वह सुशोभित होते हैं । गुणवान् मनुष्य यदि तृण के वस्त्र या सैकड़ों जोड लगी कन्था धारण करें या कुरूप भी हों तो भी वे अपने गुणों के प्रभाव से शोभायमान होते हैं । धर्म्म ही मनुष्य का आवरण है और धर्म्म ही मनुष्य की शोभा है । नाना अलंकारों से भूषित मनुष्य यदि पापाचारी हो तो उसकी शोभा नहीं रहती । जिस

स्त्री का हृदय पापवासना पूर्ण है। बाहर के सुन्दर कपड़े और घूंघट से उसे क्या लाभ हो सकता है ? इन्द्रियां जिसके वश में हैं, चित्तवृत्ति जिसकी एकाग्र और जिसके मन में सन्तोष है, उसे घूंघट से मुख ढकने का क्या प्रयोजन है ? जिनको लज्जा नहीं, मान नहीं, जिनका चित्त वशमें नहीं, इन्द्रियां सब दुर्दमनीय हैं वे सहस्र आवरणों से ढकी रहने से भी सुरक्षिता नहीं हो सकतीं। जिसका चित्त अपने वश में है, पति में जिसके प्राण हैं, वह यदि चन्द्र सूर्य्य की नाईं सब के सामने प्रकाशित हो तो उस में भी कुछ दोष नहीं। जो स्त्री आप अपनी रक्षा करती है, वही सुरक्षित है। जब चरित्र ही मेरा दुर्भेद्य वस्त्र है, और धर्म्म मेरा रक्षक है तो कपड़े के घूंघट से मुझे क्या प्रयोजन है ?" ऐसे २ धर्म्म—पूर्ण युक्तियुत वचनों से गोपादेवी ने स्त्रियों का भ्रम दूर किया। गोपा ने शेष जीवन में बौद्ध धर्म्म ग्रहण करके ब्रह्मचारिणी बन कर कठोर बौद्ध धर्म्म का साधन किया था। धन्य है देवी तेरे सदुपदेश, वास्तव में पांचों इन्द्रियों को जीतना परम तप है और ऐसी तपस्विनी का कोई कुछ नहीं कर सकता।

———

चंचल कुमारी।

यह रूप नगर के राजा विक्रमसिंह की पुत्री थी। रूपनगर एक छोटी सी रियासत थी, जिसके केवल सौ गांव थे। यह कुमारी अत्यन्त सुन्दरी और बुद्धिमती थी।

दैव की गति बडी विचित्र है। यह सदैव किसी को एक सी दशा में नहीं देख सकता। इसी नियम के अनुसार दैव चंचल कुमारी को भी सुखी नहीं देख सका। युवा अवस्था के आरम्भ में ही चंचल कुमारी भी दैव की दृष्टि का लक्ष्य हुई।

एक दिन महल में कोई बिसातिन तस्वीर बेचने गई। बिसातिन ने अकबर, जहांगीर आदि अनेक मुसल्मान राजाओं के चित्र दिखाए। इन्हें देखकर चंचल कुमारी ने कहा क्या तुम्हारे पास हिन्दू राजाओं के चित्र नहीं। इसके उत्तर में बूढ़ी बिसातिन ने राजा मानसिंह तथा जगत् सिंह आदि की तस्वीरें दिखाई। इनको देख कर चंचल कुमारी घृणा के साथ बोली-छिः यह हिन्दुओं की तस्वीरें नहीं हैं, क्योंकि यह स्वार्थवश बादशाह के गुलाम हो गए हैं इनका वीरत्व और हिन्दू पन क्या रहा। फिर बूढ़ी ने महाराणा

प्रतापसिंह, महाराणा अमरसिंह और करणसिंह आदि के चित्र दिखाए। इन चित्रों को चंचल ने बड़ी प्रसन्नता के साथ खरीद लिया।

तस्वीर खरीदने पर बिसातिन ने कहा यदि तुम्हारी इच्छा हो तो और वीरों के चित्र दिखाऊँ। चञ्चल कुमारी को वीर और धर्मात्मा पुरुषों के चित्र और चरित्रों से बहुत प्रेम था। उसने कहा—अवश्य दिखाओ। आज्ञानुसार बिसातिन ने औरंजेब का चित्र दिखाया जो कि अपने समय का पराक्रमी शहनशाह था परन्तु धर्मान्ध होने के कारण हिन्दुओं पर बड़ा अत्याचार करता था इस लिये हिन्दू नारियां अत्यन्त घृणा करती थीं।

औरंगजेब के चित्र को घृणित दृष्टि से देख कर एक लड़की ने ज़मीन पर गिरा कर उसको पैरों से कुचला। चञ्चल कुमारी को तस्वीर के साथ यह बर्ताव बहुत ही बुरा लगा और डपट कर कहा यह व्यवहार सभ्यता के विरुद्ध है।

बिसातिन क्रोधित होकर बोली—यह खबर यदि बादशाह को मिली तो रूप नगर की ईंट भी न मिलेगी। चञ्चल कुमारी बिसातिन के यह अभिमान भरे वचन न सुन सकी और लड़कियों से बोली बारी २ सब इस की तस्वीर पर लात मारो। सब ने ऐसा ही किया।

भाग्यवश यह समाचार फैलते २ औरङ्गजेब की ल-ड़की जेबुन्निसा के कानों तक पहुंचा। उसने उदयपुरी बेगम से सब हाल कहा।

उदयपुरी बेगम दाराशिकोह के महल में रहती थी और ईसाई थी। दाराशिकोह को औरंगजेब ने मार कर इसको अपनी स्त्री बनालिया था। यह औरंगजेब को ब-हुत प्यारी थी।

उदयपुरी ने सारा हाल औरंगजेब से कहकर कहा मैं उस समय प्रसन्न होऊंगी कि जब चंचल आ कर मेरा हुक्का ठंढा करे। इसी प्रकार जेबुन्निसा ने भी कहा कि मैं उस से पैर दबवाया करूंगी।

औरंगजेब को उचित तो यह था कि चंचल का बाल्य-भाव समझ कर शान्त हो जाता किन्तु उस अभिमानी ने उसी समय रूपनगर को पत्र लिखा कि चंचल कुमारी को भेज दो मैं उस से विवाह करूंगा।

यह समाचार जोधपुरी बेगम (यह जोधपुर के खा-नदान की एक स्त्री थी और अपने धर्मानुसार महल में मूर्ति पूजन तक कर सकती थी) के कानों तक पहुंचा उस ने औरंगजेब को बहुत समझाया किन्तु उसने एक न सुनी निदान इसने अपनी विश्वासी दासी देवी को जोधपुर के

बहाने से रूपनगर चंचल के पास यह सन्देसा भेजा—हिन्दुओं की मान मर्य्यादा नष्ट हो चुकी है हिन्दू राजा निर्लज्ज और धर्महीन हो गए हैं, गौहत्या होती है और जज़िया (इस नाम का एक कर औरंगजेब हिन्दुओं से लेता था) लिया जाता है किन्तु सब आनन्द विलास में लिप्त हैं। बादशाह तुझको विवाहना चाहता है सो उदयपुर के राणा से सहायता लेकर अपने धर्म और मान की रक्षा कर। यह न समझना कि मैं इस विचार से कहती हूं कि मेरा बेटा ही गद्दी का मालिक हो। मैं सच कहती हूं कि मैं यहां अत्यन्त दुःखी रात दिन मृत्यु की बाट देखती हूं। मैं यही उपदेश देती हूं जैसे हो अपने धर्म की रक्षा करना।

औरंजेबका सन्देशा रूपनगर पहुँचते ही चारों ओर कोलाहल मचगया। राजा नें यह विचार कर कि जोधपुर अम्बर के राजाओं ने अपनी कन्या देदीं। उनके सामने मैं एक छोटा और निर्बल राजा हूं यदि न दूं तो कर ही क्या सकता हूं। चञ्चल कुमारी को उदयपुर भेजना स्वीकार कर लिया। किन्तु चञ्चल को देहली जाना स्वीकार न था इस लिये शोक नहीं २ विचार सागर में मग्न हो गई और अन्त में निश्चय किया हिन्दुपति उदयपुर के महाराणा

राजसिंह की शरण लेकर प्राण बच सकते हैं और यदि वह शरणागत की प्रार्थना स्वीकार न करें तब प्राण नाशक विष से अपने धर्म की रक्षा करूंगी । यह विचार कर चञ्चल ने एक पत्र महाराणा राजसिंह को लिखा कि:—औरंगजेब की सेना मुझ को लेने आने वाली है समस्त हिंदु राजा मुसल्मानों के आधीन होचुके हैं केवल आप ही एक स्वाधीन और वीर राजा हैं जो मेरी इस समय रक्षा कर सकते हो । मैं मृत्यु और जीवन के बीच में फंसी हूं, मृत्यु मेरे हाथ और जीवन आपके हाथ है । इत्यादि

अनन्त मिश्र को यह पत्र और मोतियों का हार देकर समझा दिया कि जब राणा जी पत्र पढ़ें हार उनके गले में पहिना देना ।

अनन्त मिश्र पत्र और मोतियों का हार लेकर उदयपुर को चले गए । भाग्य वश राह में उन्हें ठग मिल गए। इनको व्यापारी या यात्री जानकर मिश्र जी ने पूछा कि उदयपुर यहां से कितनी दूर है । ठग मिश्र के मनोभाव को समझ गए और उत्तर दिया यहां से थोड़ी ही दूर है चलो हम भी तुम्हारे साथ ही चलते हैं । यह कुछ ही दूर गए होंगे कि एकान्त देख कर ठगों ने इनको बांध दिया और सब माल इन से छीन लिया । भाग्यवश महाराणा

राजसिंह शिकार खेलते उधर आ निकले। उन्हें देख कर डाकू अनन्त मिश्र को बंधा जोड़ भागकर दुबक गए। राजसिंह को अनन्त मिश्रको बन्धा देख कर दया आई उस से पूछा कि क्या बात है। अनन्त मिश्र ने रोकर जिधर ठग गए थे इशारा किया राणा जी ने वहां जाकर तीन ठगों को अपनी तीक्ष्ण तलवार का निशाना बनाया।

चौथे के मारने के लिये ज्यों ही तलवार चलाई वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा-"महाराज मुझे शरणागत जानकर प्राणदान कीजिये मैं आपका आजन्म दास रहूंगा"। यह सुनकर महाराज ने तलवार म्यान में रखली और पूछा तू कौन है और तूने मुझे कैसे पहिचाना। इसके उत्तर में उस शरणागत ठग ने कहा महाराज ऐसा कौन पुरुष है जो सूर्य्य के समान तेजामय मुख को देख कर आपको न पहिचान सके। मैं क्षत्रिय हूं और मेरा नाम मानक लाल है।

परमात्मा जो करता है अच्छा ही करता है यदि इस समय ठग अनन्त मिश्र को न पकड़ते तब इसे महाराणा जी के दर्शन न मिलते और चचंल की रक्षा का होना असंभव था जैसा कि आगे मालूम होगा।

- ठगों से महाराणा जी ने अशर्फी व मोतियों का हार और चचंल कुमारी का पत्र लेलिया और अनन्त मिश्र के

लिफ़ाफ़ा खोल कर वहीं एक चट्टान पर पढ़ने के लिये बैठ गए यह पत्र इन्हीं तेजस्वी महाराणा के नाम था।

पत्र पढ़ कर महाराज ने मानक लाल से कहा—तुम को इस पत्र का रहस्य मालूम होगया है सो तुम किसी से जिक्र न करना। उनमें से कुछ रुपए मानक लाल को देकर कहा जाओ अपने घर होकर और गृहकार्य्य करके उदय पुर मिलना।

मानक लाल को विदा करते ही कुछ आदमी दिखाई दिये जिन्हें देख कर अनन्त मिश्र डरे कहीं यह भी डाकू ही न हों। यह राणा के लड़के संबंधी और सिपाही थे जो कि शिकार में पीछे रहगए थे। सबके एकत्रित होने पर राणा जी ने कहा—मित्रो हमें आज लड़ाई पर जाना है और हम केवल पचास ही आदमी हैं इसलिये जिन को अपना जीवन प्रिय हो मैं बड़ी प्रसन्नता से उनको उदयपुर जाने की आज्ञा देता हूं।

राणा की यह बात सुनकर सब चित्रवत खड़े के खड़े रहगए किसी को इसका रहस्य मालूम न था कि कहां और कैसी लड़ाई जब कि सब शान्त खड़ेथे राजा के दोनों पुत्रों ने कहा पिता जी! फिर क्या चिन्ता है आप सिंह हैं और हम भी आप के पुत्र हैं सिंह तो हजारों जीवों को

इकला मारता है क्या हम लोग क्षत्रिय नहीं जो युद्ध से डरें।

दोंनों की यह बात सुनते ही सब वीरों ने एक स्वर से थोड़ी संख्या में होने पर भी युद्ध में जाना स्वीकार किया और कोई भी उदयपुर को न गया।

राजपूत और अपने पूत्रों की यह बात सुनकर राणा जी ने प्रसन्न होकर चंचल कुमरी के पत्र का सारा हाल कह सुनाया और छिपकर चंचल को लाती हुई सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी।

इधर रूपनगर में चंचल के बादशाह के यहां जाने का हाहा कार मच रहा था। किन्तु कोई अत्याचारी और शक्तिशाली औरङ्गजेव के सन्मुख करही क्या सकता था निदान चंचल का शृङ्गार करके उसको पालकी में बैठा ने को लिये जाते थे उस ने प्यारी सखी निर्मल को उदास देख कर कहा—तुम बृथा क्यों उदास होती हो यदि राणा ने रक्षा न की तो विश्वास रखो अपने धम की स्वयं रक्षा करूंगी अर्थात् मार्ग में ही विष खाकर प्राण त्यागदूंगी। पर मुसल्मान का मुख न देखूंगी वियोग दुःखिता निर्मल ने इसका कुछ उत्तर न देकर केवल इतना कहा—ईश्वर तेरी रक्षा करे।

रोती हुई चंचल पालकी में बैठ कर ईश्वर से प्रा-

थना करने लगी—हे देव मेरी रक्षा करो आप भक्त वत्सल हैं क्या हंसिनी कव्वे के घर जायगी हे दीनबन्धु मैं आपकी शरण हूं। इस प्रकार प्रार्थना करती हुई चंचल रूपनगर से कई मील निकल गई तब उसके कानों में इस मधुर गान की आवाज़ आई—तेरी गति लखिना परे। सो मेरे प्रभू तेरी गति लखिना परे।—टेक—ऋषि मुनि योगी थकर हारे अरु श्रम बहुत करे, भेद अपार पार नहीं पावे बुद्धि मति सकल रही! सो मेरे प्रभू॥ दीनानाथ दीनन के स्वामी दीन दयालु हरी। भक्तन की प्रभू आन संभारो जब २ विपत्ति परी। सो मेरे प्रभू॥ यह सुन कर चंचल समझ गई परमेश्वर ने मेरी रक्षा के साधन उत्पन्न कर दिये।

यह गाने वाला मानक लाल था। घर न जाकर मुसल्मानी वेश में रूपनगर से ही पालकी के साथ हो लिया था।

रूपनगर से देहली का एकही रास्ता पहाड़ में होकर था वहीं राणाजी छिपे हुए शत्रुओं की प्रतिक्षा कर रहे थे। ज्यूंही शत्रू बीच में आए कि एक दम ऊपर से पत्थर बरसने लगे और सैकड़ो सैनिक यमपुर सिधारे। रास्ता बहुत तंग था इसलिये पीछे को भी नहीं लौट सकते थे।

मानकलाल सुरक्षित स्थान पर चंचल की पालकी

रखवा कर रूपनगर को चला गया।

कुछ देरबाद चंचल पालकी में से उठकर माहाराणा राज सिंह के पास जाकर परीक्षार्थ बोली—आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये आपको बड़ा कष्ट हुआ मैं अब देहली जाना चाहती हूं। जो कुछ मैंने लिखा वह स्वभाविक चंचलता के कारण लिखा था। आशा है आप अबला की भूल को क्षमा करेंगे।

राज सिंह ने कहा इस समय तो तुम कहीं नहीं जा सकतीं जब तक हम जीवित हैं या शत्रु को जीतते नहीं तब तक आप न जांय बाद को जैसी आपकी इच्छा हो करना! आप स्वतंत्र नहीं हैं। इस समय आपके जाने से मुसल्मान यह समझेंगे कि राणा हम से डर गया। इसके उत्तर में चंचल कुमारी राणा जी के वीरत्व को धन्यवाद देकर और यह कह कर—राजन् मैं बादशाहकी बेगम बनने जारही थी किन्तु अपने धर्म की रक्षा और आपके वीरता की न्योछावर में जन्मभर आपकी दासी रहूंगी। यह कहकर चंचल वहां से चली गई और सेनापति मुबारक से आकर (जहां कि वह बन्दूक और तोप में गोला भरवा रहाथा) कहा—मैं आप के साथ चलने को तैयार हूं आप वृथा युद्ध न करे राजसिंह केवल पचास आदमी लाए हैं वह

कुछ नही कर सकते।

मुबारक ने कहा नहीं२ यह कदापि संभव नहीं है कि-पचास आदमी इतनी बड़ी सेना का सामना करें खैर आपकी इच्छा आप राजपूतों को मरवना नहीं चाहती चलिए मैं नहीं लड़ूगा। चंचल ने निर्भयता से उत्तर दिया चलती हूं परन्तु बेगम कदापि नही बनूंगी यह विप है प्राण खोदूंगी। इत्यादि वादाविवाद करती हुई राजसिंह की तरफ देखती रही जब देखलिया कि राजसिंह ने अपना स्थान बदल दिया वहां पर तोप के गोले का लगना वृथा है। तब वहां से पालकी की तरफ़ को जाकर राजसिंह के पास पहुंची और कहा—कृपा करके मुझे भी तलवार दीजिये राणा जी ने कहा तलवार लीजिये परन्तु आपका युद्ध करना ठीक नहीं क्योंकि स्त्री की सहायता लेने में निन्दा होगी इनमें इस प्रकार वार्तालाप हो ही रही थी कि इतने में मानकलाल अकस्मात् रूपनगर से कुछ सेना और तोप लेकर आगया। अब तो राजपूतों का उत्साह द्विगुण होगया और वीरता से युद्ध किया ज्यों ही ऊपर से तोप के गोले बरसे मुसल्तान सेना भाग निकली।

महाराणाजी ने उदयपुर पहुंच कर चंचल से कहा राजकुमारी जहां तुम्हारी इच्छा हो जाओ मैं तुम्हारी आज्ञा

का पालन कर चुका अब तुम स्वतंत्र हो।

इसके उत्तर में चञ्चल ने लज्जित होकर कहा—प्रभु! आप जैसे शूर को छोड़ कर मैं किसकी शरण लूं।

चंचल कुमारी से महाराणा का विवाह विधिपूर्वक होगया। चंचल यह अच्छी प्रकार जानती थी कि औरंगजेब इस अपमान का अवश्य बदला लेगा इसलिये विवाह के पश्चात् यथा शक्ति दिन रात सेना बढ़ाने में और युद्ध सामग्री एकत्रित करने में व्यस्त रहती थी।

कुछ ही दिन बाद औरंगजेब ने बड़ी भारी सेना लेकर उदयपुर पर चढ़ाई की। इस बड़ी सेना के विषय में एक इतिहास रचयिता लिखता है, कि—"इतनी सेना लेकर कैटपुसरो इरान के बादशाह ने यूनान पर चढ़ाई की थी या अब औरंगज़ेब उदयपुर को नष्ट करने के लिये इतनी सेना लेकर चढ़ा था"। महाशक्तिशाली औरंगजेब के सामने उदयपुर का छोटा राज्य क्या चीज़ है। किन्तु धन्य है क्षत्रिय वीरों को वह इससे न डरे राणा जी चंचल कुमारी और अपने पुत्रों सहित इस युद्ध में लड़े और अन्तमें औरंगजेबको हार माननी पड़ी इस युद्ध में जेबुन्नीशाह और उदयपुरी बेगम को कैद कर लिया।

सत्य है सदैव धर्म की जय और अधर्म की हार

होती है।

चंचल कुमारी ने उदयपुरी बेगम को मिलने के लिए बुलाया और बड़े सम्मान के साथ उसे उत्तम मसनद पर बैठाया। यह देख कर उदयपुरी ने समझा कि चंचल डर कर मेरा यह सम्मान करती है इस लिये क्रोधित हो-कर बोली—क्यों जी! चंचल तुम्हें इतना अभिमान जो मुझे ऐसे निरादर से बुलाया, मालूम होता है उदयपुर के नाश के दिन समीप हैं।

इस प्रकार अभिमान देख चंचल कुमारी हंसकर बोली बेगम साहब ऐसा अभिमान अच्छा नहीं। अच्छा कृपाकर अब आप चिलम भरिये।

यह सुनकर उदयपुरी क्रोध से बोली—तुम्हारी क्या शक्ति है जो मुझ से हुक्का भरवाओ। चंचल ने कहा ऐसा अभिमान अच्छा नहीं होता। संभव है एक दिन बादशाह भी राणा जी का हुक्का भरें। चंचल का इशारा पाते ही दासियों ने उसके हाथ में जबरदस्ती चिलम दी और उठाने लगीं। इस अपमान को न सहकर उदयपुरी बेहोश होगई। तब उठाकर इसको सुन्दर पलङ्ग पर लेटा दिया।

इसके बाद जेबुन्नीशाह को बुलाया। और बडे स

म्मान के साथ उससे चंचल कुमारी मिली और अपने हाथ से पान दिया। इन दोनों में बड़ी प्रीति होगई।

शोक है उदयपुरी ने चंचल की सुशीलता से लाभ न उठाया और अपनी मूर्खता से अपमानित हुई।

अन्त में औरंगजेब से महाराणा ने सन्धि करली जब उदयपुरी जाने लगी तब चंचल कुमारी की निर्मल नामक सखी ने उसका अभिमान नीचा करने के लिये बलात् हुक्का भरवाया। जेबुन्नीशाह बड़ी प्रीति से मिली। दोनों को महाराणा जी ने सम्मान पूर्वक विदा किया।

चंचल की सखी निर्मल कुमारी का विवाह माणक-लाल के साथ होगया था और यह भी यहां ही रहने लगा था।

इसके बाद फिर औरंगजेब ने उदयपुर पर चढ़ाई की किन्तु राणा जी को दुर्गादास की सहायता से फिर भी जय प्राप्त हुई। अन्त में फिर सन्धि हुई।

दुर्गादास के विषय में औरंगजेब कहा करता था कि यदि दुर्गादास मेरे वश में होजाय तो मरहटा शिवा जी कोई चीज़ नहीं।

धन्य चंचल तुम्हारी वीरता धर्मज्ञता और विचार शक्ति। धन्य धन्य तुमने धर्म के लिये दिल्लीश्वर की बेगम बनना स्वीकार न किया।

चांदबीबी ।

यह बीरांगना दक्षिण मे अहमदनगर के बादशाह हुसैन निज़ाम की कन्या थी । इसका विवाह विजापुर के बादशाह अली अदिल शाह के साथ हुआ था ।

बादशा अली अदिल शाह की मृत्यु के पश्चात् इब्राहीम इसका उत्तराधिकारी था किन्तु उसकी आयु कम होने के कारण चांदबीबी ही राज्य प्रबन्ध करती थी ।

इस के राज्य प्रबन्ध की चारो तरफ प्रशंसा हो रही थी।

बुरानउल—मुल्क की मृत्यु के पश्चात् अहमद नगर के राज्य के लिये और भी कई दावेदार खड़े होगए कि इस राज्य के मालिक हम हैं इन में अकबर बादशाह का पुत्र शाहजादा मुराद भी था यह एक बड़ी सेना लेकर अहमद नगर पर चढ़ आया । सब सरदार डर गए कि अब अहमदनगर के राज्य की रक्षा का होना कठिन एवं दुस्साध्य है । अपने सर दारों की यह दशा देखकर चान्द बीबी को अत्यन्त खेद हुआ । किन्तु इस बीरांगना ने धैर्य नहीं छोड़ा और विजापुर से सेना मंगाकर बड़ी

वीरता से मुराद का सामना किया। और मुरादशाह को रणभूमि से भगा दिया। किन्तु जब वह फिर चढ़कर आया तब सन्धि करके इस बुद्धिमती ने अपने राज्य की रक्षा की।

इस बीरनारी ने जिस चतुरता और बीरता से अहमदनगर की रक्षा की उसके लिये यह इतिहास में बड़ी श्रद्धा से देखी जाती है।

सन् १५९९ ई० में इस बुद्धिमती बीराङ्गना का रात्रि में किसी शत्रु ने खून कर दिया। इस चरित्र से उन पुरुषों को शिक्षा लेनी चाहिये जो प्रायः कहा करते हैं कि स्त्रियां पुरुषों की बराबरी नहीं कर सकती।

जया।

ह शान्तिस्वरूपिणी सती काशी के धनाढ्य नन्द राज की धर्मपत्नी थी। अपनी सुन्दरता और सुन्दर स्वभाव में यह अनूपम थी। पति को देवता के समान पूजा और सेवा करती थी। पति को भी इस से अत्यन्त प्रेम था एक दूसरे का बियोग सहन कर

ना एक तरफ रहा स्मरण भी नहीं कर सकते थे ।

चंचला लक्ष्मी अपने स्वभावानुसार इस सुखी दम्पतिको छोड कर अन्यत्र जाने लगी । किसी महात्मा का वचन है कि लक्ष्मी चञ्चला होती है अर्थात् एक जगः नहीं रहती। इनके दुर्भाग्य का प्रारम्भ हुआ कि नन्दराज को व्यापार में बहुत हानि हुई । जिस में नन्दराज के घर तक बिकने की नौबत आ गई किन्तु नन्दराज अपनी प्राणप्रिया जया से कुछ न कह सकता था । क्योंकि भविष्यत आपत्तिको सुन कर उस कोमलाङ्गी सुन्दरी को दुःख होगा । रात दिन इसी चिन्ता में व्यस्त रहता था कि क्या करना चाहिए । यदि प्यारी पत्नी को खबर हुई तो अवश्य वह दुःखी होगी और मैं उसको दुःखी नहीं देख सकूंगा । इस लिये उस से कहना उचित नहीं । और यदि उससे नहीं कहता तब भी कठिनता है । क्योंकि यह आपत्ति छिप नहीं सक्ती और जब उसे खबर होगी तब वह और ज्यादा दुःखी होगी कि मैंने उस से यह विपद् छिपाई । यदि मैं आत्मघात करलूं तब न जानें पीछे उसकी क्या दशा होगी । हाय २ मैं उस स्वर्गिया देवी को हर प्रकार दुःख ही देने योग्य हूं । इत्यादि चिन्ता में नित्य ग्रस्त रहने लगा । और यथा शक्ति पत्नी के सामने मनोभाव छिपाने के लिए प्रसन्न

रहता किन्तु मनोभाव को नहीं छिपा सकता था। किसी महात्मा का वचन है 'मुख आन्तरिक भावों का दर्पण है' मुख देख कर अनुभवी अवश्य हर एक के चित्त की दशा का अनुमान करलेते हैं।

स्त्री और मित्रों की परीक्षा का यह ही समय है। जो इस महान् परीक्षा में अचल भाव से धैर्य्य और साहस से काम लेता है वही धर्मात्मा इस महान् परीक्षा में उत्तीर्ण होता या विजय प्राप्त करता है। हमारी चरित्र नायका जया के लिये भी यही विकट समय उपस्थित है।

एक मित्र के बहुत समझाने पर चन्द्राज ने अपनी प्राणवल्लभा से यह हृदय भेदक समाचार सुनाया। किन्तु इस को सुन कर जया के मुख पर कुछ भी शोक सूचक चिह्न दिखाई न दिये। प्रत्युत: चिन्तित पति को इस प्रकार समझाने लगी। मैंने कई दिन से आपके चन्द्रमुख को उदास देख कर अपने चित्त में यह निश्चय किया था कि आप को कोई विशेष चिन्ता अवश्य है। हे! प्राणेश्वर आप क्यों चिन्ता कर रहे हैं आपत्ति में धैर्य्य से ही काम चलता है। यह कोई नवीन बात नहीं है। ईश्वर जिस दशा में रखना चाहता है। हमको उसी दशा में प्रसन्नता पूर्वक रहना चाहिये। नाथ! आप क्या नहीं जानते

कि निर्धनता और दरिद्रता कोई वस्तु नहीं हैं, और न यह किसी को सुख और दुःख ही दे सकते हैं। दुःख और सुख देनेवाली केवल अपनी मनोवृत्तियां है। क्योंकि यदि किसी धनकुवेर पर करोड़ों रुपए और हज़ारों ग्राम हों, और उसकी लालसा पूरी न हो और अपने को सुखी न समझे। रात दिन पराये धन पर दृष्टि रहे तो वह कदापि सुखी नहीं हो सकता। वास्तविक सुख का आनन्द केवल वही पुरुष ले सकता है जो शरीर पर वस्त्र न रहने पर भी सूखा रूखा खा कर परमेश्वर का धन्यवाद करते हैं और अपना अहो भाग्य समझते हैं। आप कुछ चिन्ता न करें यदि हमारे भाग्य में सुख होगा तो अवश्य फिर हम पूर्ववत होजाएंगे।

जया के यह मधुर एवं सारगर्भित वचन सुन कर नन्दराज प्रसन्न होकर कहने लगा—प्रिये वास्तव में तुम जया अर्थात् जय शालिनी हो मुझे पूर्ण आशा है कि तुम भविष्यत दुखों पर अवश्य जय प्राप्त करोगी मुझे इस समय तक केवल निर्धनता के कारण तुम्हारा ख्याल था सो अब तुम्हारे यह वचन सुन कर कुछ चिन्ता नहीं रही।

जया पहिले ही से बाहिरी दिखावट को पसन्द नहीं करती थी। अपनी कुछ आवश्यक वस्तुओं को छोड़

मकान आदि सब बेंचकर एक ग्राममें जा बसी यहांसे केवल एक सितार और कुकुम की डिब्बी ही मनोविनोद (दिल बहिगाव) के लिए साथ ले गई थी।

एक दिन नन्दराज शहर से अपने घर को जा रहा था। सहसा चलते २ अपने सुखों का स्मरण आया और अपने मित्र से कहने लगा—हाय २ उस सुन्दरी को मेरे कारण कितना कष्ट हो रहा है, शोक मेरे कारण वह आज शहर छोड़ ग्राम वासिनी बनी। इत्यादि अनेक शोकदायक वार्ता सुन कर नन्दराज के मित्र ने कहा मित्र आप से ज्यादा ऐश्वर्य्यवान् मुझे संसार में कोई नहीं दीखता क्योंकि आप की पत्नी समस्त गुणोंकी धाम और आनन्द की श्रोत है। ऐसी परम साध्वी पतिव्रता स्त्री को को पाकर भी वृथा क्यों दुःखी होते हो। यह उसकी परीक्षा का समय है। इत्यादि कहते हुए घर के पास पहुंचे। ज्यूंही किवाड़ खोले जया के मधुर गान के शब्द सुनाई दिए जिस से यह जानकर कि जया इस आपत्ति को दुःख नहीं समझती कुछ दुःख २ भूल गए।

जया नन्दराज के आने की प्रतीक्षा में सुगन्धित पुष्पों का हार पहिने हुए थी। प्रसन्न मुख चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करता था। नन्दराज पत्नी के पास जाते ही

समस्त दुखों को भूल गया। पर सहसा उसके मुख की उदासीनता न गई। जिससे जया नन्दराज के मनोभाव को पहिचान कर पति का दुःख बटाने के लिये बोली– आर्यपुत्र! चन्द्रमा की चान्दनी चमेली और इस बेल पर कैसी सुहावनी मालूम होती देखिये यह सफेद फूल कैसे शोभायमान हो रहे हैं। लीजिये सुगन्धित बेले के हार को पहिनिये कैसा आनन्द मालूम होता है। यह कह कर और हार पहिना कर पतिदेव के पैर धोने लगी जिससे नन्दराज की थकावट (श्रम) दूर होगई और नन्द राज सब दुःखों को भूल कर इस स्वर्गीय आनन्द में मग्न होगया।

अहा! कैसा आनन्द दायक जया का जीवन है जिस से न केवल जया व नन्दराज को ही आनन्द मिला प्रत्युत: प्रत्येक जन जो इस पवित्र जीवन को पढ़ेगा वह भी सदा सुखी रहेगा। धन्य नन्दराज को जिसे ऐसी पतिपरायणा पत्नी प्राप्त हुई। वास्तव में जया तुमने दुःखों को जीत लिया।

पाठिका! व पाठक! जरा विचारिये तो सही यदि जया दरिद्रता के कारण रात दिन रुदन करती तब नन्दराज और जया की क्या दशा होती।

कुछ दिन बाद फिर दिन फिरे और लक्ष्मी की इन

पर कृपा हुई। ब्यापार में लाभ हुआ। और पूर्ववत् सुख से जीवन व्यतीत हुआ। सत्य है जो परमेश्वर पर विश्वास करके अपने कर्तव्य का पालन करता है वह सब आपत्तियों पर जय पाता है।

जवाहर बाई।

जरात के बादशाह बहादुर शाह ने सन् १५३२ में चित्तौड़ पर चढ़ाई की। इस समय विषयी राणा विक्रमादित्य चित्तौड़ में राज्य करताथा इसलिये सब को चिन्ता हुई कि चित्तौड़ का उद्धार यवनों से कैसे होगा इस चिन्ता से सब लोग चिन्तित थे। देवलिया प्रतापगढ़ के रावल बाघ जी अपनी राजधानी से आकर राणा के स्थान में युद्ध करने को तय्यार हुए। उनके आने पर सब राजपूत युद्ध करने के लिये सन्नद्ध होगये। बहादुर शाह की सेना राजपूतों की अपेक्षा बहुत अधिक थी। परन्तु फिर भी राजपूत विचलित न हुए। सब ने कहा शत्रु का नाश करेंगे या युद्ध में प्राण देकर वीर गति को प्राप्त होंगे युद्ध के आरम्भ होते ही बहादुर शाह ने पहले

अपनी तोपों से ही काम लिया परन्तु राजपूतों ने तोपों की गर्जना सुन कर जिधर से गोला आता था उधर बड़ी फुर्ती से अपने तीक्ष्ण वाण चलाये दोनों तरफ के बहुत वीर मारे गये परन्तु बहादुर शाह किसी रीति से चित्तौड़ पर अधिकार न कर सका । अन्त में उस ने किले की दीवार बारूद की सुरङ्ग से उड़ा दी और जो दीवार सुरङ्ग से उड़ाई थी वहां हाड़ा वीर अर्जुन राव अपने ५०० योद्धाओं के साथ युद्ध करते २ समस्त योद्धाओं सहित मारे गये । वीरवर चूडावत राव दुर्गादास और उनके मुख्य शूर सत्ता जी और दूदा जी तथा कितने एक सामन्त और सैनिक शत्रुओं के सामने डटे रहे। कोई प्राणान्त तक उनको हटा न सका । किन्तु इस बहु संख्यक सेना के सामने यह थोड़े से राजपूत कर ही क्या सकते थे । इन के वीर गति को प्राप्त होने पर मुसल्मान ज्यों ही किले के अन्दर जाने लगे कि एकाएक फिर रुक गए और क्या देखते हैं कि एक वीरांगना घोड़े पर चढ़ी विकट रूप में कुछ योद्धाओं को लिये इस प्रकार आरही है मानों प्रकृति स्वयं ही इनका संहार करने आरही है । जवाहर बाई हाड़ाओं के मारे जाने का समाचार सुनकर कवच धारण कर शस्त्र

ले वहां जा पहुंची जहां घमसान युद्ध हो रहा था। और योद्धाओं को युद्ध के लिये उत्साहित करती हुई सब राजपूतों के आगे रन्ध्रपथ रोक कर खड़ी होगई जो शत्रु आगे को बढ़ता था। वही इसके भाले से मारा जाता था भाले के दारुण प्रहार से यवन सैनिक मारे गये। कई २ यवन बीर एक साथ आने लगे परन्तु फिर भी यह वीरता से लड़ती रही और निरुत्साहित न हुई। जिस असीम साहस से शूरवीर रणोन्मत्त मुसलमानों से युद्ध कर रहीं थीं उसे हाथी पर बैठा बहादुर शाह विस्मित होकर देख रहा था। या यह कहो उसके अनूपम रण कौशल और पराक्रम से भयभीत दूर ही खड़ा था वीररानी जवाहर बाई जहां यवन दल की प्रबलता देखतीं वहां हीं शीघ्र अपने घोड़े को ले जा कर युद्ध करने लगती थी। जब राजपूतों से मुसल्मानों का घोर युद्ध हो रहा था धड़ सीस गिर रहे थे शव के ऊपर शव गिर रहे थे तो उस समय में रानी के शरीर में तोप का गोला आकर लगा और वह वीरगति को प्राप्त होकर आत्मोत्सर्ग का उदाहरण छोड़ गई।

जसवन्त सिंह की रानी ।

इस देवी को उदयपुर के महाराणा की पुत्री होने का सौभाग्य प्राप्त था । और इसका विवाह जोधपुर के महाराज जसवन्त सिंह से हुआ था । यह महारानी न्याय और धर्म के आगे छोटे बड़े माता पिता भाई तथा पति आदि किसी की परवाह नहीं करती थी । बाल्यावस्था ही से यह स्वतंत्र विचार वाली थी ।

एक बार महाराज जसवन्त सिंह का मुराद और औरङ्ग जेब की सेना से बड़ा युद्ध हुआ । युद्ध में जसवन्त सिंह आठ हजार योद्धों में साढ़े सात हजार योद्धा वीर गति को प्राप्त हो चुके तब शेष पांच सो योंद्धाओ को लेकर रणभूमि से आए ।

यह सुनकर और यह समझ कर कि महाराज प्राण बचाकर युद्ध भूमि से लौटे हैं रानी से रहा न गया और कड़क कर बोली किले के सब फाटक बन्द कर दिये जायें इस के पश्चात् उन्हों ने कहा मैं ऐसे कायर पुरुष को किले में नहीं आने दूंगी हाय ऐसा मेरा पति और राणा का दामाद ऐसे भीरु निर्लज्ज पुरुष का मुख नहीं देखना चाहती राना प्रताप जैसे वीर का सम्बन्धी होकर इस

ने उसके गुणों का अनुकरण न किया। यदि यह लड़ाई में शत्रुओं को हरा नहीं सका तो यहां आने की क्या आवश्यकता थी क्या स्वर्ग में जगह न थी क्या सदैव जीवित रहेगा फिर तुरन्त ही इस के मन में दूसरा विचारउत्पन्न हुआ और उन्हों कहा—अच्छा मेरे लिये चिता तैयार कर मैं अपनी देह अग्नि को अर्पण करूंगी सचमुच मुझे धोखा हुआ मेरे पति वास्तव में संग्राम में मारे गये और इसके अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं हो सकती। इस प्रकार क्रोध में बहुत-बुरा भला कहती रही। ८-९ दिन तक उस की यही दशा रही महाराज जशवन्त सिंह से वह एक बार भी नहीं मिली। अन्तमें जब उनकी माता आई और उन्हों ने समझाया कि घबराओ नहीं राजा कुछ विश्राम लेकर और नई सेना एकत्रित करके पुनः औरङ्गजेब पर आक्रमण करेंगे और अपनी वीरता काफिर परिचय देंगे तब वह कुछ शान्त हुई।

भारतयात्रा नामक पुस्तक में फ्रान्सीसी यात्री बर्नि यर लिखता है कि जिस से यह प्रकट होता है कि इस देश की स्त्रियों को अपने नाम और प्रतिष्ठा और कुलगौरव का कितना ध्यान है और उनका हृदय कैसा सजीव है। मैं ऐसे और भी दृष्टान्त दे सकता हूं क्योंकि

मैंने बहुत सी स्त्रियों को अपने पतियों के साथ चिता में जल कर मरते अपनी आंखो से देखा है परन्तु ये बातें मैं किसी दूसरे अवसर पर (आगे चलकर) वर्णन करूंगा जहां मैं दिखाऊँगा कि मनुष्य के चित्त पर आशा विश्वास प्राचीन रीति नीति धर्म्म और सम्मान के विचार का कितना दृढ़ प्रभाव पड़ता है ।

सती जसमा ।

५ यह पतिव्रता ओड़ जाति (यह जाति हिन्दुओंमें नीच समझी जाती है) की परम सुन्दरी और साध्वी थी इसके अनूपम सौन्दर्य्य और पवित्र चरित्र से स्पष्ट होता है कि ईश्वर के दरबार में सब बराबर है ईश्वर को नीच ऊंचता का कोई विचार नहीं उसके सब ही प्यारे पुत्र हैं । इस पतिपरायणा ने अपने जीवन में महात्मा भर्तृ जी के वाक्य का उदाहरण बन कर दिखा दिया ।

निदन्तु नीतिनिपुणा यदि वास्तवन्तु ।
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरेवा ।
न्याय्यात् पथात् पदं न प्रविचलन्ति धीराः ॥

अर्थात् वास्तव में विद्वान भी भले ही निन्दा करे लक्ष्मी जाय या रहे और आज ही चाहे मृत्यु होजाय या युग २ जीते रहें किन्तु धीर पुरुष धर्मपथ से विचलित नहीं होते।

यह सती मालवेमें रहती थी। इसका विवाह अपनी जातिमें त्रिविक्रम से हुआ था। त्रिविक्रम अपनी जाति का प्रधान था इसके अधिकार में हजारों ओड काम किया करते थे।

जब सिद्धराज जयसिंह ने पटने में सहस्रलिंग नामक तालाब बनगया तब त्रिविक्रमको बुलाया गया। इसने आकर काम शुरू कर दिया। राजा नित्य तालाब पर काम देखने आया करते थे। एक दिन अकस्मात् राजा की दृष्टि जसमा पर पड़ी। राजा उसके मनोहर परम सौन्दर्य और लावण्य को देखकर मोहित होगए और क्षण २ व्यतीत करना कठिन होगया। एक सेवक को त्रिविक्रम और जसमा के पास भेजकर कहलाया तुम सब मजदूरों के प्रधान हो और तुम्हारा बच्चा छोटा है इस लिये तुम्हारे लिये विशेष प्रबन्ध कर दिया जायगा वहां पर रहना। इसके उत्तर में त्रिविक्रम ने धन्यवाद देकर कहा हम महाराज के कृतज्ञ हैं किन्तु हम सदैव टूटी फूटी झोंपड़ियों में रहते रहे हैं इसलिये हम इस महान् कृपा के योग्य नहीं।

इस उत्तर को सुनकर राजा बहुत ही व्याकुल हुआ और एक दिन स्वयं जब काम देखने गया तो वहां जसमा से कहा—सुन्दरी तुम कोमलाङ्गि हो तुम्हारा शरीर इस कठिन परिश्रम के योग्य नहीं और तुम्हारा यह बच्च दिन भर धूप और हवा में रहता है इसलिये मुझे अत्यान्त दया अती है तुम महल में चलो बिना मेहनत इतना वेतन तुमको दिया करूंगा और अपने बच्चे को पालने में झुलाना।

इन मधुर और प्रेममयी बातों को जसमा न समझ सकी और भोले पनसे उत्तर दिया नहीं २ महराज हम इस योग्य नहीं हैं आज आप ने कृपाकर महल में रख लिया चार दिन बाद फिर हमारे भाग्य में यही झोपड़ी है इसलिये वृथा अपनी आदत क्यों बिगाड़ें।

जसमा की यह बात सुनकर राजा ने कहा नहीं २ मैं तुम्हारे बालक को जागीर दूंगा तुम और तुम्हारी संतान सदैव महिलों का आनन्द लेगी। और तुम्हें पटरानी से अधिक रक्खूंगा। इत्यादि बातों को सुनकर जसमा क्रोध से लाल होगई परन्तु राजा के सामने इसकी क्या चल सकती थी इस लिये अत्यन्त धैर्य्य के साथ बोली—महाराज ! आप तो हमारे पिता के समान हैं आपको यह

बचन सुशोभित नहीं होते क्षमा कीजिये मुझे अपने पति और उनकी टूटी झोपड़ी से बढ़कर संसार का राज्य और कोई पुरुष नहीं मालूम होता। कृपाकर आगे आप इस प्रकार का विचार मन में भी न लाना मैं प्राण त्याग दूंगी परन्तु अपने धर्म को न छोड़ूंगी।

सती जसमा के यह निराशप्रद बचन सुनकर कामान्ध राजा की और भी आसक्ति बढ़गई और प्रधान को बुला कर कहा— प्रधान जी आप मेरे सच्चे हितैषी हैं इस लिये अपने मन की बात आपसे कहना चाहता हु आशा है आप अवश्य मेरी कामना पूर्ण करोगे। त्रिविक्रम प्रधान की स्त्री परम सुन्दरी और बुद्धिमति है। उसके अनूपम सौन्दर्य्य ने मेरे चित्त को हर लिया है। सो आप कृपाकर किसी युक्ति से उस स्वर्गीय अप्सरा को मेरे पास ला दीजिये।

प्रधान राजा की यह बात सुनकर बड़ा दुःखी हुआ कि राजा को क्या उल्टी सूझी है प्रधान लोग निन्दा पर स्त्री गमन को महापाप और जसमा की नीचता आदि दिखाकर बहुत समझाया परन्तु राजाने एक भी न मानी और कहा—हमारे शास्त्रों में गुण कर्म्मानुसार जाति मानी गई है। यदि आप उसकी पवित्र बुद्धि देखे और मधुर भा-

षण सुन तो कहना पड़ेगा वास्तव में यह ओड़ नहीं है। अधिक क्या उसका अनूम सौन्दर्य्य ही बताता है कि उसका शरीर मजदूरी करने योग्य नही है प्रत्युतः रानी बनने योग्य है। राजा का कर्तव्य है जो जिस योग्य हो उसके अनुसार उसको पद दे इत्यादि बातें सुनकर प्रधान को निश्चय होगया कि राजा बहुत आतुर हैं और किसी की कुछ न सुनेंगे इसलिये प्रकट में राजा से कहा अच्छा आप धैर्य्य रखिये मैं प्रयत्न करूंगा। प्रधान ने त्रिविक्रम को समझा दिया जहां तक हो शीघ्र काम पूरा करके चले जाओ। त्रिविक्रम ने शीघ्र ही काम पूरा कर दिया। राजा ने सब का अन्तिम हिसाब कर दिया और त्रिविक्रम तथा जसमा को इनाम के लिये महल में आने की आज्ञा दी। त्रिविक्रम राजा की घृणित इच्छा को समझगया और रात्रिमें समस्त ओडों के साथ अपने घर को चलदिया। राजा जाने की खबर सुन घोड़े पर स्वयं और कुछ सिपाहियों सहित त्रिविक्रम को पकड़ने के लिये गया। कुछ दूर पर त्रिविक्रम और राजा के सिपाहियों कासाम ना हुआ। कुछ ओड और त्रिविक्रम मारा गया। पति देव की यह दशा देख कर जसमा ने अपने पेट में छुरा देलिया और कड़क कर कहा, 'जा दुष्ट ! तेरे तालाव में पानी नहीं रहने

का' राजा प्रेम से ज्यूंहीं जसमा का हाथ पकड़ा तो क्या देखता है कि पेट में छुरा घुसा हुआ है राजा ने बड़ी सावधानी से छुरा निकाला परन्तु छुरे के निकलते ही जसमा के प्राण निकल गये। राजा ने दोनों का शव (लाश) लाकर अन्तेष्टि संस्कार किया।

धन्य है जसमा तूने अपने प्राणप्रिय के लिये सांसारिक ऐश्वर्य्य को लातमार कर अपने शरीर का नाश कर दिया नहीं २ देवी तुम ज्वलन्त उदाहरण छोड़कर स्वर्गधाम गई। सती जसमा धन्य तेरे माता पिता को जिन्होंने तुझे जन्म दिया। धन्य त्रिविक्रम को जिसको जसमा जैसी पत्नी प्राप्त हुई। जिसने मजदूर पति के सामने राजा की कुछ परवाह न की और अपना शरीर स्वामी को अर्पण किया। सत्य है 'जात पांत पूछे ना कोई, हर को भजे सो हर का होई।' स्वर्ग में समस्त धर्मत्माओं को बराबर स्थान मिलता है। वहां पर नीच और ऊँच की गणना नहीं होती।

सती जानकी।

ह सती मिथला में जनकपुर के राजा जनक की पुत्री थीं। इनको सीता भी कहते हैं।

एक समय महर्षि पशुराम जी राजा जनक के घर आए। राजा ने परशुराम जी का बड़ा सम्मान किया। परशुराम अपना परसा, और वृहद् धनुष रख कर भोजन करने गये। पीछे जानकी जी वृहद् धनुष से खलने लगीं। इतने में परशुराम जी भोजन करके आगए। परशुराम जी को जानकी (सीता) के हाथ में धनुष देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ और जनक से इस प्रकार कहने लगे—राजन् मुझे यह धनुष शिवजी ने दिया है और यह अत्यन्त भारी है इसको कोई साधारण मनुष्य नहीं उठा सकता इस से मालूम होता है यह कोई दैवी कन्या है। इस लिए जनक तुम को उचित है इसका विवाह भी ऐसे ही पराक्रमी पुरुष से करो।

महाराजा जनक नें ऋषि की यह बात सुन कर कहा —"मुनिवर मैं प्रतिज्ञा करता हूं जो पुरुष धनुष को चढ़ाए गा उसी से सीता का विवाह करूगा।

जब जानकी जी विवाह योग्य होगई तब महाराज जनक ने देश देशान्तर में राजाओं के पास स्वयंवर का निमंत्रण भेजा।

स्वयम्वर में सब देशों के राजा आए। मुनि विश्वामित्र भी अपने शिष्यों सहित आए और शहर से बाहर एक बाग में ठहर गए। विश्वामित्र का शुभ आगमन सुनकर महाराज जनक दर्शन के लिए तुरन्त ही विश्वामित्र के पास गए और पूजन करके ऋषि विश्वामित्र से पूछा "मुनिवर आपके शिष्यों में इन दो तेजस्वी कुमारों के पिता होने का किस भाग्यवान् को सौभाग्य प्राप्त है।

विश्वामित्र ने कहा—"यह दोनों महाराज दशरथ के राजकुमार हैं। आपको विदित ही है हमारे आश्रम में राक्षसों ने बड़ा उत्पात मचा रक्खा था इन दोनों प्रतापी राजकुमारों ने राक्षसों को मारकर हमारे यज्ञ पूर्ण कराए अपने साथ इनको भी स्वयंवर दिखाने लाया हूं।" इत्यादि वार्ता कर महाराज जनक अपने स्थान को चले गए।

स्वयंवर की शोभा अवर्णनीय थी एक तरफ राजा बैठे थे और दूसरी तरफ ऋषि मंडल बैठा था और बीच में परशुराम का महान् धनुष रक्खा हुआ था। परम सुन्दरी सीता के साथ पाणिग्रहण की इच्छा से राजाओं के

चित्त में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होरहे थे। किन्तु नियत समय पर जनकके पुरोहित के यह कहने पर कि "महाराज जनक ने प्रतिज्ञा की है कि जो इस धनुष को चढ़ाएगा उसी प्रतापी राजा के साथ जनक नन्दनी जानकी का विवाह करूंगा और यदि कोई न चढ़ा सकेगा तो मैं पुत्री को आजन्म क्वारा ही रक्खूंगा'। महाराज जनक-की इस कठिन प्रतिज्ञा को सुन कर सब राजा सुन्न होगए और नीचे ऊपर देखने लगे। और किसी की शक्ति धनुप चढ़ाने की न हुई तब अभिमानी रावण ने उठकर धनुप चढ़ाने का अत्यन्त प्रयत्न किया किन्तु धनुष को न चढ़ा सका। सब राजा आश्चर्यान्वित हुए और महा-राज जनक अत्यन्त चिन्ता में पड़ गए कि क्या करना चाहिये।

महर्षि विश्वामित्र आश्रम की रक्षा में श्री रामचन्द्र जी का पराक्रम देख ही चुके थे। राजा जनक को चि-न्तित देख कर आज्ञा दी कि तुम धनुष चढ़ा कर राजा-को चिन्ता दूर कीजिये। आज्ञा पाते ही रामचन्द्र जी उठकर ज्यों ही धनुष चढ़ाने लगे कि धनुपके दो टुकड़े होगए। यह देख राजा की चिन्ता दूर होगई और जानकी जी ने रामचन्द्र जी के गले में जयमाल डाल दी।

विधि पूर्वक रामचन्द्र जी के साथ सीता जी का विवाह होकर सीता अयोध्या में आगई। और सदाचार के अनुसार सास स्वशुर और पति आदि की सेवा करती हुई सीता के आनन्द पूर्वक दिन व्यतीत होने लगे।

मंत्री और प्रजा की सम्मति के अनुसार महाराज दशरथ ने रामचन्द्र जी को राज्य देने का निश्चय किया और राज्याभिषेक की तैय्यारियां होने लगीं।

दैव की गति कोई नहीं जानता क्षण में राजा फकीर होजाते हैं और फकीर राजा हो जाते हैं। नगर और राजमहलों में राम चन्द्र की राज्याभिषेक की अनेक खुशियां मनाई जारहीं थीं। कौन जानता था कि रामचन्द्र के भाग्य में राज्याभिषेक नहीं हैं और कल राम को बनवासी बनना पड़ेगा।

मन्थरा के वहकाने से पहिले दिये हुए दो वर रानी केकैयी ने राजा दशरथ से मांगे कि राम को वन और भरत को राज्य। प्रतिज्ञा में बन्धे हुए राजा दशरथ को विवश केकैयी को उक्त बचन देने पड़े। सारी प्रजा और राजमहलों में राम वनवास का हृदय सनाचार सुन कर हाहाकार मच गया। किन्तु राम के मुख पर उदासीनता का नाम भी न था। धैर्य्यवान् रामचन्द्र पूर्ववत् प्रसन्न वदन थे।

रामचन्द्र जी ने सीता के पास जाकर कहा—"प्रिये! तुम को विदित होगा कि माता कैकेयी ने पिता जी के दिये हुए पहिले यह दो वचन मांगे हैं। मुझे वनवास और भाई भरत को राज्य। धर्मात्मा पिता अपने वचन के विरुद्ध न कह सके। तुम जानती हो मैं भी उसी धर्मात्मा पिता का पुत्र हूं इसलिये पूज्य पिता की आज्ञा पालन करने के लिये मैं वन जाता हूं। तुम यहां पर रहो और माता पिता की सेवा किया करना"।

यह सुनते ही सती जानकी शोक से विह्वल होकर बेहोश होगईं कुछ देर बाद होश होने पर बोलीं—"हे नाथ! आप ने बहुत ही अच्छा किया जो आप पिता की आज्ञा पालन करने के लिए राज्य वैभव छोड़ वन को जारहे हो किन्तु प्राणेश्वर! मुझे कहां छोड़ते हो आपके वियोग में राज महल मुझे महावन से भी अधिक भयंकर मालूम होंगे और मैं आपके वियोग कष्ट को कदापि न सहन कर सकूंगी। और जब पिता जी की आज्ञा आपके लिये वनवास की है तब मैं आपकी अर्द्धाङ्गिनी हूं क्या मेरे लिये नहीं है। मेरे बिना आप पिता की आज्ञा का आधा पालन कर सकोगे।"

रामचन्द्र युक्ति पूर्वक उत्तर न दे सके और बोले—

प्रयसि ! सीते ! तुम जो कुछ कहती हो ठीक है परन्तु मुझे जंगल में तुम्हारे ही कष्ट का खयाल है। तुम्हारा यह कोमल अङ्ग किस प्रकार जेष्ठ वैशाख को प्रचण्ड धूप, वर्षा ऋतु के कष्ट तथा शरद ऋतु की ठण्ढी पवन सहन करेगा। प्यारी सिंहों की घोर गर्जना को सुन कर वड़े २ वीरों का भी धैर्य्य जाता रहता है। तुम उसे किस प्रकार सुनोगी। और मैं तुम्हारा दुःख न देख सकूंगा इसलिये मेरी सम्मति में तुम यहां पर रहो और अपने पिता के घर चली जाया करना।

रामचन्द्र जी की यह वात सुनकर जानकी जीनें आह भर कर उत्तर दिया—हे ! प्राणवल्लभ ! आप को यदि मुझ से इतना ही प्रेम है और आप मेरा कष्ट नहीं देख सकते तव कृपाकर मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दीजिये—क्या आप नहीं जानते "चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये विन्दु मात्र विशेषतः। सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता" अर्थात् चिता और चिन्ता दोनों में एक विन्दु का भेद हैं जीवित को चिन्ता जलाती है और निर्जीव को चिता जलाती है। वन कष्ट वियोग के कष्ट और चिन्ता के सामने कुछ भी नहीं ! आपके साथ मुझे वन राजमहल से अधिक होगा और प्रकृतिमाता के दिये वनफल मेरे लिये माता और

सास के दिये हुए छत्तीस प्रकार के उत्तमोत्तम पदार्थों से भी बढ़कर स्वादिष्ट होंगे। और आप यह भली भांति जानते हैं कि मानसिक कष्ट शारीरिक कष्ट से कहीं अधिक होते हैं। क्या मै क्षत्राणी नहीं हूं जो सिंहों की गर्जना से डर जाऊँगी। आपसे कदापि ऐसा आशा न थी कि आप मुझे ऐसी भीरु समझते है। क्या सत्य ही आपको यह विश्वास है कि मैं सिंहादि आदि हिंसक जन्तुओं की गर्जना से डर जाऊँगी। मुझे पूर्ण आशा है आप दासी के ऊपर दया करके अवश्य साथ ले जायंगे। इत्यादि अनेक प्रकार से जानकी प्रार्थना करके श्री रामचन्द्र के साथ वन गई। और साथ ही रामचन्द्र जी के छोटे भाई लच्मण जी आग्रह करके साथ गए।

अहा कैसी स्वामी की आदर्श भक्ति और लक्ष्मण का भ्रातृ प्रेम है।

वल्कल धारण कर रामचन्द्र लच्मण और सीता तीनों वनको चले गये। वहां ऋषियोंके आश्रमों में रहतेहुए और एक दूसरे के आदर्श प्रेम का स्वाद लेते हुए आनन्द पूर्वकजीवन व्यतीत करने लगे।

सीता पति सुखको देख सब दुःखों को भूल गई थी। कौन जानता है यह सुख भी सीता को न मिलेगा। हाय.

दैव इनको यहां पर भी सुखी न देख सका सती जानकी जिस वियोग से बचने के लिये राजमहल और राजवैभव को छोड़ वन में आई वही कष्ट यहां भी उठाना पड़ा किसी ने ठीक कहा है—"लिखित मपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः "अर्थात् भाग्य में लिखे हुए को कोई नहीं मेट सकता।

एक दिन यह तीनों प्रेमी अपनी कुटी के बाहर बैठे प्रेममयी बातें कर रहे थे। रामचन्द्र लक्ष्मण के अनूपम सौन्दर्य्य को देखकर सूर्पनखा नामक राक्षसी मोहित हो-गई और राक्षसी माया से परम सुन्दरी बनकर रामचन्द्र के पास गई और उनको अपने सौन्दर्य्य से मोहित करने की चेष्टा की परन्तु एक स्त्रीव्रती श्री रामचन्द्र जी के सा-मने इसकी सब चेष्टाएँ व्यर्थ गई तब अन्त में रामचन्द्र से सूर्पनखा ने स्पष्ट कहा—हे राजकुमार मैं तुम पर मोहित हूं मेरे साथ विवाह करलो अथवा मेरी इच्छा पूर्ण करो। रामचन्द्र ने हँस कर उत्तर दिया मेरा तो विवाह होगया है तुम देखती ही हो मेरे साथ स्त्री है किन्तु भाई लक्ष्मण अविवा-हित हैं। इसलिये उनके पास जाओ वे अवश्य विवाह क-रलेंगे। रामचन्द्र के यह कहने पर कामातुर राक्षसी लक्-ष्मण जी के पास गई। पदमतो लक्ष्मण जी ने मना किया

परन्तु जब यह न मानी तब लक्ष्मण ने इसकी नाक काटली ।

नाक कटने पर यह अपने भाई खर और दूषण नामक राक्षसों के पास गई और कहा—दो लड़के जो कि तपस्वी रूप में यहां पर आए हुए हैं उन्होंने मेरी नाक काट दी शोक है मेरा इस प्रकार अपमान होने पर तुम शान्त बैठे हो इत्यादि सूर्पनखा की बातें सुनकर यह रामचन्द्र के पास गए घोर संग्राम हुआ अन्त में दोनों भाई मारे गए । सूर्पनखा ने जब देखा कि दोनों भाई मारे गए और मेरी नाक भी कट गई किन्तु इन दोनों का कुछ नहीं बिगड़ा तब लंका में प्रतापी रावण के पास जाकर सारा हाल कहा ।

अभिमानी रावण खर दूषण का इस प्रकार विनाश सुनकर मारीच राक्षस को साथ लेकर रामचन्द्र जी से बदला लेने के लिये आया । मारीच माया का रूप धारण करने में अत्यन्त चतुर था । रावण की सम्मति से यह सुवर्ण मृग बन कर रामचन्द्र के आश्रम में आया । जानकी जी को यह मृग मनोहर मालूम हुआ और रामचन्द्रजी से कहा नाथ देखो यह मृग कैसा सुन्दर है इसको मार चर्म लेना चाहिये । अयोध्या को वन की विचित्र वस्तुओं में से

इसे लेजायेंगे रामचन्द्र ने उत्तर दिया नहीं २ यह मृग नहीं यह राक्षसी माया मालूम होती है। किन्तु सीता के अत्यन्त आग्रह करने पर रामचन्द्र जी धनुष लेकर इसको मारने के लिये गए। किसी महात्मा का वचन है 'प्रायः समापन्नविपत्ति काले धियोऽपि पुंसा मलिना भवन्ति' अर्थात् आपत्ति काल आने पर पुरुषों की बुद्धि मलीन हो-जाती है। रामचन्द्र जैसे राजनीतिज्ञ की बुद्धि लोभ में फंस गई जिसको साधारण पुरुष भी जानता है कि सोने का हरिण नहीं होता। रामचंन्द्र ने कुछ दूर जाकर इसको मारा मरते समय इसने हे लक्ष्मण! हे राम! कह कर आवाज दी। जिसको सुनकर सीता जीने पतिपर आपत्ति आई समझ कर लक्ष्मण से कहा जाओ देखो रामचन्द्र तुम को बुलाते हैं लक्ष्मणने बहुत मना किया परन्तु सीता न मानी और क्रोधित होकर कहने लगी—"मैं समझती हूं तुम्हारे मन में पाप है और स्वार्थवश भाई की सहायता को नहीं जाते' इत्यादि बातें सुनकर लक्ष्मण विवश रामचन्द्र जी जी की रक्षा के लिये गए। पीछे आश्रम में सीता को अकेली देखकर रावण साधु के रूप में भिक्षा लेने गया। इसकी विकराल सूरत को देख कर सीता जी डरी परन्तु कर ही क्या सकती थीं। बलात् रावण अपने रथ पर

बैठा कर ले गया।

रामचन्द्र प्रसन्न चित्त मृग चर्म लेकर आश्रम में आए किन्तु जानकी जी को न देखकर अत्यन्त व्याकुल होगए और बड़े परिश्रम से जानकी जी की अन्वेषणा (तलाश) करने लगे। जानकी जी को ढूंढते २ इनकी सुग्रीव से मित्रता होगई सुग्रीव और हनुमान् जी भी जानकी जी की खोज करने लगे।

रावण ने जानकी जी को लंका में लेजाकर अशोक वाटिका में ठैरा दिया और इस प्रकार क्षोभ दिखाने लगा— "हे! सुन्दरि! तुम वृथा कष्ट क्यों उठा रही हो। किस क्षुद्र पुरुष के लिये रुदन करती हो। सच तो यह है अब तुम्हारा भाग्योदय होगया क्योंकि अब तुम्हारा पीछा उस वनवासी राम से छूट गया है अब तुम लंका की रानी बनो मैं आजन्म तुम्हारा दास रहूंगा देखो यह तुम्हारे लिये अमूल्य वस्त्र और भूषण तैय्यार हैं। मुझे शोक है तुमने आज कई दिन से भोजन नहीं किया सो अनेक प्रकार के भोजन तुम्हारे लिये तैय्यार हैं। क्या राजकुमारी जी तुमने मेरे प्रताप को नहीं सुना। बस अब तुम प्रसन्नचित्त लङ्का की रानी बनो।

यह सुन कर जानकी जी ने कहा—"ऐ लंकेश! तुझे

यह बातें शोभा नहीं देतीं । तू प्रतापी राजा है इसलिये अबला को कपट से हरण करना और इस प्रकार लालच दिखाना तेरे लिये अत्यंत लज्जा की बात है । तेरे लिये कल्याण कारक यह ही है तू मुझे स्वामी के पास पहुंचा दे । जाकर पापी मैं तेरा मुख देखना नहीं चाहती।

यह सुनते ही रावण को अत्यन्त क्रोध आगया और कहने लगा । मैं खूब जानता हूं तेरे भाग्य नें धक्का दिया है तू मेरे हाथ से अवश्य मरेगी । अच्छा मैं तुझे दो मास की अवधि देता हूं जिससे खूब सोच समझ ले, यह कहकर दासियों से कहा "यह दो मास तक न माने तो इसका मांस पका कर लाना ।

इस भय दिखाने का जानकी जी पर कुछ भी असर नहीं हुआ, किन्तु यह विचार हुआ कि प्रति दिन इस प्रकार क्लेश से तो मर जाना ही अच्छा है, ऐसा विचार कर लकड़ी एकत्रित कर और जल कर मर जाने का निश्चय किया, किन्तु पास में अग्नि नहीं रहने से इधर उधर देख कर भगवान् की स्तुति करने लगी कि—"हे दीनदयाल ! हे ! भक्तवत्सल ! मुझ पर यह क्या अन्याय हो रहा है ? मैंने माता पिता किम्वा सास श्वसुर और अतिथि अभ्यागत को कुछ भी कष्ट नहीं दिया।

केवल मेरा यही अपराध है कि अपने स्वामी की इच्छा नहीं होने पर भी मैंने मृग चर्म लाने का दुराग्रह किया था। बस मेरा यही एक अपराध है। जिस के कारण मैंने बहुत दुःख भोगे। इस प्रकार दुःख भोगने के बदले इस नाशवान शरीर को त्याग कर आप की शरण में रहना उत्तम है। अब मुझ से प्रतिदिन ये कष्ट सहन नहीं हो सकते इस लिये हे कृपानिधे! आप मुझपर कृपा करके मेरी सहायता करें चाहें मुझ पर यकायक विद्युत् गिरा किम्वा दुष्टबुद्धि रावण को ऐसी बुद्धि प्रदान करो कि वह मुझे मार डाले। इस प्रकार स्तुति पूर्ण की कि इतने में ऊपर से एक मुद्रिका गिरी उसके पड़ने से जानकी जीं अधीर हो उसे अग्नि समझ कर लेने दौड़ी, उसको हाथ में लेकर देखा तो उसमें 'श्रीराम' लिखा था उसको देख कर विचार करने लगी कि यहां पर यह मुद्रिका कहां से आई। क्या दुष्टों ने उनका नाश किया? किंवा राम ने मुझ पर से स्नेह कम कर दिया? इस प्रकार विचार करते २ अर्ध रात्रि व्यतीत हो हुई पहरेदार घोरनिद्रा में सो गए हैं और केवल सीता जी जाग रहीं हैं यह जान कर हनुमान जी ने रामचरित्र गाना शुरू किया, उससे सीता को अधिक आश्चर्य हुआ। वह विचार करने लगी कि ये समस्त

राक्षसों की माया है । अब मुझे अपना यह शरीर त्याग कर संसार को त्याग देना चाहिये । इसके सिवाय अन्य कुछ भी साधन नहीं देख कर मस्तक के केशों को गलेमें फांसकर सीता जी मरनेकी तैयारी कर रही हैं इतने में हनुमान जी वृक्ष पर से नीचे उतर कर सीता जी के सामने हाथ जोड़कर खड़े हुए और प्रणाम करके कहा कि हे मातः ? श्रीराम व लक्ष्मण दोनों भाई क्षेमकुशल हैं वे किष्किन्धा में हैं मुझको आपकी खोज लिये भेजा है । आपका समाचार पाकर वे एक महान् सैन्य ले रावण का सहकुटुम्ब नाश कर आपको अयोध्याजी ले जाँयगे, आप कुछ भी चिन्ता न करो । हनुमान जीके इन वाक्यों को सुनकर सीता जी को धैर्य हुआ । तब राम के सब समाचार पूछे । हनुमान जी सीता जी की आज्ञा लेकर जानेको तैयार हुए-तब उन्होंने अपने मस्तक में पहना हुआ मणिका चाक निकाल कर दिया और कहा कि यह मेरा चिन्ह श्रीराम चन्द्रजी को देना इसे देखकर उन्हें निश्चय होगा कि आपकी मुझसे भेट हुई है ।

इसके बाद हनुमानजी सीता जी को प्रणाम कर रामचन्द्र जी के पास गये इधर सीताजी के पास रावणने आकर समझना और धमकाना शुरु किया । बहुत अशायें व भय

खखाये किन्तु उससे देवी सीताजी स्वल्प भी चलायमान नहीं हुई। अन्त में राम लक्ष्मण के कृत्रिम मस्तक बना-कर उनके सामने धरे और कहा कि देख इन तेरे प्यारों का मैंने संहार किया अब भी तू मेरी आज्ञा नहीं स्वीकार करेगी तो तेरी भी यही दशा होगी। रावण के जा-नेके पश्चात विभीषण की स्त्री सर्मा ने आकर उसके कपटकी बात खोल दी जिससे उसके जीमें शन्ति हुई। फिर सीता जी को समझाने के लिये रावणने आकहा राम वरावण में भेद मत समझ क्योंकि जो ईश्वर राम के शरीर में व्या-पक है वही ईश्वर रावण में भी व्यापक है अतएव व्यर्थके महत्वको छोड़कर रावणको स्वीकार कर वरन् मारडालूंगा उस के उत्तर में सीता जी ने कहा—

ऐ रावण तू धमकी दिखाता किसे,
मुझे मरने का खौफ़ खतर ही नहीं।
मुझे मारेगा क्या अपनी खैर मना,
तुझे होनी की अपनी खबर ही नहीं ॥ १ ॥
जो तू सोने की लङ्का का मान करे,
मेरे आगे वह मिट्टीका घर भी नहीं।
मेरे मन का सुमेरु डिगेगा नहीं,
मेरे मन में किसी का भी डर ही नहीं॥

क्यों न जीत स्वयम्बर तू लाया मुझे,
मेरी चाह जो थी तेरे दिल में बसी।
था वो कौन शहर मुझे दे तू बता,
जहां स्वयम्बर की पहुंची ख़बर नहीं ॥ ३ ॥
तैंने सहस्र अठारा जो रानी करीं,
हाय इस पै भी तुझ को सबर ही नहीं।
पर तिरिया पै जो तूने ध्यान दिया,
तुझे मौत नरक का ख़तर ही नहीं ॥ ४ ॥
आवें इन्द्र नरेन्द्र जो मिलके सभी,
क्या मजाल जो शील को मेरे हरें।
तेरी हस्ती है क्या बिना श्री राम पिया,
मेरी नज़रों में कोई बशर ही नहीं ॥ ५ ॥
जो तू चाहे भला मान मेरा कहा,
मेरे प्राणप्रिय पर दे मुझको पठा।
वर्ना कहती हूं तुझ से मैं वर भला,
तेरे सरकी क़सम तेरा सर ही नहीं ॥ ६ ॥

जब हनुमान जी ने रामचन्द्र जी के पास आकर सब सामचार कहे। जिन्हें सुनकर रामचन्द्र जी ने अपना सैन्य लंका के समीप में रक्खा। तब रावण की स्त्री मन्दोदरी जो कि परम पतिव्रता व चतुर थी उसने अपने पति

के दुष्ट कृत्य से परिचित हो उन से समझाकर कहने लगी कि स्वामिन् ! रामचन्द्रजी अत्यन्त बलवान व साक्षात् ईश्वर के अवतार हैं और आपने जो कार्य किया है वह नीतिशास्त्रसे विरुद्ध है इससे आपके कुटुम्बका नाश होगा । यदि आप अपना व हम सब लोगों का कल्याण चाहते हैं तो रामचन्द्र जी को उनकी स्त्री सीता वापिस दीजिये और पांवमें पड़कर क्षमा मांगिये जिससे वे दयालु महात्मा आपके समस्त अपराधोंको क्षमा करेंगे और आप को वे अभय दान देंगे । इस लिये कृपाकर मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार करें । उससे सबका श्रेय होगा,, मन्दोदरीके इन वाक्योंका रावण पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा ठीक है "विनाश काले विपरीत बुद्धिः" । उसने राम को निराश करनेके निमित सीताजीका कृत्रिम मस्तक बनाकर रामके पास भेजा । जब यह सम्वाद सीताजी को मिला तब उन्होंनें रामचन्द्रको कहलाभेजा कि प्राणेश ! यह दुष्ट रावण अपने बलसे मेरा स्पर्श तक नहीं कर सका किन्तु जब अन्तिम समय आवेगा तब मैं अपने प्राणों को त्याग करने में कुछ भी विचार नहीं करूंगी । किन्तु आप उसके अपराध का दंड देने में कुछ भी संकोच न करें । सीताजी के इस भेजे हुए सम्वादको सुनकर रामको अ-

त्यन्त आनन्द हुआ। रामने अधिक उत्साहित होकर रावण के साथ घोर संग्राम कर उसका नाश किया। उस समय विभीषणने सीताजी को रामचन्द्रके समीपमें पहुंचाया और रामचन्द्र जीने विभीषण को लंकाका राज्यासन दिया तब रामचन्द्र जी ने सीता जीको लेकर अयोध्याकी ओर प्रयाण किया। मार्गमें रामचन्द्र जीको सीताजीने अपने सतीत्वका विश्वास दिलाया जिसे देख रामचन्द्र जी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। समस्त मंडली अयोध्यामें आई जिससे समस्त प्रजा प्रसन्न हुई और घर २ आनन्द उत्सव हुए। कुछ समय के पश्चात् सीताजी सगर्भा हुई जिसे सम्पूर्ण नगर में विशेष आनन्दमङ्गल होने लगा।

एक धोबी ने अपनी स्त्री को किसी कारण से कहा कि ऐसा तो रामही है जो दूसरेके घरमें रही हुई सीताको अपने घरमें फिर रहने दे। ये वचन रामचन्द्रजी के कान पड़े। उस दुष्टा कैकैयी व कुछ दासियोंने मिलकर एकदिन सीता जी से, लङ्काकी बातें पूछते २ प्रश्न किया कि रावण का स्वरूप कैसा था? आप चित्रविद्यामें कुशल है इसलिये चित्र निकाल कर हमें दिखलाईये तब साध्वी सीता ने कहा कि "मैंने अपने नेत्रसे

रावण के सम्पूर्ण शरीर को नहीं देखा: क्योंकि मैंने उसके मुखके सामने कभी भी नहीं देखा किन्तु उसके पांव का अंगुठा देखा है इससे उसका चित्र बनासक्ती हूं ऐसा कहकर उसका चित्र एक कागज पर खेंच कर दिखा दिया।

इस चित्र को केकैयी अपने हाथमें लेकर दूसरे मकान में जहांपर सब कोई बैठे थे वहां जाकर कहने लगी कि देखो! सीताको रावणपर कैसी प्रीति है। उसके बिना देखे उसको चैन नही पड़ता इस लिये उसको देखने के लिये उसने यह चित्र निकाल रक्खा है।,, इस बातको सुनकर रामचन्द्र जी को बहुत बुरा मालूम हुआ वे समझते थे कि सीता सर्वथा है पवित्र किन्तु लोकापवाद के भयसे सीता को वन में पहुंचा देनेकी लक्ष्मणजीको आज्ञा दी इसके लक्ष्मण भरत व शत्रुघ्न ने बहुत प्रार्थना की और स्पष्ट कहा कि यह कार्य अनुचित है किन्तु राम ने कहा कि मेरा यह विश्वास है कि सीता निर्दोप है,, किन्तु लोकनिन्दाके भयसे मुझको ऐसा करनाहीं चाहिये पश्चात् ज्येष्ट भ्राताकी आज्ञानुसार लक्ष्मण जी ने सीता जी को रथमें बीठाकर चित्रकूट पर्वत पर जहां वाल्मिक

ऋषिका आश्रम था उससे कुछ दूरमें सीताजी को रख दिया इस प्रकार अपने पतिकी ओर से दुःख आपड़ने परभी सीता जीने लक्ष्मण जीके साथ रामको कहला भेजा कि हे प्राणेश्वर! मैं आपकी दासी हूं जैसे आप अन्य लोगों का रक्षण कर रहे हैं वैसे ही इस जङ्गलमें मेरी भी रक्षा आपही करेंगे। आप ही मेरा सर्वस्व है मैं आप की निन्दा के वदले संसार में स्तुति हो यही सुनकर प्रसन्न होना चाहती हूं। इत्यादि ? अहा ? साध्वी सीता धन्य है आपके प्रेमको ? संसारमें आपके समान धैर्यको कौन रख सक्ता है!

इस भयँकर जङ्गल में सीता गर्भावस्था में सख्त धूपमें एकाकी बैठ कर रुदन कर रही है उतनेमें वाल्मिक ऋषिके शिष्य दर्भ लेनेके लिए आये। उनकी दृष्टि सीता जी के ऊपर पड़ी, उन्होंने समीप में जाकर धैर्य दिया और आश्वासन दे शान्तकर उन्होंने अपने आश्रममें आकर ऋषि से सब समाचार कहे जिन्हें सुनकर ऋषि सीताजीके पास गये और आदरपूर्वक अपने आश्रम में लाकर अपनी पत्निके सुपर्द की। कुछ दिनके पश्चात् उन्हें दो पुत्र हुए उनमें से एकका नाम लव व दूसरे का नाम कुश रक्खा। जब वे पांच वर्ष के हुए तब उन्हें विद्याभ्यास शुरू कराया, आ

९वें वर्ष यज्ञोपवीत संस्कार कराया, और तत्पश्चात् अनेक शास्त्र, शस्त्र व अस्त्र का अभ्यास कराया। जानकी जी भी अपने पुत्रों को योग्य उपदेश दिया करती थीं। ज्यों २ कुमारों की अवस्था बढ़ती गई त्यों २ उनका पराक्रम व बुद्धि बढ़ने लगी, ऋषि भी इन कुमारों के ऊपर अत्यन्त अनुराग रखते थे।

रामचन्द्र जी महाज्ञानी एक पत्नी व्रती व तत्व-वेत्ता थे उन्हें केवल लोकापवाद के भयसे सीताजी को वनमें भेजने की आवश्यक्ता हुई थी किन्तु उनको सीता जी के ऊपर अत्यन्त अनुराग था वह किसी प्रकार न्यून नहीं हुआ। जो मनुष्य यकायक शीघ्रता से कोई अनुचित कार्य कर बैठता है वह कुछ समय के पश्चात शान्त होता है तब उसके मनमें आता है और उस समय अपने विशेष विचार किये बिना ही किये हुए कार्य के लिए पश्चाताप करता है ठीक उसी प्रकार रामचन्द्र जी को भी सदैव अशान्ति रहा करती थी जिसको दूर करने के लिए वशिष्ट प्रभृति ऋषियो की सम्मति से राम ने अश्वमेध यज्ञ का आरंभ किया। नियमानुसार यज्ञ के अश्व को छोड़कर उसके पीछे रक्षण करनेके लिए कुछ सैन्य समेत शत्रुघ्न जी को भेजा। वह अश्व भ्रमण करता हुआ वाल्मिक

वाल्मीक ऋषि के आश्रम के समीप आया, लवकुश की उस के ऊपर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने उस अश्व को बांध लिया। इस समय लवकुश की आयु १५ वर्ष की थी, किन्तु सादा खुराक शुद्ध हवा, जातवीज, एवं ऋषि तथा सीता जी के समान साध्वी माता के शिक्षण से बड़े महारथी हो चुके थे। शत्रुघ्न ने अश्व को छोड़ देने के लिये बहुत कुछ कहा, किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया, अन्त में युद्ध कर शत्रुघ्न को पराजीत कर घायल किया। ये सम्वाद राम लक्ष्मण को मिले वे तुरन्त ही एक महान् सैन्य लेकर वहांपर आ पहुंचे और दोनों ओर से युद्ध की सम्पूर्ण तैय्यारी होगई। किन्तु लवकुश का मुख देख-कर रामचन्द्र जी को पुत्रप्रेम का आविर्भाव हुआ, मालूम करने पर राम को विदित हुआ कि ये मेरे ही पुत्र हैं। जब लव कुश ने यह बात अपनी माता से कही तब सीता जी ने समझ लिया कि ये तो मेरे प्राणपति हैं। यह सब बातें ऋषि को भी मालूम हुईं, ऋषि जाकर रामचन्द्र जी को अपने आश्रम में ले आये ऋषि ने सीता का सब वृत्तांत कहकर उन्हें अयोध्या जी ले जाने की प्रार्थना की, जिसे सुनकर रामचन्द्रजी आद-र पूर्वक अयोध्या नगरी में ले आये। रामचन्द्र जी

अपनी प्रियपत्नि व बालकों सहित अयोध्या जी में पधारे जिन्हें जानकर अयोध्यावासियों को अत्यन्त आनन्द हुआ। और सब कोई आनन्दपूर्व्वक दिन व्यतीत करने लगे।

वीर रमणी जान् डी आर्क।

ह रमणी फ्रान्स के एक किसान की पुत्री थीं। इसकी धीरता वीरता और उत्साह संसार में स्त्री जातिके लिये ही नहीं प्रत्येक स्वदेश प्रेमी के लिये आदर्श रूप था। इस के वीरत्व का वर्णन करना हमारी लेखनी के बाहर है इसका संक्षेप लिखते हैं।

एक बार फ्रान्स के ऊपर महाशक्तिशाली इंग्लैण्ड के सम्राट् ने चढ़ाई की। इस महासैन्य के सामने फ्रान्सीसी वीरों का उत्साह जाता रहा और रणक्षेत्र छोड़कर भाग गए। फ्रान्स के ऊपर विकट समय उपस्थित होगया। जहां तहां नैरुत्साहिता ही दृष्टि गोचर होती थी। कुछ स्वदेश हितैषी वीरों के चित्तमें पुनः स्वदेशभक्ति का संचार हुआ और रण में मातृभूमि के लिये प्राण अर्पण

करने का निश्चय किया किन्तु सुयोग्य नेता के न होने से फ्रान्स में सैन्यबल का एकत्रित होना कठिन था। देश को आपत्ति में देखकर यह वीर रमणी इस दुःस्साध्य कार्य्य को अपने हाथ में लेकर वीरों को स्वदेश की तरफ ध्यान दिलाकर उत्साहित करने लगी। समस्त वीरों को एकत्रित कर और स्वयं सेना लेकर फ्रान्स की आपत्ति दूर करने के लिये शस्त्रों से सुसज्जित होकर स्वयं रणभूमि में गई। बड़ी वीरता और चतुरता से युद्ध करती रही अन्त में परमेश्वर की दया से इसका परिश्रम सुफल हुआ और फ्रान्स को विजय प्राप्त हुई। सर्वत्र जान आफ आर्क की गुणगरिमा का गान होने लगा।

धन्य है देवी तेरी वीरता स्वदेशभक्ति रणकौशल और उत्साह को जिसके बल से तूने संसार भर की स्त्री जातिका मुख उज्वल किया और परतंत्रतासे अपने देशका उद्धार किया। इसके पराक्रम को देख कर कोई कह सकता है कि स्त्री पुरुषों से किसी काम में कम नहीं हैं। केवल साधन ही न मिलने के कारण यह दशा स्त्री जाति की है।

———

भगिनी डोरा ।

न कश्चित् कस्य चिन्मित्रं न कश्चिद् कस्य चिद्रिपुः
व्यवहारेण हि जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा: ॥

परोक्त वचन किसी महत्मा ने वहुत ठीक कहा है अर्थात् कोई किसी का शत्रु और मित्र नहीं व्यवहार से ही शत्रु और मित्र होजाते हैं । जिस देवी का अब जीवन चरित्र लिखने का साहस करते हैं । यह अपने उत्तम वर्त्तात्र से संसार की भगिनी वनी । इसके व्यवहार से शत्रु भी मित्र वन गए थे ।

इस देवी का शुभनाम "डोरथी विन्डलो थाडिसन" था । और इंगलैण्ड के पार्कशायर के अन्तर्गत हक्सले नामक ग्राम में जन्म हुआ था । अपने वारह भाई वाहिनो में जिस प्रकार यह परम सुन्दरी थी इसी प्रकार वह सर्व-गुण सम्पन्न थी । बाल्यावस्था में किसी कदर दुर्वल थी व्यायाम केकर बलवती हुई और तभी घोड़े पर चढ़ना सीखा । ग्रामकी पाठशाला में विद्या पढ़ने लगी । पढ़ने से जो समय बचता था उसे बृथा न खोकर अन्य बालकों को शिक्षा देती थी । युवावस्था प्राप्त होने पर माता पिता के

कहते हुए भी देश सेवा के लिये इन्होंने अपना विवाह नहीं किया था।

क्रिमिया के युद्ध में इंग्लेण्ड की स्त्रियों ने आहतों की सेवा के लिये एक मंडली बनाई। उसके साथ डोरा ने युद्ध भूमि में जाने की आज्ञा अपने पिता से मांगी किन्तु डोरा की आयु कम होने के कारण पिता ने आज्ञा न दी। उस समय डोरा अपना चित्त मसोस कर बैठ रही। पिता के देहान्त होने पर परोकारिणी डोरा ने रोमन कैथिलक (ई-साई संप्रदाय) ब्रह्मचारिणियों में के आश्रम में प्रवेश किया उस समय उनके आश्रम का यह नियम था कि नवीन ब्रह्मचारिणियों को कठिन और नीच काम दिया जाता था। डोरा कुछ दिन तक आश्रम के कठोर नियम पालन करती रही किन्तु जब उसने देखा कि इस प्रकार पराधीन रहते हुए मैं विशेष परोपकार नहीं कर सकती तब रोमन कै-थिलिक मंडली छोड़कर मेडिकल कालेज के सेवा विभाग में दाखिल होकर सेवा सम्बन्धी समस्त नियम शीघ्र ही सीख लिये।

जब यह कालेज से निकली तब ही देश में वसन्त रोग बड़े भयंकर रूप से फैल गया जिससे सैकड़ों आदमी नित्य मृत्यु के मुख में जाने लगे। इस भयंकर समय में

जब कि रोगियों को सगे सम्बन्धी छोड़ छोड़ कर जारहे थे परोपकारिणी डोरा अस्पताल में निःशुल्क (बिना कुछ लिये) सेवा करने चली गई। डोरा तन मन धन से रात दिन रोगियों की सेवा में मग्न रहती थी। दैव योग से डोरा को भी उक्त वसन्त रोग होगया। किन्तु परमात्मा कीकृपा से इस भयंकर रोग से डोरा के प्राण बच गए स्वस्थ्य होते ही फिर डोरा अपनी सेवा कर्म में प्रवृत हुई। प्रत्येक रोगीकी सेवा मातासे अधिककरती थी रोगी और अस्पताल के समस्त कर्मचारी भगिनी कह कर सम्बोधन करते थे शनैः २ कीर्ति सारे इंग्लैण्ड में फैल गई और यह भगिनी डोरा के नाम से प्रसिद्ध हुई। भगिनी डोरा दिन में रोगियों की सेवा और रात्रि को नशेबाज़ तथा अन्य दुष्ट कर्मियों को सदुपदेश देती थी।

एक बार भगिनी डोरा सायंकाल को भ्रमण करने जारही थी रास्ते में एक लड़के ने इनके सिर में पत्थर मारा जिससे इनको बहुत चोट आई तुरन्त ही अस्पताल भेजी गई। दैव इच्छा से अकस्मात् उस मारने वाले लड़के को वसन्त रोग होगया और अस्पताल में लाया गया भगिनी डोरा ने उसकी अत्यन्त सेवा की। वह लड़का अपनी दुष्टता पर पछताकर रोरहा था उसे देख कर इन

को बहुत दया आई इन्होंने उसे बहुत समझाया। किसी कविने ठीक कहा है: —

उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः सद्भिः साधु रुच्यते॥

अर्थात् उपकार करने वाले के साथ भलाई करने में क्या गुण है अर्थात् कुछ तारीफ नहीं है जो अनुपकारी के साथ भलाई करता है उस को सज्जन ही साधु कहते हैं।

कई नशे बाज एक गली में इकट्ठे होकर आपस में बुरे २ शब्द कह रहे थे जिन से कुवासनाएं प्रकट होती थी। अकस्मात् डोरा भी वहां जा पहुँची। उसको देखकर प्रथम तो वह चुप होगए परन्तु फिर उसी प्रकार वकने लगे डोरा ने उनको समझाया और फिर परमेश्वर से प्रार्थना करने लगी कि हे! सर्वरक्षक! दयालु! पिता! परमात्मन्! इन दुःखी और दुर्व्यसनी पुरुषो को सुधार कर अपने चरणों की भक्ति दे। परमात्मा ने डोरा की प्रार्थना सुनी और उन उन्मत्त पुरुषों के चित्त में ज्ञान का संचार हुआ वे भगिनी डोरा के पैरों में पड़कर क्षमा प्रार्थना करने लगे।

दिन में रोगियों की सेवा और रातको आजीवन उपदेश देते हुए डोरा की जीवन यात्रा समाप्त हुई। भ-

गिनी डोरा के शव के साथ लाखों स्त्री पुरुष थे और अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रेमपुष्प चढ़ा रहे थे। जिन स्त्री पुरुषोंके शरीर को देशसेवा में अर्पण होने का शुभ अवसर प्राप्त होता है वह धन्य हैं। और सदैव जीवित रहते हैं। किस उर्दू कविने ठीक कहा है:—

जीता है वह जो मरचुका औरों के लिये।
मर गया वह जो जीता है अपने लिये॥

ताराबाई।

—:⊙:×:⊙:—

दिल्लीपति अलाउद्दीन ने जब अणहलवाड़ा के राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर डाला था। तब वहां के चालूक्य वंशीय राजपूत तक्षशिला अथवा तोडातङ्कू में बसकर वहीं का राज्य किया करते थे परन्तु बहुत दिन वहां भी सुखी नहीं रहसके। रावशूरनाथ को एक अफगान सरदार लैला ने वहां से निकाल दिया तब राव शूरनाथ ने मेवाड़ राज्य में आकर शरण ली और बेदनौर स्थान में रहने लगे जब दुर्भाग्यवश इन्हें अपना देश छोड़ना पड़ा था तब इनकी कन्या ताराबाई की आयु बहुत थोड़ी थी। यद्यपि उदयापुराधीश महाराणा रायमल अपने शरणागत

के सुख के लिये यथाशक्ति प्रयत्न करते थे तथापि राव शूरनाथ सदैव मलीन मुख रहते थे क्योंकि जो राजा कभी स्वतन्त्रता देवी की गोद में खेल चुका हो वह परतन्त्र रहता हुआ किसी प्रकार प्रसन्न रह सक्ता था। पिता के मुख को मलीन देख कर ताराबाई को अत्यन्त दुःख होता था वह रात दिन पिता को प्रसन्न करने की चेष्टा करती थी किन्तु इसकी चेष्टा सदैव निष्फल होती थी इस कारण यह बहुधा सोचा करती थी कि यदि मैं लड़का होती तब अवश्य अवश्य अपने पिता का देश शत्रुओं से छीनकर पिता जी के चरणों में समर्पित करती। इसप्रकार अपने को धिक्कारती थी कि हाय मैं लड़का न हुई। एक बार एकान्त में सोचते २ यह विचार हुआ कि मैं अभी तक किस भ्रम में पड़ी हूं केवल यह समझ कर कि मैं पुरुष नहीं स्त्री हूं और हाथ पर हाथ धरे बैठी हूं। हाय आज तक मेरी मति कहां थी जो अपने महान् उद्देश्य को छोड़े बैठी थी। प्राचीन हिन्दू महिलाओं ने पुरुषों से बढ़कर पराक्रम के काम किये। युद्धों में जा जा कर सेनाओं को अपनी ओजस्विनी वक्तृताओं द्वारा उत्तेजित किया शंकराचार्य जैसे विद्वान् को शास्त्रार्थों में अपनी विद्वत्ता से परास्त किया। आज स्त्री लीलावती कृत लीलवती नामक ग्रंथ विद्वानों को चकित

कररहा है। संसार में कठिनसे कठिन कामों को पुरुषों से स्त्रियों ने किसी अंश में कम नहीं किया। मैं वह काम क्यों नहीं कर सकती क्या मैं उस सर्व शक्तिमान् परमात्मा की सृष्टि में नहीं हूं। क्या मेरे शरीर में जीव नहीं है तब किस बात में मैं पुरुषों से कम हूं। मैं बड़ी पापिनी हूं जो इतना समय व्यर्थ नष्ट किया। इतने समय में कुछ काम किया हो तो अब तक क्या न कर डालती। आज इतनी देर बाद मेरी आंख से अज्ञान का पर्दा उठा। आज मुझे ज्ञात हुआ कि मुझमें पुरुषों के समान जीव है। मैं भी उसी सृष्टि कर्ता परमेश्वर के हाथ से रची गई हूं जिसके कि पुरुष "जो कुछ संसार में पुरुष करसकता है स्त्री भी वह अवश्य कर सकती है। जोश में खड़ी होगई और (जोर से कहने लगी) 'मैं कर सकती हूं। मैं करूंगी! अवश्य करूंगी!! तोडातङ्क के सिंहासन को मैं पिताके चरणोंसे स्वयं सुशोभित कराऊँगी!!! उसका तेज और भी बढ़ा (बांया पांव आगे बढा कर) बोली:—"मैं सुवीरा बनकर तोडातङ्क को शत्रुओं से छुटाऊंगी। संसार को कम्पायमान करदूंगी देखूं अब मेरे आगे कौन ठहरता है। पृथ्वी सुनती है आकाश सुनता है त्रिभुवन सुनता है मैं बारम्बार पुकार २ कर कहती हूं कि मैं अपने चरित्र से सारे संसार को दिखादूंगी कि भारतवर्ष

में स्त्रियों ने क्या २ किया है क्या २ करसकती हैं और क्या २ करती है। मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि जबतक पिता जी को तोडातङ्क के सिंहासन पर आरूढ न करदूंगी तब तक संसार की सुखदायक सामग्रियों से सदैव विमुख रहूंगी देवलोक सुनते हैं, नरलोक सुनते हैं, नागलोक सुनते हैं। हे सूर्य्य भगवान्! तुम मेरे साक्षी हो आज तुम्हारे सन्मुख यह प्रतिज्ञा करती हूं कि जब तक तोडातङ्क पर मेरी जातीय पताका न फहरायगी मैं अपना विवाह न करूंगी और यदि विवाह करूंगी तो उसी से करूंगी जो मुसल्मानों से मेरे देशका उद्धार कर मेरे पिता को फिर सिंहासनारूढ करेगा। बस अब चलूं जो प्रतिज्ञा की है उसके पूर्ण करने का उद्योग करूं।

ताराबाई ने उसी दिन से शस्त्रविद्या सीखना प्रारम्भ कर दिया। थोड़े ही दिन बाद शस्त्रविद्या और घोड़े की सवारी में अद्वितीय होगई बड़े २ सरदार भी उसकी बराबरी नहीं करसकते थे। शस्त्रविद्या में निपुण होकर उसने फिर अपने पिता से यवनों पर आक्रमण करने की प्रार्थना की। चढ़ाई की गई किन्तु ताराबाई का अभिप्राय सिद्ध न हुआ। बार २ चढ़ाई की किन्तु विफल मनोरथ ही न होती रही इससे ताराबाई का उत्साह कम न हुआ

किन्तु द्विगुण होता गया। वह ज्यों २ हारती जाती थी त्यों २ उसका और भी पवित्र संकल्प दृढ़ होता जाता था। उसने यह निश्चय कर लिया था कि थोडी सेना होते हुए भी शत्रुओं को सुख से नहीं सोने दूंगी। और सत्य ही उसने अफ़गान सरदार लैला को सुख से नहीं सोने दिया।

ताराबाई की सुन्दरता की प्रसन्शा दिनों दिन भारतवर्ष में फैलने लगी। उसके अभिलाषी बहुत से राजा थे किन्तु उसकी विकट प्रतिज्ञा को सुनकर हाथ मलकर रह जाते थे। एक बार उदयपुर के उत्तराधिकारी जयमल ने उसकी विकट प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का विचार करके उसके पास गया किन्तु उसकी मोहनी सूरत को देखकर क्षत्रिय व्यवहार विरुद्ध शब्द मुखसे निकले जिनके फलमें ताराबाई के पिता ने उसका सर धड़ से अलग कर दिया। सत्य की रक्षा के कारण राणा रायमल ने अपने पुत्र के वध करने वाले को किसी प्रकार का दण्ड न देकर वेदनौर का राज्य दिया।

इधर अपने पुत्र जयमल के परलोकवास होने पर महाराणा जी ने अपने वीर पुत्र पृथ्वीराज को बुला लिया पृथ्वीराज की विजय पताका दिन पर दिन वृद्धि को प्राप्त हो रही थी। इनकी अनूपम वीरता से बड़े २ वीर भय

खाते थे। इनकी वीरोचित प्रसंशा सुनकर ताराबाई इन्हें मन से वर चुकी थी वह कहा करती थी परमात्मा ने यदि मेरे योग्य वर बनाया है तब वीरवर महापराक्रमशाली पृथ्वीराज ही को बनाया है। किन्तु ईश्वर जाने वह मेरे वास्ते कष्ट उठायेंगे या नहीं, नहीं २ ऐसा कदापि नहीं हो सकता वह सच्चे वीर हैं और वीरता के अवतार धर्मात्मा हैं फिर मेरे पवित्र कार्य्य में क्यों न सहायता देंगे। इस में संदेह नहीं मुझे इन से अतिरिक्त और कौन मिलेगा मेरी जयमाल इनके ही गले में पड़ेगी। किन्तु सन्देह इस में ही है क्या मुझे उनकी अर्धाङ्गिनी बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

विधाता ने दोनों को वीरता और गुणोंकी मूर्त्ति बनाया था! ताराबाई सत्य ही भारतवर्ष नहीं भूमण्डल की स्त्रियों में तारा थी और पृथ्वीराज भी भूमण्डल के अधीश्वर होने योग्य थे ताराबाई सुवीरा सर्वाङ्ग सुन्दरी उनके योग्य थी। जिस ताराबाईके लिये और राजाओं का चित्त व्याकुल था वह ही ताराबाई पृथ्वराजको उनके गुणों के कारण सुलभ थी। ताराबाई में सब से उत्तम गुण उन्हें जान पड़ते थे वह उसकी अद्भुत वीरता रण कौशल और महान् उद्देश्य थे। ताराबाई के गुणों और रूप की प्रसंशा सुनकर पृथ्वीराज का भी चित्त उसकी तरफ आकर्षित होगया।

पिता के बुलाने के बाद कुछ दिन खाली रहने से पृथ्वी-राज का चित्त लड़ाई को चाहता था उसकी तलवार को निष्काम रहना अच्छा मालूम नहीं होता था। अच्छा मौका समझकर उन्होंने सोचा चलो इसी बहाने से लड़ाई का मौका मिलेगा और अपने समय की एक मात्र सुन्दरी स्त्री हाथ आवेगी।

यह विचार कर पृथ्वीराज वेदनौर को चल दिये। जिस वीरमूर्त्ति की ताराबाई चिरकाल से उपासना कर रही थी उसका आगमन सुनकर उसके आनन्द की सीमा न रही। वीरशिरोमणि पृथ्वीराज प्रथम राव शूरनाथ से मिले शूरनाथ ने अति सत्कार के पश्चात् पृथ्वीराज से कहा कि "क्या आप यवनों को मेरे देश से निकाल देंगे यह सुनकर पृथ्वीराज ने उत्तर दिया "एक सप्ताह में" यह सुन शूरनाथ अत्यन्त प्रसन्न हुआ। इसके बाद पृथ्वी-राज ताराबाई के पास गए, दोनों के कण्ठ गदगद होगए आहा! क्या सत्य ही इस कोमलाङ्गी में विद्या साहस वी-रता भरी है।

ताराबाई ने कहा "महाराज क्या आप मेरे देश का उद्धार करगो" पृथ्वीराज बोले "तुम्हारे देश का उद्धार तो अवश्य करूंगा किन्तु आप अपनी प्रतिज्ञा स्मरण रक्खें

जो मेरा भी उद्धार होजाय" अब तारावाई के हर्ष की सीमा न रही क्योंकि वह तो पहले ही इनको अपना मान चुकी थी। उसने प्रार्थना की कि महाराज मैं आपके सङ्ग चलूंगी, यह और भी प्रसन्न होगये।

इन्होंने मुहर्रम का दिन अपना कार्य्य सिद्धि के लिये निश्चित किया और ५०० सैनिक लेकर उस दिन तोडा-तङ्क पहुंचे। सेना को वाहर छोड़ा आप तारावाई और सेना पति नगर में गए।

ताजिये महल के सामने लाए जा रहे थे मुसलमान अपनी छाती धुन २ कर हाय हसन हाय हुसेन कह कर चारों ओर कोलाहल कर रहे थे।

अफ़ग़ान सरदार बरामदे में खड़ा कपड़े पहिन रहा था एकदम बोला यह तीन शख्स कौन हैं कहा हजूर वह, हां वह ही शब्द निकला था कि एक तीर उसके जाकर लगा अभी संभल ने पाया था कि पृथ्वीराज के भाले ने तारावाई के तीर का काम सिद्ध कर दिया। सरदार तत्काल भूमि पर गिर गया उसके गिरते ही हाहाकार मच गया। जो हाय हुसेन हाय हुसैन कह रहे थे उनके मुंह से हाय मरे मर गये मार लियारे निकलने लगा। किसी का चित्त सावधान न था नहीं तो हज़ारों की भीड़ में तीन

चार का मारना कोई बड़ी बात न थी। पृथ्वीराज की तलवार बहुत दिनों से निष्काम रक्खी थी आज उन्हें भर पूर चलाने का अवसर मिला था एक दूसरे की अद्भुत वीरता रण कौशलता को देख कर एक दूसरे पर प्राण न्यौछावर करने को तैयार थे। ताराबाई की जैसी प्रसंशा सुनी थी वह सत्य ही वैसी निकली यह पृथ्वीराज को विश्वास न था कि यह सत्य ऐसे गुणोंसे विभूषित होगी।

अन्त में जब मुसलमानों की बुद्धि कुछ ठिकाने आई और तीन ही पुरुष दिखाई दिये चारों तरफ से शस्त्र लेकर टूटने लगे परन्तु तारा और पृथ्वीराज एक एक हाथ में मूली गाजर की तरह काटने लगे। कोई भी पास तक नहीं पहुंचने पाता था। जब महल के दरवाजे पर पहुंचे वहां देखा एक मस्त हाथी मार्ग रोके खड़ा है इस समय इनको मुसलमानों ने बुरी तरह दबा रक्खा था और घमसान युद्ध होरहा था। पृथ्वीराज ने चिल्ला कर कहा हाथी की सूंड काट दो यह सुनते ही ताराबाई की तलवार हाथी की सूंड के पार हुई। वह चिल्लाता हुआ भागा और उस भीड़ में सैंकड़ों उसके पैरों से दब गये। पृथ्वीराज तारा और सेनापति फौरन बाहर आये और आते ही एकदम सेना को चढ़ाई की आज्ञा दी। हर हर जय

महादेव जय एक लिङ्ग की ध्वनि से पृथ्वी को कम्पायमान करते हुए नगर में प्रवेश किया। नगर के सब द्वार बन्द कर दिये गये और कतलआम की आज्ञा हुई क्षणमात्र में ही एक को भी जीवित न छोड़ा। तारा बाई ने तुरन्त पिता को बुलाने की आज्ञा दी। स्वागत के लिये स्वयं गई शूरनाथ की प्रजा ने अपने पूर्व राजा को पाकर अत्यन्त आनन्द मनाया। राव शूरनाथ पहिले से अधिक सावधानी से राज्य करने लगे। राव शूरनाथ को अपनी स्वतंत्रता और राज्य के दुबारा मिलने से जो आनन्द हुआ उसको वही जान सकता है जिसने पहिले कभी स्वतन्त्रता का आनन्द लिया हो?

धन्य तारा तैंने अपने चरित्र से भारतीय नारियों का मुख उज्वल किया तूने सत्य ही अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करके यह दिखा दिया कि वास्तवमें स्त्रियां पुरुषों से किसी बात में कम नहीं है। तू सत्य ही भारत की तारा नहीं किन्तु चन्द्र थी आज भी तेरा यश भारत वासियों के हृदय में प्रकाश कर रहा है।

धनि २ भारतकी क्षत्राणी धनि २ भारतकी क्षात्राणी।
वीर कन्या वीर प्रसवनी वीर वधू जगजानी॥
सती शिरोमणी धर्म धुरन्धर बुद्धिबल धीरज खानी।
इनके यश की तिहूलोकों में अमल ध्वजा फहरानी॥

तारामती=शैव्या ।

ई पुरुष स्त्री की इच्छा विरुद्ध सहसा सांसारिक या किसी पारमार्थिक कार्य्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् जिस प्रकार एक पहिये से गाड़ी नहीं चलसकती इसी प्रकार कोई भी पारमार्थिक काम सुपत्नीके बिना नहीं हो सकता। अब जिस सती का चरित्र लिख कर हम पाठकों का हृदय और अपनी लेखनी को पवित्र करते हैं उस देवी की ही सहायता से हरिश्चन्द्र कीर्तिवान् और सत्यवादी प्रसिद्ध हुए। इस सती का नाम तारामती शैव्या था और इसका पाणिग्रहण जगत् प्रसिद्ध 'सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र से हुवा था। इन दोनों में अनन्य प्रेम था और दोनों बड़े ही धर्मज्ञ थे।

एक वार विश्वामित्र के सत्यपाश में बन्ध कर हरिश्चन्द्र ने समस्त राज्यवैभव का दान कर दिया और जब कुछ न रहा तब दान की बात अपनी प्यारी स्त्री तारामती से कही। इसको सुनकर रानी साधारण स्त्रियों की भांति दुःखी नहीं हुई प्रत्युतः गंभीरता पूर्वक कहा अच्छा ईश्वर की जैसी इच्छा। चलो अब राज महल छोड़कर काशी

चलें और शेष दान देने का प्रयत्न करें। यह कह कर पुत्र रोहिताश्व को लेकर पति सहित काशी पहुंची।

शेष दक्षिणा को एक मास में जब हरिश्चन्द्र न देसके और मास पूर्ण होगया तब दक्षिणा का ऋण देने के अभिप्राय से अग्नि में जलने को तैय्यार हुये। यह देख कर तारामती ने कहा नाथ! चिन्ता छोड़ सत्य का पालन करो इस प्रकार आत्मघात करना कायरता है। धैर्य्य धारण कर सत्य का पालन करो क्योंकि सत्य पालन की बराबर संसार में दूसरा पुण्य नहीं। इस प्रकार पति को समझाती हुई पतिदेवका धर्म जाता देख रोने लगी और बोली:-

हे प्राणेश्वर! पुत्र की इच्छा से विवाह करते हैं इस लिये आप मुझे और पुत्र को बेचकर ब्राह्मण को दक्षिणा दें। धन्य है तारामती की पति-भक्ति और धर्म परायणता को। वन में वल्कल धारण करने वाली सीता को हमने देखा। मृत पति को गोद में लेकर अश्रुपूर्णनयना सावित्री को देखा। धधकती हुई अग्नि में जलती सहस्रों हिन्दू रमणियां देखीं। परन्तु शरीर और पुत्र बेचकर पतिका ऋण चुकाने वाली स्त्री किसीने नहीं देखी होगी।

स्त्री का ऐसा आग्रह देख कर हरिश्चन्द्र कातरस्वर से कहने लगा कि हे भद्रे! मैं बहुत ही नराधम हूं। मैं तुम्हें

विक्रय करूं ऐसा यदि मुख से वाक्य भी उच्चारण करूं तो नर घातकों के समान अपने को घोर कर्म करने वाला सिद्ध करूंगा। इतना कह कर बहुत ही दुःखित हुआ; किन्तु तारामती के आग्रह से हरिश्चन्द्र लाचार होकर अपनी पत्नी को बेचने के लिये नगर में गया। और कौशिक नाम के ब्राह्मण के घर पर जाकर सती तारामती को और पुत्र रोहिताश्व को बेचा।

तारामती और राजपुत्र रोहिताश्व को मोल लेकर कौशिक ब्राह्मण अपने घर की ओर चला। तारामती ब्राह्मण के यहां जाने के समय अपने प्राणपति हरिश्चन्द्र की प्रदक्षिणा कर जानु से नाम कर शोक से व्याकुल और दीन होकर कहने लगी कि "यदि मैंने कुछ दान किया हो, यदि मैंने हवन किया हो और यदि ब्राह्मण तृप्त किये हों तो उन पुण्यों के द्वारा हरिश्चन्द्र मेरा फिर पति हो"। हा! अयोध्या की महाराणी और राजकुमार थोड़े ही पैसों में बिक गये। हा! भाग्य! क्या यही तेरा गौरव है? तुझे हज़ार बार धिक्कार है।

किन्तु जब तारामती ब्राह्मणके घरपर जानेकेलिये स्वामी से अलग हुई उस समय वह धैर्य नहीं रख सकी। वह अयोध्या की रानी होकर भिखारन हुई थी, फिर भी उस

को एक दिनके लिये भी धैर्यहीन नहीं देखा था। किन्तु अब उसका धैर्य नहीं रहा, उसकी छाती फटने लगी और चित्त अत्यन्त व्याकुल होने लगा वह वस्त्र के आंचल को मुख पर रख कर रुदन करने लगी। सती तारामती सब प्रकार के दुःखों को सहन कर सकती थी जांगरण करके क्षुधा को सहकर पतिके ऋणमुक्त करने में कुछ भी क्लेश नहीं मानती थी। इतना ही नहीं किन्तु पति के लिये प्राण अर्पण करने में भी आनन्द मानती थी वही इस समय रुदन करने लगी। वह क्यों रो रही है! वह सब प्रकार के दुःखों को सहन कर सकी थी। किन्तु पतिविरह का दुःख उसे सहन नही हो सका। यही कारण है कि आज महारानी नहीं नहीं भिखारिन तारा अधीर होकर रुदन करने लगी वह इतने दिन तक केवल पतिके लिये ही जीवन धारण कर रही थी। और पति जीवनमें ही जीवित रह कर उसकी सेवा और भक्ति करके आनन्द मान रही थी वही आज पति से पृथक् होकर दुःखसे रुदन करने लगी। मानो अभी उसकी मृत्यु आई है ऐसा उसको मालूम होने लगा यह मृत्युका दुःख उसके अंतरात्मा को जलावे ऐसे दुःख में कभी भी मनुष्य स्थिर नहीं रह सकता ऐसे तीव्र विषसे जर्जरित होकर कोई भी रमणी

जीवित रहने की आकांक्षा नहीं कर सकती ऐसा जीवन क्या भयानक मृत्यु है ! इस मृत्यु से हड्डी चूर हो जाती है हृदय की ग्रंथियां टूट जाती हैं और विश्व ब्रह्मांड जल कर खाक होजाता है रमणी का प्राण कण्ठ पर आयाहो वह रमणी भी ऐसी भयंकर मृत्युके सामने खड़ी नहीं रह सकती ! हाय ! सती के लिये पति वियोग रूप मृत्यु कैसी भयंकर है !

प्रिय पाठकगण ! इस शोचनीय दृश्यको एकवार देखिये ! सामने वह एक वृद्ध ब्राह्मण अयोध्या की महाराणी को एक दासी के समान मोल लेकर अपने घर पर ले जा रहा है। वह साध्वी देवी तारामती अपने पतिको ऋणमुक्त करके स्वयं दासीपने की शृङ्खला में बधंकर दासी वन कर जा रही है। इस आश्चर्यमय दृश्य को आप अपने हृदय में एकवार अँकित कीजिये। और फिर देखिये कि सती हृदय का पवित्र माधुर्य, सती चरित्र का अनूपम सौन्दर्य संसार में कैसा पवित्र कैसा महिमान्वित व कैसा श्रेष्ट है ? सती तारामती ने अपने चरित्र के अनूपम सौन्दर्य में भूवनमोहिनी का भेप धारण किया है। प्रियभगिनिगण ! आप एकवार इस पतिप्राणा भूवनमोहिनी, और धर्मानुरागिणी तारा का सम्पूर्णक

अवलोकन करें । तारामती शैव्या ऐश्वर्य की छाया में लालितपालित हुई थी और राजरानी होकर भी उसी ऐश्वर्य सुखकी भोक्ता हुई थी। उसने आज पतिव्रत धर्मकी रक्षा के लिये महान् दुःख में प्रवेश किया। कितनी स्त्रियां अपने ज़ेवर के लिये पति को ऋणजाल में बांधने में भी विचार नहीं करतीं तब यह धर्मप्राणा पतिहितैषिणी तारामती स्वयं बिक कर पतिको ऋणके बन्धन में से मुक्त करने में समर्थ हुई। कैसा आदर्श धर्मभाव है। धन्य है तारामती आपके समान आदर्श पतिव्रता और धार्मिक स्त्री का संसार में होना अत्यन्त दुर्लभ है।

तारामती के दुःखों की परिसीमा इतने से ही पूर्ण नहीं हुई। जिस पुत्र के मुख को देख कर उसका चित्त शान्त होता था, जिसको छाती से लगा कर अपने दग्ध हृदय को शान्त करती थी उसी स्नेह धन रोहिताश्व ने उसके दग्धहृदय में और भी आग लगा दी। उससे तारामती को संसार में अन्धकार दिखाई देने लगा कुमार रोहिताश्व बगीचे में पुष्प तुलसी लेने के लिये गया था वहां पर उसको सांप ने काट लिया जिस से वह मृत प्राय होगया। दुःखिनी का एक मात्र आधार अमूल्य धन नष्ट हुआ। देखते २ निर्दयी काल ने एक कोमल पुष्पका

प्राण हरण कर लिया देखते २ शरद पूर्णिमा के चन्द्र को काले मेघों ने आच्छादित कर दिया ! यह संसार बहुत ही विचित्र है ।

तारामती पुत्र रोहितास्व के मरण के दुखदायी सम्वाद को सुनते ही मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी । जब कुछ समय के पश्चात् मूर्छा दूर हुई तब अत्यन्त रुदन करने लगी पीछे पुत्रके शवके समीप जाने की आज्ञा मांगने पर कौशिक ने उसे आज्ञा नहीं दी । जब तारामती ने बहुत कुछ प्रार्थना की तब आधीरात पर सब कार्य कर लेने पर उसे जाने की आज्ञा दी । तारामती दौड़ती हुई तपोवन में गई । वहां पर पुत्र के शवको देखकर उसके शिरमें चक्कर आने लगे और हृदय विदीर्ण होने लगा । उसने देखा कि अभागिनी का फूटा हुआ भाग्य सर्वथा फूट गया है । तारामती दुःख की उपद्रवी हवा में केलकी नाईं फिर मूर्छित हो भूमिपर गिर गई । बहुत समय के पश्चात् मूर्छा दूर होने पर विलाप करने लगी । उसके करुणामय महा रुदन से तपोवन प्रतिध्वनित हो गया जिसे सुनकर वन पक्षी भी चिल्लाने लगे । हा ! आज महारागी नहीं नहीं भिखरिन तारामती का सर्वस्व नष्ट हो गया। सब कुछ जानेपर भी वह प्राण धन पुत्र को समीप में देखकर वनहारिणी

के समान आज पर्यन्त जीवन धारण कर रही थी हा !
भाग्य ? आज दु:खनी के धन एक मात्र पुत्ररत्न को भी
उसके हाथ से छीन लिया । अभागिनी तेरे
सुखका बाजार आज एक साथ उठ गया ? बेचारी ता-
रामती अपने पुत्रका मुख देख कर आशा से दिन व्यतीत
कर रही थी वह आशा भी निष्फल गई । सिर पर दुख
के पर्वत आपड़े इस आये हुए दु:खसे पुत्रको गोदमें ले-
अत्यन्त हृदय विदारक क्रन्दन रुदन करने लगी । हा
यह क्या अन्याचार हो गया ? हाय २ ! अब मैं निराधार
हो गई मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया ! हाय ! अब मैं क्या
करूंगी ? मैं अब कहां जाऊँगी ? ओ दुष्ट सांप ! तैने ऐसे
सुकुमार निरपराधी बालक का जीव क्यों लिया ? इससे
तुझ को क्या फल मिलेगा ? क्या निरापराधी प्राणियों को
भी कष्ट देना यह क्रूर प्राणियों का स्वभाव है ? सर्पराज
तू कहां है यहां आकर मुझे भी डस ले जिससे हम माता
पुत्र में अधिक अन्तर न पड़े । प्रियपुत्र एक बार तो
बोल ! मुझे निराधार छोड़ कर कहां जाता है ? तेरे बिना
अन्य किसका सुन्दर मुख देख कर तेरे पिता के वियोग
दु:खको भूलूंगी । पुत्र उठ ! एकबार मुझे माता
कहकर प्रत्युत्तर दे । अन्यथा मैं भी तेरे पीछे आती हूं ।

इस प्रकार विलाप करती हुई उसे श्मशान में उठालाई और फिर वैसे ही बार बार रुदन करने लगी। उसी श्मशानमें हरिश्चन्द्र भी था किन्तु बहुत दिनसे दोनों की विपरीत स्थिति हो जाने के कारण एक दूसरेको प- हिचान नहीं सके। विलाप करती हुई स्त्री को देखकर वहां हरिश्चन्द्र ने आकर पूछा कि तू कौन है? अर्धरात्री के समय कहां से आई है? क्या मेरे मालिकका कर दिये बिना ही तू अपने पुत्र के शव को जलाना चाहती है? मैं अपने मालिक का कर वसूल करने के लिये ही यह तलवार लेकर यहां पर पहरा दे रहा हूं इसलिये प्रथम कर देकर पीछे अपने पुत्र के जलाने का विचार करना। तारामती इन वचनों को सुनकर निश्वास डालकर बोली कि मेरे पास कर देनके लिये कुछ भी नहीं है इसलिये दया करके मुझको अपने पुत्र के जलाने की आज्ञा दो? हाय! समस्त राजाओं में श्रेष्ठ ऐसे सत्य वादी हरिश्चन्द्र राजा की स्त्री कहां? और यह भयंकर दशा कहां? हा इस समय इसे अपने पुत्रको जलाने के लिये श्मशान में कर देने की भी शक्ति नहीं है! अहा! दैव की गति ही विचित्र है! हे देव! जो कुछ आप चाहें सो करें!

ऐसे हृदय विदारक वचनों को सुनते ही राजा मूर्छित

हो भूमि पर गिर गया ! बहुत समयके पश्चात् मूर्छा दूर हुई तब स्त्री को सामने देख कर फिर मूर्छागत हुआ, कुछ समय के पश्चात् जब फिर चैतन्य हुआ तब हरिश्चन्द्र दुःखित हो शोक करने लगा; पुत्र ! तू कहां पर अन्तर्ध्यान हुआ दयाहीन होकर अपनी माता को क्यों नहीं देखता ? प्रियपुत्र ! एक बार मनोहर आनन्द देनेवाली मधुर कोमल वाणी बोल ! तेरी इस माता को धन्य है कि उसे आज दिन तक तेरे वचन सुनने का सुख प्राप्त था; किन्तु मैंने प्रथम तेरे वचन सुने थे उन्हें ही स्मरण कर इतने दिन निकाले ! इस समय तेरा मिलाप हुआ; किन्तु एक भी वचन नहीं बोलता । जीवन आधार ! अपने पिताकी सामने एकबार दृष्टि कर ! अन्यथा थोड़ी ही देर बाद स्वर्ग में मिलेगा । इस प्रकार बहुत कुछ विलाप कर निश्वास डालते हुए अपनी स्त्री के प्रति कहा कि "प्रिये ! तू अपने जिस प्राणनाथ का स्मरण कर रही है वही वज्र हृदय मैं हरिश्चन्द्र हूं ! हे प्रभो ! मेरा राज्य कहां ! और चाण्डाल की नौकरी कहां ! मेरे समान कोई भी पृथ्वी पर दुखी नहीं होगा । प्रिये ! तू मुझे प्राण से भी प्रिय है और यह मेरा पुत्र भी मुझे प्राणसे अधिक प्रिय है; किन्तु मैं अपने मालिक का कर छोड़ नही सक्ता हूं ,, जो मनुष्य

अपने शरीर व स्त्री पुत्रादि आत्मियों के निमित्त अपने मालिक का अहित करता है वह महाअधम है "अत एव तू जाकर ब्राह्मण या अन्य किसा के पाससे मांग कर मेरे पोषण करने वाले चाण्डालका कर दे कि जिससे मेरे धर्मकी रक्षा हो।

तरामती अपने स्वामी के कथनानुसार धैर्य्य का त्याग नहीं करके काशी नगरी में चली। रास्ते में किसी मरे हुए बालको देखा उसने उसे दया से उठा लिया और देखने लगी इतने में पीछे से सिपाही लोग दौड़ते आये उन्हों ने उसे पकड़ लिया। वे कहने लगे कि यही स्त्री राजाके पुत्रों को मारने वाली है, इसलिये उसे पकड़ कर राजा के पास ले चलना चाहिये। इसप्रकार कह ताराको राजाके पास लाये राजा ने समझ लिया कि इसी स्त्री ने मेरे बालक को मारा है इसलिये इसे फांसी की आज्ञा दी उसे फांसी चढाने के लिये कालसेन चाण्डाल को हुक्म दिया उसने अपने नोकर हरिश्चन्द्र को आज्ञा दी। हरिश्चन्द्र जानता था कि यह मेरी स्त्री निरापराधिनी है, फिर भी अपने मालिक की आज्ञा को भङ्ग न कर ? तारामती को मारने के लिये तलवार खेची उस समय स्त्री ने कहा कि—"प्राणेश्वर! आपके हाथ की

डाली हुई तलवार मोतियों की माला के सदृश मालूम होगी इस लिये विचार त्याग कर वार कीजिये ?" हरिश्चन्द्र ने कहा कि "मैंने निष्कपट होकर अपने मालिक की आज्ञाका पालन किया है जिससे ईश्वर कल्याण करेगा। हम लोग शीघ्र ही स्वर्ग में जाकर मिलेंगे। यह तलवार वियोग को अधिक समय तक सहन न कर सकेगी" इस प्रकार कह-कर हरिश्चन्द्र जैसे तलवार का घात करने को जाता था, वैसे साक्षात् सर्व देवों ने विश्वामित्र सहित वहां आकर राजा का हाथ पकड़ लिया और कहा कि राजन्! तुमने प्राण जाने पर्यंत धर्म को नहीं छोड़ा जिससे तुम्हें धन्यवाद है! ऐसा कह कर उन्होंने उसे उसका राज्य और कई प्रकार के वर प्रदान किये। पुत्रको भी सांप के विषसे मुक्त किया रोहिताश्व स्वस्थ हो खड़ा हुआ; जिससे सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र और सती तारामती अत्यन्त प्रसन्न हुए देवताओं को नमन कर अपनी राजधानी की ओर गये और आन-न्द पूर्वक दिन व्यतीत करने लगे। अहा! इस दम्पति की सत्यता के लिये सतीशिरोमणि तारातमी आपको और आपके निर्मल पतिप्रेमको धन्य है! आपने अपने पतिके सत्यधर्म की रक्षा के लिये अपने प्रिय पुत्र समेत बिककर अपने पति के निमित ही खानेपीने की

और वस्त्र प्रभृति के अभाव की वेदनाको स्वीकार किया पुत्र वियोग को सहन किया अन्त में पति के हाथ से मरने को तैयार हुई, इतने २ कष्टों को सहन करने पर भी उसका पति प्रेम कम नहीं हुआ। यह साध्वी ब्राह्मण के घरपर बिककर दासी बनी थी फिर भी उसने अपने पातिव्रत का भंग नहीं होने दिया। वैसे ही पति के प्रति उसे मनसे भी अभाव नहीं आया। प्रेम व पातिव्रत में वह दृढ़ रही थी।

दमयन्ती।

ह सती विदर्भ देश के राजा भीमक की पुत्री और नैषध देश के राजा नल की धर्मपत्नी थी। इस दम्पति को एक पुत्र और पुत्री के माता पिता होने का सौभाग्य प्राप्त था। यह दम्पति अत्यन्त धर्मात्मा और नीतिज्ञ था परन्तु दैवकी गति बडी विचित्र है यह किसीको भी एक सी दशा में नहीं देख सकता इसी अटल नियम के अनुसार आज इस दम्पति पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। किसी कवि ने सत्य कहा है "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः"

अर्थात् नाश के समीप होने पर बुद्धि उल्टी होजाती है। देखिये धर्मात्मा राजा नलको जोकि अपने समय का परम धार्म्मिक, राजनैतिज्ञ और पराक्रमी राजा था उसकी बुद्धि जुआ (द्यूत) जैसे कुकर्म्म में प्रवृत्त होती है और सर्वस्व खोकर किस महान् आपत्ति में पडता है।

राजा नल पुष्कर के साथ दिन रात जुआ खेलनें लगे। दमयन्ती बहुत समझाती थी परन्तु राजा नल को एक बात भी समझ में नहीं आती थी। इस जुए का परिणाम यह हुआ कि एक दिन समस्त राज्य और संपत्ति राजा नल हार गए। जब कुछ पास न रहा तब दमयन्ती ने अपने प्रिय पुत्र और पुत्री कोअपने पिता भीमक के पास वार्ष्णेय सारथीके साथ विदर्भ देशको भेजदिया वहांसे वापिस होकर वार्ष्णेयने अयोध्या के राजा के यहां नौकरी करली और स्वयं पति के संग जङ्गल को चली गयी। इस समय राजा पुष्कर ने आज्ञा प्रकाशित की कि कोई नल और दमयन्ती का सत्कार न करे और यदि जो कोई सत्कार करेगा तब कठोर दण्डका भागी होगा। यह दम्पति तीन चार दिन तक नगर के बाहर भूखा प्यासा पड़ा रहा परन्तु किसी भी नगर वासी ने बात तक न पूछी। निदान दोनों वन को चले गए। कई दिन के भूखे प्यासे एक महान् वन में

पहुचे। वहां कुछ पक्षी चुग रहे थे। उनको पकडकर खाने के लिए राजा नल ने अपना वस्त्र गेरा, पक्षी उसको लेकर उडगए। कहावत हैं "चोट में ही चोट लगती है" भूखे नल ने पेट पूर्त्ति के लिये पक्षी पकडने चाहे परन्तु वह शरीरके वस्त्रको भी लेकर उड गए। अब नल नग्न(नंगे)ही रह गये क्योंकि इनके पास केवल एकही वस्त्रथा वह भी पक्षी लेकर उड़ गए इस समय तक केवल पेट की चिन्ता थी अब शरीर ढकने की चिन्ता ने राजा नल को व्याकुल कर दिया। राजा नल व्याकुल चित्त नग्न पत्थर की मूर्ति के समान निश्चेष्ट हो गए। जिसे देख कर दमयन्ती ने अपनी साडी का एक भाग अपने प्राणनाथ राजा नल को दिया दोनों एक वस्त्र को पहिन कर बैठ गए। विपत्ति पर विपत्त पड़ने से इस समय राजा नल का धैर्य्य जाता रहा और वह अत्यन्त दुःखित होकर दमयन्ती से इस प्रकार कहने लगेः—अयि! प्राणेश्वरी! मेरे ऊपर विपत्ति पड़ रही है, मेरा भाग्य चक्र उल्टा चल रहा है परमेश्वर जाने मुझे अभी किस २ आपत्ति का सामना करना पड़ेगा इस लिये प्राणाधिकप्रिये! मेरी इच्छा है कि तुम अपने पिता के घर जाकर अपनी सन्तान का पालन करती हुई आनन्द पूर्वक रहो।

नल की यह बात सुनकर दमयन्ती अत्यन्त चिन्ता से व्याकुल होकर कुछ देर के लिये निश्चेष्ट सी होगई और थोड़े समय पश्चात् रोती हुई इस प्रकार कहने लगी :—

हे ! स्वामिन् ! आप के पवित्र दर्शनों के बिना पिता का राज्यवैभव मेरे लिये महा दुःखदाई होगा आपके पूनित चरणों की सेवा से मुझे जो सुख मिलता है वह संसार का राज्य मिलने पर भी दुष्प्राप्य है। स्त्री का धर्म सुख दुःख में सदैव पति देव की सेवा करना है। आपने राज्य वैभव को छोड़ दिया आप कई दिन के भूखे हैं, हाय २ आज मेरे दुर्भाग्य से आपके पास वस्त्र तक नहीं रहा। क्या नाथ ! आप मुझ को इतना नीच समझते हैं कि ऐसी विकट आपत्ति में मैं आपको छोड़ सकती हूं। ऐ ? प्राणेश्वर ! यह किस प्रकार संभव है कि मैं आपको इस भयंकर वन में छोड़ कर पिता के घर जाऊं मैं आप से वारम्वार प्रार्थना करती हूं कि आप अपने मुखारविन्द से मुझे पिता के घर भेजने की अत्यन्त दुःखदाई वार्ता कह कर मेरे दुःखित हृदय को न जलाओ क्यों कि मुझे जो कष्ट सन्तान और राज्य त्याग करने से नहीं हुआ जो कष्ट आपके इन वचनों से हुआ। इत्यादि कह कर दमयन्ती पैरों में पड़ कर रोने लगी तब नलने अत्यन्त धैर्य दिलाते

हुए कहा :—ऐ ! सती ! हे । प्राणेश्वरी ! जो कुछ तुम कहती हो मैं वैसा ही करूंगा चाहे मेरे ऊपर अब कितनी ही आपत्ति आए परन्तु मैं तुम को प्राणों से अधिक प्यार करूंगा इत्यादि कहने पर दमयन्ती रुदन बन्द करके चुप होगई ।

कई दिन की भूक और रास्ते की थकावट से दमयन्ती को निद्रा आगई किन्तु अत्यन्त चिन्ता और दमयन्ती को घास पर सोती देख हार्दिक दुःख के कारण राजा नल को निद्रा न आई और वह इस प्रकार विचारने लगे हाय शोक मुझ को सुख किस प्रकार मिल सकता है जब कि मेरे कारण यह कोमलाङ्गी जो कि नाना प्रकार के उत्तमोत्तम भोजन करती थी और मखमली गद्दों पर जिसको निद्रा नहीं आती थी वही रानी आज घास पर किस प्रकार गाढ़ निद्रा में मग्न है । यदि यह मेरे साथ रहेगी तो इसको दुःख ही दुःख होगा सुख की किसी प्रकार आशा नहीं । इसको दुःखी देख कर मुझे अधिक दुःख होगा इस लिये उचित यही है कि जिस प्रकार हो इसको इसके पिता के घर पहुँचाना चाहिये । मैं चाहे इसको कितनाही समझाऊंगा किंतु यह मेरे कहने से कदापि मुझे छोड़ कर अपने पिता के घर नहीं जायगी । इसलिये यदि मैं इसको

सोती हुई छोड़ कर चला जाऊंगा तब यह जसे तैसे अ-
पने पिता के घर चली जायगी और वहां सुख से रहेगी
जिससे इसका दुःख दूर हो जायगा और मेरा भी आधा
दुःख कम होजायगा। इत्यादि विचार कर तलवार से
दमयन्ती की साड़ी काट और स्वयं आधी साडी लेकर
सोती हुई दमयन्ती को छोड़कर चल दिया।

चलते २ नाना प्रकार के संकल्प विकल्प मन में
उत्पन्न हुए परन्तु अन्त में यह विचार कर कि दमयन्ती
मुझ में पूर्ण प्रीति रखती है और महासती तथा तेज
स्विनी है इस लिए उसका कोई कुछ नहीं कर सकता इत्या
दि वातों से चित्त को सन्तोष दे राजा नल न रुके और
वहां से चले ही गए चलते हुए परमात्मा से प्रार्थना की
कि—हे देवाधिदेव जगत्पतेः! प्रभोः! मैं विवश अपनी
प्राण प्यारी को इस महान् वन में आपकी शरण छोड़
कर जाता हूं आप इसकी रक्षा करें। ऐ सव देवताओं
आप भी दमयंती की इस समय रक्षा करना। इस प्रकार
प्रार्थना करके आँसु पोंछता हुआ नल वहुत दूर निकल
गया।

कुछ देर वाद दमयंती की आंख खुली तो क्या देख
ती है की उसके प्राणाधार राजा नल वहां नहीं हैं यह

देखते ही वह घबराई और कुछ देर हा ! नाथ ! हा ? देव ! मुझे इस भयंकर वन में छोड़कर कहां चले गए। इत्यादि कह कर विलाप करती हुई मूर्छित होगई। जब होश हुआ तब इस प्रकार पति देव का स्मरण करके कहने लगीं। हे हृदयेश्वर ! मैं इस विकट वनमें अत्यन्त भय भीत हूं क्या आप मेरी परीक्षा लेने के लिए वृक्षों में छुपे हुए हैं। यह तो में विश्वास नहीं कर सकती कि आप जैसे अद्वितीय दयालु धर्मात्मा मुझ अबला को इस बन में अकेली छोड़ कर चले गए होंगे मुझे पूर्ण निश्चय है कहीं पर छिपे परीक्षा ले रहे हैं। हे ! नाथ ! अब दुःख नहीं सहा जाता अब आप शीघ्र दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये। इत्यादि अनेक प्रकार की बातें कहती रही किन्तु वहां उसका अरण्य रुदन सुनने वाला कौन था। जब सायंकाल तक पति के दर्शन न हुए तब दमयन्ती की दशा ठीक पागलों वाली होगई वह हाय २ करती हुई इधर उधर राजा नल की तलाश में फिरने लगी। झाड़ियों के कांटों से शरीर में रक्त बहने लगा पैर कांटों से छिद गए। किन्तु वह वृक्ष और झाड़ियों से यह पूछती हुई कि क्या तुमने मेरे प्राणप्रिय पतिदेव को जाते देखा है ज़रा बतादो वह किस मार्ग से गये हैं इत्यादि। फिरते फिरते पतिदेव

(राजा नल) तो नहीं मिले प्रत्युत: एक नवीन आपत्ति और आपड़ी। जब वियोग में इस प्रकार विलाप करती हुई दमयन्ती वन में टक्कर मारती हुई फिर रही थी तब उसे अपने शरीर का कुछ ध्यान न था फिरते २ एक अ-जगर पर उसका पैर जा पड़ा। यह अजगर बहुत बड़ा था और मुख फैलाए पड़ा था। दमयन्ती का पैर उसने जंघा तक अपने मुख में भर लिया किन्तु इस समय भी दमयन्ती को अपने शरीर की कुछ भी परवाह न थी। वह हा! नाथ! कहां गये, मैंने ऐसा क्या अपराध किया था जो आप मुझे इस विकट दशा में अकेली छोड़ कर चले गये आदि कह कर क्रन्दन रुदन कर रही थी। जिस को सुन कर एक मनुष्य जोकि वहां पर लकड़ी काट रहा था आया उसने अजगर के मुख में दमयन्ती को देख कर तत्क्षण ही अजगर को तीक्ष्ण कुल्हाड़ी से मार कर दमयन्ती का वृत्तान्त पूछ कर उसको बहुत समझाया जिस से उसको कुछ सन्तोष हुआ। दमयन्ती आधी साड़ी पहिन रही थी जिस से उस मनुष्य की दृष्टि दमयन्ती के सुन्दर शरीर पर पड़ी और उसके चित्त में मलीनता आई उसने कुचेष्टा करनीं चाही परन्तु सती दमयन्तीने उसको श्राप दिया:—"हे! परमात्मन्! यदि मैं पूर्ण पतिव्रता हूं तो

इस दुष्ट के प्राण हर लीजिये।" सती का वाक्य कब वृथा जा सकता था तत्क्षण ही वह भयभीत हो ज़मीन पर गिर गया और उसका प्राण पखेरू उड़ गया।

दमयन्ती वहां से चलकर पर्वत, नदी, आदि भयङ्कर मार्गों को उल्लंघन करती हुई वन में एक शिला पर बैठ कर फूट फूट कर रोने लगी जिस से समस्त वन शोकाकुल दिखाई देने लगा। वहां से चलकर ऋषियों के आश्रम में गई। ऋषियों ने उसका बहुत सत्कार किया और कहा तू क्यों घबराती है तू पति को प्राप्त होगी और पूर्ववत् फिर ऐश्वर्य्य प्राप्त होगा। वहां से चलकर दमयन्ती फिर वन वन पति की खोज करती हुई फिरने लगी। कुछ मनुष्य चेदी देश को जा रहे थे मार्ग में उनके साथ चेदी देश को चलदी। साथियों ने एक बड़े तालाब पर विश्राम किया। अकस्मात् कुछ हाथी उस तालाब पर पानी पीने के लिये आये जिससे डर कर समस्त यात्री वहां से इधर उधर भागे, और सबने मिल कर विचार किया यह कोई डायन अथवा दुर्भाग्यवती है जिसके साथ रहने से इस आपत्ति का सामना करना पड़ा। इस लिये खोज करके इसको मारदेना चाहिये। भयभीत दमयन्ती इनसे डर कर वन में छिप गई और यात्रियों के हाथ न आई

पीछे टक्कर खाती पति के वियोग में रोती हुई यह चेदी प्रदेश के राजा सुबाहू के महल के सामने पहुंची। पति वियोग में यह पहिले से ही रुदन कर रही थी इस समय यह शोक और चिन्ता की मूर्ति बनी हुई थी। सुबाहू की रानी को इसे महल पर से देख कर दया आई और उसी समय दमयन्तीको बुलाकर उसकी दशा सुनी। उसकी शोक मयी दशा को सुनकर रानी को बहुत दया आई और उसने कहा तुम यहां हर आनन्द पूर्वक रहो आशा है यहां रहने से तुम्हारे पति भी मिल जांय। इसके उत्तर में दमयन्ती ने कहा:—यदि आप मुझे अपने पास रखना चाहती हैं तो मैं इन नियमों के अनुसार रह सकती हैं।

१ मैं किसी का जूठा न खाऊँगी २ कोई पुरुष मेरे प्रति पाप की दृष्टि न करे ३ किसी पुरुष से न बोलूंगी केवल जो मेरे पति की खोज करेगा उसी से बोलूंगी,

रानी ने उक्त बातों को सहर्ष स्वीकार करलिया और दमयंती को अपनी पुत्री सुनन्दा के पास रक्खा।

राजा नल दमयंती को सोती छोड़ कर अयोध्या पहुंचा और वहां राजा ऋतुपर्ण के यहां प्रधान सारथी के पद पर नौकरी की। वार्ष्णेय तथा अन्य सारथी उस के नीचे रहे। हा! दैव की गति बड़ी विचित्र है इसकी

गति कोई नहीं जानता जो राजा नल कल वार्ष्णेय का स्वामी था आज उसके साथ स्वयं सेवा कर्म कर रहा है। जो कल राजा नल के नाम से पुकारा जाता था वहा आज बाहूक नामक सारथी (कोचवान) बना हुआ है।

जब दमयंति के दोनों बालक राजा भीमक के पास गए और भीमक को यह मालूम हुआ कि राजा नल जुए में राज्य को हार कर दमयन्ती सहित वन को चले गए हैं। तभी से राजा नल और दमयंती की खोज में अनेक मनुष्य देश देशांतर भेजे। इस में से सुदेव नामक एक ब्राह्मण गुप्त रीति से राजा सुबाहु के महल में पहुंचा वहां पर सुनन्दा के पास बैठी दमयंती को देख कर अत्यन्त दुःखित हुआ कि हा ! आज नैषध देश की रानी यहां इस वियोग की दशा में दासी बनी बैठी है। राजा भीमक के समस्त बृतांत और अपने आने का कारण दनयन्ती से कहा। जिसको सुनकर दमयन्ती की आंखों में आंसु आगए। सुनन्दा ने तुरन्त ही ब्राम्हण के आनेका समाचार अपनी माता से जाकर कहा राजा सुबाहू कीपत्नी वहां आई और सुदेव से पूछा यह किसकी पुत्री और किसकी धर्मपत्नी है। ब्राह्मण ने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया जिसको सुनकर सुनन्दा रुदन करने लगी और उसकी माता

भी दमयन्ती को छाती से लगाकर रोने लगी। कुछ समय पश्चात् रानी शान्त होकर बोली:—प्यारी पुत्री दमयन्ती तू मेरी बहिन की पुत्री है। मैं और तेरी माता दोनों दशार्ण देश के राजा सुदामा की पुत्री हैं। शोक! तूने अबतक अपना पूरा हाल मुझ से नहीं कहा वरन् तेरे माता पिता इतने दुखी क्यों होते और तू इस समय तक कष्ट क्यों उठाती।। अब तू आनन्द पूर्वक यहां रह।

इसके उत्तर में दमयन्ती ने कहा:—मौसी जी अब आप मुझे अपने पिता के घर जाने की आज्ञा दें क्योंकि बालकों के देखने को चित्त अत्यन्त व्याकुल है और वह भी मेरे बिना दुखी होंगे। रानी ने कुछ सेना साथ कर के दमयन्ती को बड़े सन्मान के साथ विदा किया। दमयन्ती ने पिता के घर आने पर माता से कहा कि "यदि आप मेरे जीवन की इच्छा रखते हैं तो मेरे पति की तलाश कराइये"। . . . .

भीमक राजा ने अनेक मनुष्य नल की तलाश में भेजे। दमयन्ती ने तलाश करने वाले आदमियों से कहा कि जहां पर तुम जाओ वहां पर यह कहना "वन में अकेली सोती हुई स्त्री को छोड़ कर जाना तुम्हें उचित नहीं था क्योंकि पुरुष का धर्म स्त्री की रक्षा और पालन पोषण

करना है" । खोज करते २ पर्णाद नामक ब्राह्मण अयोध्या में पहुंचा और उसने सभा में दमयन्ती के कहे पूर्वोक्त वाक्य कहे । जब पर्णाद अयोध्या से विदा होने लगा तब बाहूक सारथी ने ब्राह्मण को एकान्त में लेजाकर आह भरकर पूछा आप किसकी तलाश में हैं और वह कौन है जिस का पति उसको वन में छोड़ कर चला गया । ब्राह्मण ने समस्त वृत्तान्त सुनाया तब बाहूक इस प्रकार कहने लगा "जो स्त्रियां आपत्ति के समय में भी अपने शील की रक्षा करती हैं उनको स्वर्ग मिलता है । यद्यपि आपकी राजकुमारी का पति उसे वन में अकेली छोड़ आया तथापि राजकुमारी को उस पर क्रोध नहीं करना चाहिये क्योंकि न जाने किस दुःख से और किस कारण वह उसको छोड़ आया यदि वह ऐसा न करता तो राजकुमारी भी उसके साथ कहां २ कष्ट उठाती फिरती" । पर्णाद को यह सुनकर बाहूक के ऊपर सन्देह हुआ कि सम्भव है यही नल हो अथवा नल का हाल इसको मालूम हो । उसने यह बात आकर दमयन्ती से कही । राजा भीमक ने घोषणा की कि अमुक तिथि को दमयन्ती का द्वितीय बार स्वयंवर है । तिथि अत्यन्त समीप होने के कारण सब राजाओं का आना कठिन था । दूर से केवल

वही आसकता था जिस के पास नल जैसा सुविज्ञ सारथी हो। स्वयंवर की खबर सुनकर राजा ऋतुपर्ण ने बाहूक सारथी को बुलाकर कहा दमयन्ती का स्वयंवर अत्यन्त निकट है यदि तुम नियत समय तक विदर्भ देश के कुन्दनपुर नगर में पहुचा सको तो बड़ा ही उत्तम हो सिवाय तुम्हारे हमें और किसी सारथी से यह आशा नहीं है कि कोई हमको नियत समय पर पहुंचा सकेगा इस लिये कोई ऐसा उपाय करो जिससे नियत समय तक कुन्दनपुर पहुंचे।

बाहूक सारथी ने कहाः—महाराज ! आप चिन्ता न करके तैयार होजाईये ईश्वर की इच्छा होगी तो आप अवश्य नियत समय पर कुन्दनपुर पहुंचोगे। बाहूक राजा से इस प्रकार कह कर यह विचारता हुआ की दमयन्ती का क्या सत्य ही द्वितीय स्वयंवर होगा हाय हाय जिस सतीने मुझे छोड़कर इन्द्र आदि देवताओंको नहीं वरावह आज दुःखी होकर द्वितीय स्वयंवर को तैयार हो गई। अच्छा जो ईश्वर की इच्छा है वही होगा। यदि मेरे भाग्य में दमयन्ती का सुख होता तो मेरी यह दशा ही क्यों होती। अब मुझे अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करना चाहिये गई बात का शोक करना सर्वथा मूर्खता है इत्यादि मनमें

कहता हुआ शीघ्रगामी घोड़ों को रथ में जोड़ कर ले आया। राजा ऋतुपर्ण रथ में बैठ कर नियत समय पर कुन्दनपुर पहूंचे।

रथ की आवाज़ को सुनकर दमयन्ती पहिचान गई कि अवश्य इस रथ को चलाने वाले मेरे स्वामी हैं अन्य कोई इस प्रकार चतुरता से घोड़ों को नहीं चला सकता क्योंकि उनके समान कोई अश्वविद्या में निपुण नहीं हैं। इत्यादि विचार कर दमयन्ती ने केशी नाम्नी दासी से कहा:— "ऐ! केशी मुझे ऋतुपर्ण के रथ की आवाज़ से संशय उत्पन्न होता है कि इसके सारथी अवश्य मेरे स्वामी हैं क्योंकि और कोई अश्वविद्या में इतना निपुण नहीं है जो ऐसी उत्तमता से रथको चलावे तुम गुप्त-रीति से इसका निश्चय करो कि इस रथ का सारथी कौन है।

केशी ने दमयन्ती की आज्ञानुसार तुरन्त वाहूक सारथी के पास जाकर पूछा:—आपका शुभ नाम क्या है और किस पुण्यभूमि में आपका जन्म हुआ है।

सारथी०—मैं महाराज ऋतुपर्ण का सारथी हूं और मेरा नाम वाहूक तथा इस समय अयोध्या ही रहता हूं।

केशी—आपके साथ यह कौन है।

वाहूक—इनका नाम वार्ष्णेय है। पहिले यह राजा

नल के यहां सारथी थे किन्तु जब नल जुए (द्यूत) में राज्य हार कर वन को चले गए तब ये इनके बालकों को यहां छोड कर राजा ऋतुपर्ण के यहां नौकर होगए थे ।

यह सुनकर दासी ने वार्ष्णेय से पूछा:—वार्ष्णेय राजा नल कहां पर हैं ।

इसका उत्तर वार्ष्णेय देने भी न पाए थे कि वाहूक ने इस प्रकार उत्तर दिया:—राजा नल का कुछ पता नहीं कि कहां पर हैं क्योंकि वह गुप्त वेश में फिरते हैं ।

केशी वडी चतुर स्त्री थी वाहूक के जन्मभूमि आदि न बताने और वाहूक की मुखाकृति से उसको यह संशय हुआ कि यह अवश्य ही राजा नल है । क्योंकि विद्वानों का कथन है मुख मानसिकभावों का दर्पण है हर्ष और शोक मुखको देख-कर तुरन्त मालूम होजाते हैं वाहूक का चित्त बात कहते २ भर आता था इससे और भी स्पष्ट होता था कि यह अवश्य नल है । केशी ने समस्त वृत्तांत दमयन्ती से आकर कहा । दमयन्ती ने इस वृत्तांत से जान लिया बहुत संभव है वह स्वामी हीं हों परन्तु पूर्ण निश्चय बिना किये किसी से कुछ न कहकर इसप्रकार परीक्षा करने लगी । दासी को फिर कुछ शारीरिक चिन्ह देखने और वाहूक की पाकशाला से कुछ भोजन लेनेके लिये भेजा । दासी ने भो-

जन लाकर दिया और समस्त शारीरिक चिन्ह वताए। वह भोजन खाकर और शारीरिक चिन्ह सुनकर दमयन्ती को निश्चय होगया अवश्य बाहुक मेरे पति हैं इस लिये पतिदेव को सेवावृत्ति में देख कर रोने लगी और दोनों वालकों को वाहुक के पास दासी के साथ भेजा। वालको देखकर वाहूक के नेत्रों में आंसू भर आए। अव वाहूक रुदन को न रोक सका, सत्य है अति सव वातों की वुरी होती है नल के ऊपर दुःखों का पहाड़ टूट पड़ा है एक विपद दूर होने नहीं पाती दूसरी आजाती है। इससे ज्यादा क्या आपत्ति होसकती है जो नल कल राजा था हजारों घोड़ों और सारथियों का स्वामी था वह आज स्वयं सारथी बना हुआ है। भूकी प्यासी अद्वितीय सुन्दरी साध्वी प्राणप्यारी पत्नी को आधी साड़ी पहिने वन में छोड़ आया इतना ही नहीं वल्कि जिस दमयन्ती ने इन्द्रादि देवता और समस्त राजाओं को छोड़ कर नल को स्वयंवर में जयमाल पहिनाई थी उसी परम सुन्दरी के स्वयम्वर में खुद सेवक वन कर राजा को अपनी चतुरता से नियत समय पर स्वयम्वर के लिये लाया। और जिस भीमक के यहां पहिले जामाता की दशा में भीमक का पूज्य था आज उसी भीमक के यहां एक साधारण सेवक की हैसियत से आया

हुआ है अब दुःखों की पराकाष्ठा होगई अब वह धैर्य्य को न रख सका और शनैः शनैः रोने लगा। किन्तु अपने को छिपाने के लिये दासी से कहा तुम इन बालकों को यहां से ले जाओ क्योंकि इनको देखकर मुझे अपने बालक याद आते हैं और तुम्हारा बार बार यहां आना अच्छा नहीं क्योंकि न जानें मनुष्य क्या समझें और वृथा हमें दोष लगे तथा हमारे स्वामी सुनकर रुष्ट हों।

दासी ने आकर समस्त वृत्तान्त दमयन्ती से कहा जिस से दमयन्ती को पूर्ण निश्चय हो गया कि यही मेरे पतिदेव हैं। माता पिता से आज्ञा लेकर दमयन्ती ने महल में बाहूक को बुलाया दोनों की आंखों में एक दूसरे को देखकर प्रेमाश्रु भर आये। दमयन्ती ने बाहूक से कहाः—"परमधार्मिक राजा नल वन में सोती हुई कई दिन की भूखी प्यासी पत्नी को अकेली छोड़ कर कहीं चले गये। अबला स्त्री को 'जिसने कि स्वयंवर में समस्त राजाओं को छोड़कर नलको जयमाल पहिनाई थी और जिन्होंने अग्नि और देवताओं को साक्षी करके वेद मन्त्रों द्वारा प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजन्म तेरी रक्षा करूंगा मैं तुझको अपनी अर्धाङ्गिनी बनाता हूं' आदि" उस निर्दोष को अकेली छोड़ने वाले राजानल को क्या आपने कहीं देखा है।

यह सुनकर रोते हुये बाहूक (राजानल) ने कहाः- वह नराधम मैं ही हूं जिसने तुमको वन में अकेली छोड़ा था। और तुम्हारी शुभसम्मति न मान कर जुवा खेलने वाला और राज्य को भ्रष्ट करनेवाला मैं ही दुष्ट नल हूं।

दमयन्ती यह सुन नल के पैरों में गिरकर रोती हुई कहने लगीः-हे! नाथ! आप ऐसा क्यों कहते हैं यह सब मेरे दुर्भाग्य का फल है मुझे केवल कष्ट यह है कि मेरे कारण आपको बहुत दुःख हुआ। कृपा करके मुझ से जो अपराध हुआ हो क्षमा कीजिये और मुझे अपनी शरण में लीजिये। मैं पूर्ववत् आपकी दासी हूं और मेरी तरफ से कोई संशय न करिये मैं मन से भी कभी कुकर्म्म में वृत्ति नहीं हुई। परमेश्वर मेरी सत्यता का साक्षी है।

दोनों इस प्रकार बहुत देर वार्तालाप करते रहे। दमयन्ती के माता पिता को नल का आगमन सुनकर अत्यन्त हर्ष हुआ। तुरन्त स्नान करा कर नवीन राजसी वस्त्र पहिनाए गए जिससे नल पहिले के समान तेजस्वी और रूपवान् दिखाई देने लगा। नल दमयन्ती अपनी सन्तान सहित नैषध देश को गए और पुष्कर से राज्य लेकर राज्य करने लगे। धन्य २ सती दमयन्ती तुमने महान् कष्ट समय में पति को न छोड़ा अपने हृदय मन्दिर

में सदैव उनकी पूजा करती रहीं। ईश्वर करे तुम्हारी कीर्ति हमारी बहिनों के हृदय को पवित्र करे।

दुर्गावती

जिस समय मुसल्मानों की विजय पताका भारतवर्ष पर फहरा रही थी, और अकबर भारतवर्ष का राज्य कर रहा था उस समय नर्मदा के किनारे गढ़ामंडलामें चन्दन नामक राजा राज्य करता था जो कि जबलपुर के पास है। उसकी पत्नी दुर्गावती परम सुन्दरी, राजनीतिपरायणा और रणविद्या में कुशल थी। दुर्गावती आनन्द पूर्वक पति सहित संसार यात्रा कर रही थी किन्तु दैव से इनका सुख न देखा गया। अकस्मात् राजा चन्दन का देहान्त होगया। उस समय दुर्गावती के पुत्र वीरवल्लभ की आयु केवल १८ वर्ष कीथी। वह गद्दी पर बैठाया गया। दुर्गावती की सहायता से वीरवल्लभ बड़ी चतुरता से राज्य करने लगा इस समय प्रजा अत्यन्त सुखी थी और रानी दुर्गावती को माता के समान पालन करने वाली देवी समझती थी। इस समय भारतवर्ष के

लगभग सब राजा अकबर के आधीन हो चुके थे। केवल दुर्गावती और हिन्दूपति महाराणा प्रताप सिंह ऐसे थे जिन्होंने मुसल्मानों की आधीनता स्वीकार नहीं की थी। अकबर बहुत चाहता था कि यह मेरे आधीन हो जांय किंतु जीते जी दोनोंमें से एक भी अकबर के आधीन न हुआ।

इसलिये १५६४ई० में अकबर के सेनापति आसफ खांने छ हजार सवार और बारह हजार पैदल सेना लेकर गढ़ामंडलापुर पर चढ़ाई की। इस चढ़ाई का हाल सुनकर समस्त नगरवासियों में कोलाहल मच गया और सब घबरा गए। परन्तु रानी दुर्गावती के हृदय में कुछ भी भय नहीं हुआ। वह आठ हज़ार सवार डेढ हजार हाथी और बहुत सी पैदल सेना लेकर शत्रु के सम्मुख रणक्षेत्र में आ पहुंची। उसने अपने शिर पर राजमुकट धारण किया था, शरीर पर बख्तर धारण किया था। एक हाथ में तलवार और दूसरे में धनुष लेकर हाथी पर सवार थी उसका नव युवक कुमार वीरवल्लभ भी शूरवीरों के समान वस्त्र और हथियार धारण कर रण क्षेत्र में आया था। घोर संग्राम होना आरम्भ हो गया। इस समय रानी दुर्गावती की मूर्ति साक्षात् देवी चंडिका के समान हो रही थी। वह गंभीर स्वरसे अपनी सेना को उत्साहित करती हुई

शत्रु पर आक्रमण कर रही थी। वीरबाला दुर्गावती के इस पराक्रम को देखकर मुसलमानों का धैर्य जाता रहा। रानी दुर्गावती ने दो बार इनको रणक्षेत्र में परास्त कर दिया। इस युद्ध में शत्रुओं के छै सौ घोड़े मारे गये इस कारण शत्रु दल भय भीत होगये। आसफखां ने कई युद्ध में विजय पाकर अपने नाम को बढ़ायो था किन्तु यहां हारने से वह अत्यंत लज्जित हुआ। वह रानी दुर्गावती के तेज के सामने थर २ कांपने लगा और भागने के लिये उद्यत हो गया। दुर्गावती ने अति वीरता से शत्रु दलपर आक्रमण करके उसे यमलोक भेजना आरंभ किया। अब संध्या समय जानकर उसने लड़ना अनुचित जानकर विश्राम किया। उसनें अपने योद्धाओं से कहा कि विश्राम के पश्चात् प्रातःकाल ही शत्रु दल पर फिर आक्रमण करना चाहिये। किन्तु दुष्ट आसफखांने जब वे लोग विश्राम कर रहे थे तब अपनी सेनाको लेकर उन पर आक्रमण किया। जिसके कारण दुर्गावती को अपनी सेना सहित एक पहाड़ी के संकीर्ण स्थान में छिपना पड़ा। किन्तु यवन दल वहां पहुंच कर संग्राम करने लगा। इस समय वीरवल्लभ अपने अतुल पराक्रमको दिखानेलगा। शत्रुओंपर इस बालकका ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनकी हिम्मत

टूटगई किन्तु वीरवल्लभ बहुत घायल होगया था। दुर्गावती अपने एकमात्र पुत्रके इस संकटको नहीं देखसकी वह स्वयं रण-क्षेत्र में आकर अपना बल और पराक्रम दिखाने लगी। शत्रुदल को अच्छा प्रकार दमन कर इस युद्ध में वह भी सैकड़ों तीरों के लगने से घायल हो गई थी। तोभी वह न घबराई और बराबर उत्साह से शत्रुओं पर आक्रमण करती रही। उसने शरीर में जीव रहते तक शत्रुको पीठ न दिखाने का निश्चय कर लिया था। उसके घावों से रुधिर वह रहा था इसलिए उसे यह भी निश्चय होगया था कि मैं जीवित नहीं रह सकूंगी इससे उसने अपनी तीक्ष्ण कटार पेट में मारली। जिससे उसका पवित्र शरीर शत्रु के हाथ में जीवित न जासके। धन्य है! ऐसी वीरांगना को जिसने देश रक्षा और अपने कर्तव्य पालन के लिये अपने शरीर की कुछ भी परवाह नहीं की।

दुःशला।

इस देवी को महाराज धृतराष्ट्र की पुत्री होने का सौभाग्य प्राप्त था और इसका विवाह जयद्रथ के साथ हुवा था। यह दूरदर्शी और अत्यन्त बुद्धिमती थी। इसने अपने भाईयों को अधर्म पर

देखकर इस प्रकार समझाया था।

"तुम राज्य सुख के लिये कितना अधर्म करते हो ? द्रौपदी पतिव्रता सत्य और प्रेम की मूर्त्ति है उसकी लज्जा का नाशकर उसे दुःख देने से दण्ड भोगना पड़ेगा। सच्चे शूरवीरों में उदारता और क्षमाका गुण अवश्य होना चाहिये उन्हीं गुणों को मैं तुम्हारे पास नहीं देखती। नीति और सद्गुण का सदैव अनुसरण करना चाहिये। सद्गुण व नीति की रक्षा करनेवालों का नाम नष्ट नहीं होता। किसी भी मनुष्यके किए हुए सत्कर्मों के द्वारा जो उसे कीर्त्ति प्राप्त होती है, वह नष्ट नहीं होती, यद्यपि वह उसका क्षणभंगुर शरीर नष्ट होजाता है, किन्तु यशोरूप शरीर कभी भी नष्ट नहीं होता। मनुष्य अपने जीवन को धर्मपूर्वक चलाता है, वह अपनी संतानों के लिए सुख करजाता है। मनुष्यको सदैव उत्तम विचार रखना चाहिये। बुरी संगति से मनुष्य स्वयं नष्ट होकर अपने आत्मियों का भी नाश करदेते हैं। जिस कुलमें लड़कियां व स्त्रियां दुःखसे रहती हैं उस कुल का नाश होने में कोई सन्देह नहीं। आप कुटुम्ब में क्लेश कर द्रौपदी के समान साध्वी स्त्री को दुःख देना चाहते हो, यही इस कुल के नाश का कारण होगा। यदि आप अपना भला चाहते हैं, तो अधर्म को छोड़कर

धर्म का पालन कीजिये। सदाचार ही मनुष्य जीवन को सार्थक बनाता है" इस प्रकार, उसने अनेक उपदेशजनक वचन कहे; किन्तु "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" इस कथनानुसार उसका उपदेश उन्होंने नहीं सुना।

जब जयद्रथ ने द्रौपदी को वन में हरा और पाण्डवों के आजाने से उसे छोड कर भाग आया उस समय भी इस ने कहा था कि "हे स्वामी! द्रौपदी के समान सती का हरण करने की जो आपको कुबुद्धि सूझी है इसको मैं अपशकुन समझती हूं। आपके इस कृत्य का दण्ड भीम दिये विना न रहेगा। पर स्त्री की अभिलाषा रखनेवाला कौन सुखी हुआ है, इन्द्रादि को भी इस कृत्य से दण्ड मिला। पर स्त्री के समागम से शरीरका रूप जातारहता है, प्रतिष्ठा भङ्ग होती है और उत्तम कर्म्मों का नाश होता है, और ऐसे कर्म्म करने वालों से ईश्वर रुष्ट होजाते हैं उसकी बुद्धि भ्रष्ट होजाती है, इसके सिवाय चित्त में व्यग्रता रहती है; और सब प्रकार से उसका अनिष्ट होता है। इस लिए आप ऐसा अधर्माचरण कभी न करें यही मेरी प्रार्थना है। फिर आप युद्ध में भी किसी प्रकार का अधर्माचरण न करें। युद्धमें मरण का भय कभी नहीं करना चाहिये, इस संसार में

कोई अमर नहीं है; किन्तु जिसने उत्तम कार्य किये हैं वही अमर है। क्षत्रिय पुत्रको रणभूमिमें से पलायन होने की अपेक्षा शरीर का त्याग करना ही श्रेष्ठ है। मृत्युसे मरने की अपेक्षा युद्धमें मरना अच्छा है, उससे कीर्ति बढ़ती है। स्वामिन्! यह आप निश्चय समझिये कि स्वर्ग में भी मैं आपके साथ रहूंगी।

देवयानी

देवयानी शुक्राचार्य्य की कन्या थी। इसका शर्मिष्ठा नामक राजकन्या से अत्यन्त प्रेम था। एक दिन यह शर्मिष्ठा तथा अन्य सखियों के साथ नदी पर स्नान करने के लिए गई। स्नान करके हास्य में अथवा भूल से इसने शर्मिष्ठा के कपड़े पहिन लिए यह देखकर शर्मिष्ठा को अत्यन्त क्रोध आया और देवयानी से कहने लगी:—तैने ऋषि पुत्री हो मेरे वस्त्र पहिन कर मेरा अपमान किया है इसलिए मैं अपने पिता से कहकर तुझे और तेरे पिता को नगर से निकलवा दूंगी इत्यादि अनेक कटु बचन कहे। और देवयानी को कुए में गेरदिया शुक्राचार्य ने कुए में गिरी सुन कर देवयानी को निकालने

के लिए अत्यन्त प्रयत्न किया परन्तु वह देवयानीको कुए से न निकाल सके। तब शुक्राचार्य ने राजा से कहा तेरी पुत्री ने निर्दोष देवयानी को अभिमान वश कुंए में गेर दिया है इसलिये मैं श्राप देकर तेरा और तेरे राज्य का नाश कर दूंगा। राजा शुक्राचार्य्य के यह क्रोधमय ब्रह्मवाक्य सुनकर थर २ कांपने लगा और दीनता से इस प्रकार प्रार्थना की:—हे! देव! क्षमा कीजिये बालक शर्मिष्ठा ने जो अज्ञान या अभिमान वश किया उसके लिये आप मुझे यथेष्ट दण्ड देलीजिये।

राजा के इस प्रकार गिडगिडा कर प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य्य को दया आगई और उन्होंने कहा जा तेरा कुछ दोष नहीं है इस लिए तुझे क्षमा करता हूं किन्तु तेरी पुत्री ने अभिमान वश ऐसा किया है इसलिए उसको यह श्राप देता हूं कि वह पति समागम से रहित हो और आजन्म उसकी सेवा करती हुई दासी के समान रहे।

अकस्मात् शिकार खेलता हुआ राजा ययाति प्यासा होने के कारण उक्त कुवे के ऊपर आया। उसने एक सुन्दर स्वरूपवती कन्या को कुवे में पड़ी हुई देखा, कन्या की दृष्टि भी उस राजा के ऊपर पड़ी। कन्या ने कहा कि राजन्! मुझे आप कुए से निकाल लिये। राजा ने अपना दाहिना हाथ

लंबाकर देवयानी के दाहिने हाथ को पकड़कर उसको कुवेंसे बाहर निकाला। देवयानी ने बाहर निकलकर उसका उपकार मानकर कहा कि राजन्! आपने मुझे जीव दान दिया है और मैंने अभी तक किसी पुरुष का दाहिना हाथ नहीं पकड़ा। आज आपने ही मेरे दाहिने हाथ को अपने दाहिने हाथ से ग्रहण किया है और मृत्यु से मेरी रक्षा की है। इस लिये अब मेरे लिये आप ही प्राणाधार पति हैं। अब मेरे लिये दूसरे पुरुष भ्राता के समान हैं। यदि आप मुझे नहीं स्वीकारेंगे तो आपको हत्या होगी। मैं अब दूसरा पति करके अपने व्रत को नष्ट नहीं कर सकी। राजा ने कहा कि कुमारी मैं इस प्रकार तुझे ग्रहण नहीं कर सकता। यदि तेरा पिता शुक्राचार्य विधि सहित तेरा दान करे तो मुझे अस्वीकार न होगा। देवयानी ने राजा की इस बात को स्वीकार किया घर पर जाकर उसने अपने पिता से सब वृतान्त कहा शुक्राचार्य ने विचार किया कि देवयानी का कथन उचित है। इसलिए मुझे ऐसा ही करना चाहिये। यह विचार कर उसका विवाह राजा ययाति के साथ विधि पूर्वक किया पीछे आपने शर्मिष्ठा के पिता के पास जाकर कहा कि अब तूभी अपनी पुत्री को ययाति राजा को दान करें

और देवयानी की दासी बना और उसके साथ उसे भेज दे। देवयानी ने ययाति राजा से यह प्रतिज्ञा करवाई कि मैं अपनी इस दासी का कुमारीपन मिटाने के लिये उसका आपके साथ विवाह कराती हूं अतः आप उसका समागम कभी न करें। यदि आप उसका समागम करेंगे तो फिर दासी में और मुझ में भेद ही क्या रहा क्योंकि दासी कदापि मेरे अधिकार को भोगने योग्य नहीं है शास्त्र में कहा है कि "स्त्रियों को एक ही पति होना चाहिये और पुरुष की भी एक ही पत्नी होनी चाहिये। स्त्री पतिव्रत का पालन करना यह स्त्री का भूषण है और पुरुष को एक पत्नीव्रत का पालन करना यह उसके लिए भूषण रूप एवं कल्याण कारी है", और विवाह के समय आपने प्रतिज्ञा की थी कि मै तेरे सिवाय दूसरी स्त्री को नहीं चाहूंगा इसलिए आप मेरे साथ इस प्रकार आचरण करनेके लिए बंधे हुए हैं दासी का तो मैं ही अपने विशेष कारण से आपके साथ विवाह कराती हूं आपने प्रतिज्ञा भङ्ग की और मेरा अधिकार दूसरे को देना चाहा तो उस दिन से मैं अपने पिता के घर जाकर रहूंगी। ययाति राजा ने देवयानी के कथन को स्वीकार किया। शर्मिष्ठा का विवाह कराकर उसको देवयानी ने

अपनी दासी बनाई देवयानी पति की आज्ञा में रहकर पतिव्रत धर्मानुसार रहने लगी। पति के राज्य आदि के कार्यों में सहायता दे उसकी अत्यन्त सहायक हुई। इस प्रकार सुख व आनन्द में अनेक वर्ष व्यतीत किये एक बार ययाति राजाने दैवेच्छा से भूलकर शर्मिष्ठा से समागम किया उस दिन से देवयानी पिता के घर जाकर रही और शेष आयु ईश्वर की आराधना में योगिनी की दशा में रहकर व्यतीत की अन्त में सद्गति को प्राप्त कर संसार में अपना नाम अमर बना गई।

देवहूति

चरित्र नायका देवहूति ने ब्रह्मावर्त के महाराजा स्वयंभू मनु की पत्नी सत्यरूपा के गर्भ से जन्म लिया था यह तीव्र बुद्धि और परम सुन्दरी थी। इसके माता पिता ने इसे न्याय वेदान्त और विज्ञान आदि शास्त्रों की शिक्षा दी थी जिससे देवहूति के अनेक गुणों का प्रकाश हुआ। परमेश्वर की कृपा से देवहूति के समान ही विद्वान् धर्मा-

त्मा और तेजस्वी महर्षि करदम ने इसका पाणिग्रहण किया गृह कार्य्य से निवृत्त होकर यह सदैव कर्दम मुनि से ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त करती थी। एक बार, कर्दम ऋषि गृहस्थाश्रम छोड़कर तपश्चर्य्या करने के लिये वन जाने लगे तब देवहूति ने कहा आपके पीछे ब्रह्मज्ञान का मुझे कौन उपदेश देगा। यह सुनकर योग बल द्वारा कर्दम मुनिजान गए कि इसको पुत्र की इच्छा है इस लिये कुछ दिन के लिये अपना विचार वन जानेका बन्द किया। परमेश्वर की दया से कपिल देव ने देवहूति के गर्भ से जन्म लिया।

देवहुती के पवित्र उपदेश से यह अपने समय में अद्वितीय ब्रह्मज्ञानी हुए और सांख्य शास्त्र की रचना की

पाठकों के मनोरंजनार्थ देवहूति और कपिल देव का ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी सम्वाद प्रकाशित करते हैं जिससे विदित होगा कि देवहूति कैसी तत्वज्ञान पूर्ण विदुषी थी।

कपिल—मेरे विचारके अनुसार योगही मुक्ति प्राप्त करने का श्रेष्ठ उपाय है। और योग साधन मन को वशमें किये विना अर्थात् अन्तःकरण की एकाग्रताके विना नहीं होसकता। मनको जिस ओर चलाया जाय उसी ओर वह दौड़ता है। भोगकी की ओर चित्तवृति के जाने से जीव को निवृत्ति मिलनेकी संभावना नहीं है; किन्तु ईश्वर में

लीन होने के पश्चात् अज्ञानता पाप प्रलोभन आदि से छुट-कारा होसक्ता है। आत्मसमर्पण के बिना योगियों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेका अन्य कोईभी मार्ग नहीं है। सत्संग ही मूल है।

देवहूति०—वत्स ! ईश्वर की भक्ति किस प्रकार करनी चाहिये और स्त्रियों को किसप्रकार ईश्वर भक्ति करनी चाहिये ? इस विषय में बताओ सारांश यह है कि—भक्तियोग से ईश्वरी पदकी प्राप्ति होसके और जन्म सुफल हो ऐसे तत्वको मैं समझ सकूं इस प्रकार कहो

कपिल०—वेदोक्त कर्मों के करने से भगवद्भक्ति की उत्पन्न होती है। इस भक्ति के बल से मुक्ति का मार्ग सहज में प्राप्त होजाता है, किन्तु मातः ! अनेक मनुष्य इस प्रकार सन्तोष नहीं मानते हैं। वे मुक्तिकी अपेक्षा भक्तियोग से परमेश्वरका अनुभव लेना अधिक पसंद करते हैं और सदैव वे उसी में लगे रहते हैं।

कपिल देव फिर अपनी माता से कहने लगे कि—देवी ! योगबल से जिसके हृदय की ग्रन्थियां छूटजाती हैं और परमात्मा के दर्शन होते हैं, मोक्ष की प्राप्ति के लिये विद्वान् लोग जिस विषय का उपदेश करते हैं उस ज्ञान को कहता हूं उसे सुनिये:—जो आत्मस्वरूप आदि रहित, स्वयं प्रकाशित और गुण एवं प्रकृति संग

रहित और अखिल ब्रह्माण्ड जिसके प्रभाव से प्रकाशित होते हैं वही परमपुरुष है। और जिससे प्रकृति, विष्णु, शक्ति, द्युति, रूप और अव्यक्त गुण से शोभायमान हैं। उस लीला क्रम से विष्णु के पास जानेसे विष्णु उसे ग्रहण करते हैं जो क्रिया प्रकृति के गुण का कारण होती है अर्थात् जिसका प्रकृति के साथ बहुत ही निकट का सम्बन्ध है, जिससे वे सभी उसके कर्तव्य से साध्य हैं। जननी ! पुरुष स्वयं साक्षीमात्र सुखस्वरूप हैं किसी कार्य में उसका सम्बन्ध नहीं हैं। प्रकृति कारण व कर्ताका मूल कारण है। पुरुष तो केवल सुख दुःखका उपभोक्ता है।

देवहुति०—जो कुछ विश्वका सूक्ष्म व स्थूल कार्य देखने में आता है वह प्रकृति एवं पुरुषसे उत्पन्न हुआ है यह समझ में आगया; किन्तु हे ! प्रियदर्शन ! अब उसके लक्षण भी बताईये।

कपिल०—माता सनातन, सत्य, रज और तमोगुण से युक्त निर्भेद्य कार्य कारण स्वरूप एवं सबके आश्रयभूत जो वस्तु है वही प्रकृति है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पञ्च महा भूत हैं और रूप, रस, गन्ध स्पर्श व शब्द ये पञ्चमात्रायें हैं, कर्ण, जिह्वा, नासिका, नेत्र हाथ; और पांव इत्यादि दश बाह्येन्द्रिय है। अहंकार,

चित्त, मन, और बुद्धि ये चार अन्दर की इन्द्रियां हैं। ऐसे सब मिलाकर २४ तत्व हैं। ये सगुण ब्रह्म में हैं। काल सहित २५ तत्व हैं। कोई कोई मनुष्य कालको पृथक् पदार्थ नहीं मानते। वे कहते हैं कि वह ईश्वर के प्रभाव के सिवाय और कुछ भी नहीं है। फिर पुरुष सूर्य के समान निर्गुण निर्विकार व कर्म से भिन्न है। "मैं करने वाला हूं" ऐसा अभिमान जो पुरुष करता है उसी पल में वह प्रकृति में आशक्त हो जाता है और उस के शोक उत्पन्न होने का महान् कारण उत्पन्न होजता है। अर्थ के सिवाय संसार का चलना कठिन है। दूसरी ओर विषय व्यापार आदि के विचार में लीन रहने से पुरुषकी अनेक प्रकार से खराबियां होती हैं इसलिए कहता हूं कि चित्तवृत्ति कुमार्ग की ओर जाय तो दृढ भक्ति व वैराग्य से उसे वश कर लेना चाहिये।

दूसरा यम नियमादि योग से चित्त को वस में कर के आस्थापूर्वक ईश्वर में आत्मसमर्पण मौन्य का अवलम्बन, स्वधर्म का अनुष्ठान, विषयवासना में निरष्टहता, एकान्तवास ब्रह्मचर्य और प्रकृति पुरुषको जानने के लिये ज्ञानसंग्रह करें। इन सभी के प्राप्त कर लेने से ब्रह्मका साक्षात्कार होता है।

हे ! जननी ! जलमें दीखते हुए सूर्यके प्रतिबिंब, पृथ्वी में आते हैं और जल तथा सूर्य के प्रतिबिम्ब के मिलापसे गगन में रहा हुआ चन्द्र देखने में आता है। इन्द्रिय भूत और मनोमय आत्मा के प्रतिबिम्बसे और त्रिगुण वाला अहंकार ब्रह्मके प्रतिबिम्ब रूपसे देखने पर उस अहंकार से परमार्थ परिज्ञानरूप आत्माका साक्षात्कार होता है।

देवहूति०—वत्स ! प्रकृति व पुरुष दोनों नित्य व दोनों आश्चर्य स्वरूप है। यह मेरी समझ में आ गया। पृथ्वी व गंध जैसे एक दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते, जल व रस में जैसा अभेद्य सम्बन्ध है, अर्थात् एक दूसरे से पृथक् हो वे स्वतंत्रता से नहीं रहते वैसेही प्रकृति व पुरुष पृथक् नहीं हो सक्ते।

कपिल—अब स्वावलम्बन योग का वर्णन करता हूं इससे मन मलरहित व सन्मार्ग में होजाता है। यथाशक्ति अपने धर्मानुष्ठान, धार्मिकों को वंदन, निर्वाह प्राप्ति के कारण प्रीति दर्शाना, अपवित्र वस्तु को नहीं खाना, थोड़ा खुराक खालेना एकांत में निवास करना अहिंसा प्रभृति उत्तमव्रत करना, सत्य बोलना, तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य शुद्धाचार, ईश्वर की आराधना व प्राणायाम प्रभृति की सहायता से अन्तःकरण को योगकी ओर

आकर्षित करना, जिस प्रकार अग्नि व वायु से सुवर्ण शुद्ध होता है। उसी प्रकार श्वासःच्छ्वास से योगी का अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्राणायाम की विधि यह है कि नासिका के अग्र भागपर दृष्टि को स्थापित कर श्री परब्रह्म के विचार में मनको रोकना चाहिये। भक्तों का हृदय ही उसके उपदेश का एक मात्र आसन है।

देवहुति—आपने प्रथम सांख्यमत में प्रकृति, पुरुष इत्यादि का वृत्तान्त जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार उसका वर्णन किया है अब उसके मूलस्वरूप भक्तियोग के विषय का वर्णन करो। जिसके श्रवण से जीव संसार के व्यवहारों से निस्पृह हो सकता है।

कपिल—माता! भक्तियोग कई प्रकारका है तामसअर्थात् निकृष्ट योग, धन मान आदि के लिये जो योग किया जाता है उसको राजस योग कहते हैं यह मध्यम योग है। ईश्वर प्रीति नहीं करने से जीवकी सद्गति नहीं होती ऐसा समझना सात्विक योग है और यही उत्तम प्रकारका योग है।

इस प्रकार माता और पुत्र में अनेक ज्ञान सम्बन्धी बातें होती रहीं। धन्य माता देवहूति जी जो आपकी शिक्षा से ऐसा ज्ञानी पुत्र उत्पन्न हुआ।

—※—

देवलदेवी ।

पृथ्वीराज समुद्र शिखर के यादव वंशीय राजा विजयपाल की राजकुमारी से विवाह करके दिल्ली को थोड़ी सी सेना के साथ लौट रहे थे । मार्ग में शहाबुद्दीन ने एक बड़ी सेना के साथ उन पर आक्रमण किया । घोर युद्ध होने के पश्चात् शहाबुद्दीन की हार हुई । इस लड़ाई में शहाबुद्दीन के ५००० सैनिक मारे गये और वह आप भी कैद होगया था । अंत में ८००० घोड़े दण्ड में देकर छुटकारा पाया। पृथ्वीराज तो विजय प्राप्त कर दिल्ली चले आये और उनकी सेना के कुछ घायल योद्धा दिल्ली को लौटते समय मार्ग भूल गये । और महोवा जा पहुंचे । सायंकाल को जब वे लोग नगर के समीप पहुंचे । तब बड़ी प्रचण्ड आंधी के साथ वर्षा होने लगी । निकट ही महोबा के राजा परमाल चंदेल का बाग था घायल सैनिकों ने विश्राम के लिये उसमें जाना चाहा परन्तु बाग के माली ने उन्हें रोका । इस पर क्रोध वश एक योद्धा ने उसका सिर काट दिया । माली की स्त्री रानी

मिलनदे के निकट पहुंची और अपने मृत पति के लिये उन के सन्मुख विलाप किया रानी ने इस दुर्घटना का समाचार राजा के पास भेजा।

राजाने पृथ्वी राज के वीरों को मारने के लिये छोटी सेना भेजी। वीर योद्धाओं ने घायल होने पर भी बड़ी ही वीरता से लड़ कर चन्देल योद्धाओं को मार भगाया। राजाने यह सुनकर कि योद्धाओं को पृथिवी राज के सैनिकों ने मार भगाया हैं ऊदल को आज्ञा दी कि घायलों को पकड़ लाओ। ऊदल ने इसके उत्तर में कहा घायलों पर प्रहार करना राजनीति और धर्म दोनों के विरुद्ध है यह सुनकर राजा परमालके मंत्री जोकि ऊदल से द्वेष रखते थे कहने लगे महाराज यह पृथिवी राज से डरता है इस लिये उसके योद्धाओं पर आक्रमण करने को मना करता है। परमारने ऊदल से विशेष आग्रह किया जिससे विवश ऊदल को वहां जाना पड़ा।

घायलों में कनक चौहान सेनापति बना दोनों दलों में घमसान युद्ध हुआ सब चौहान क्रमशः वीरगति को प्राप्त हुए।

पृथिवीराजने अपने वीरों की यह दशा सुनकर एक बल-वती सेना महोवे भेजी। और स्वयं भी सेना के साथ आए।

इस चढ़ाई के समय पराक्रमी योद्धा आल्हा और

ऊदल कन्नौज में थे। वे महोवा छोड़कर चले गये थे। इनके महोवा छोड़ने का कारण यह हुआ कि एक वार राजा परमाल कालिंजर गये थे जो कि देवलदेवी के स्वामी जसराज को महोवा से उसके प्रशंसनीय कार्य्यों के वदले में मिला था। राजा महोवा को वहां आल्हा की एक घोड़ी वड़ी पसन्द आई जिस को उन्हों ने लेना चाहा आल्हा ने उसका देना अस्वीकार किया राजा महोवा ने पूर्व सेवाओं का विचार न कर के उन को वहां से चले जाने की आज्ञा दी। वहां से जाकर वे राजा कन्नौज के यहां नौकर होगये और वहां पर उनकी वड़ी प्रतिष्ठा हुई।

जव राजा परमाल को पृथ्वी राज के आक्रमण की सूचना मिली तो उसे आल्हा ऊदल का स्मरण हुआ। अव अपने अपव्यवहार पर वड़ा पश्चात्ताप हुआ। मंत्रियों ने राजा को सम्मति दी कि महोवे के किले से ही लड़ाई होनी चाहिये और राजा ने यह सम्मति स्वीकार की परन्तु कुमार ब्रह्माजीत को यह सम्मति पसन्द न आई।

ब्रह्माजीत की सम्मति के अनुसार मैदान में युद्ध हुआ दोनो ओर के योद्धा वड़ी वीरता से लड़े। और पृथ्वीराज की विजय हुई।

तव सवने सम्मति करके आल्हा ऊदल को लेने के

लिये जगनक भाट को भेजा और पृथिवी राज से एक मास तक न लड़ने की प्रार्थना की वीरशिरोमणि पृथिवी राज ने बड़ी उदाररता से उनकी प्रार्थना स्वीकार की। जगनक ने सब वृत्तान्त आल्हा ऊदल से कह सुनायाः—जब से तुम ने महोवा छोड़ा है रानी मिलनदेवी बहुत उदास रहती है। जब तुम उनको याद आतेहो तो अनायास उनके नेत्रों से अश्रुपात होने लगता है और रोती हुई कहा करती हैं कि चन्देल वंश की सब प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा नष्ट होगई। यदि जसराज के सुपुत्रों! तुम महोवा न जाओगे तो पछताओगे। उठो और महोवा चलने को उद्यत होजाओ।

इसका उत्तर आल्हा ऊदल ने इस प्रकार दिया जिस अदूरदर्शी राजा ने बिना अपराध हमको निकाल दिया। जिस राज्य की सीमा हमारे पिता ने बढ़ाई और पिता के बाद हमने ४० युद्धों में विजय प्राप्त कर राज्य का अगणित लाभ किया और अनेक वार युद्ध में प्राण बचाए ऐसे कृतघ्न राजा का राज्य जाय या रहे चाहे राजा की मृत्यु होजाय परन्तु अब हम मोहवे न जायंगे। आप ही बताईये ऐसे कृतघ्न राजा की सहायता किस प्रकार करें जिस ने हमें निर्दोष अपनी जन्मभूमि से निकाल दिया।

जनक ने बहुत समझाया परन्तु आल्हा ऊदल न माने तब उसने उनकी माता देवलदेवी से कहा:—"तुम ने जो बार २ मिलदेवी से प्रतिज्ञा की थी कि मैं आजीवन महोबा को आपत्ति में न छोड़ूंगी उसको पूरा करो। जो अपनी प्रतिज्ञा का उल्लंघन करता है वह नरकगामी होता है।"

देवलदेवी ने रानी का यह संवाद सुन कर और आल्हा ऊदल को बुला कर कहा:—"पुत्रो! उठो और जल्द महोबा को चलो।" आल्हा तो माता की आज्ञा सुन चुप रहा परन्तु ऊदल ने उत्तर दिया, कि महोबा से हमारा कोई संबन्ध नहीं। क्या हम वे दिन भूल गये जब अपमान के साथ वहां निकाले गये। अब तो कन्नौज हमारा वासस्थान है। देवलदेवी ने बड़े रोष के साथ कहा कि मैं बांझ क्यों न रही मैंने ऐसे दुष्ट जने जो राजपूतों की रीति मर्यादा के विरुद्ध आपत्ति समय अपने राजा की सहायता के लिये उद्यत नहीं होते।" फिर दुःखपूर्ण हृदय से आह भर कर सजल नेत्र कहने लगी:—"हे ईश्वर! क्यों तूने मुझे बनाकर वंश को कलंक लगाने वाले इन कुल कलङ्क कुपुत्रों को दिया। जो असल क्षत्रिय होता है उसके हृदय में युद्ध का नाम सुनते ही लड़ाई की उमङ्ग होती है और अपने पराक्रम दिखाने का उत्साह होता है परन्तु इन कुपुत्रों को तो

जसराज की सन्तान कहाते भी लज्जा नहीं आती है ।"

माता के यह बचन सुनकर आल्हा ऊदल से न रहा गया और देवलदेवी के पैरों में प्रणाम करके कहाः—"माता आप दुःखित न हूजिये जब तक शरीर में प्राण हैं महोबे की रक्षा करेंगे और शत्रु को पराक्रम दिखाकर आपको प्रसन्न करेंगे ।

राजा कन्नौज से आज्ञा लेकर आल्हा ऊदल महोबा को चल दिए । चलते समय कुछ अपशकुन हुए । कवीश्वर ने इन अपशकुनों का कुछ फल बतलाया परन्तु आल्हा ने मुसकराते हुए कहा कि वीरों के लिये जो अपने धर्म्म पर स्थित हैं मृत्यु हर्षदायक है न कि शोकजनक ! किसी कवि ने ठीक कहा है:—"विघ्नैः पुनः पुनरपि हन्यमाना प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ते ।" अर्थात् अत्यन्त विघ्न होने पर भी सज्जन प्रारम्भ किये काम को नहीं छोड़ते । राजा चंदेल दोनों भाइयों का आगम सुन हर्ष से स्वागत करने गये । मिलनदेवी भी देवलदेवी का स्वागत करने और धन्यवाद देने आई । आल्हा व ऊदल को अपने समीप बुलाकर और सहर्ष दोनों के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया । दोनों ने झुक कर प्रणाम किया आल्हा ने कहा कि मेरा सिर महोबा के लिये अर्पण है ।

रानी ने एक थाल रत्नों से भरा हुआ उनके सिर पर न्योछावर करके बांट दिया। दूत को ४ गांव पारितोषिक में मिले।

लड़ाई से कुछ समय पहले युद्ध के विषय में विचार करने के लिए दरवार हुआ था। मिलन देवी व देवलदेवी परदे में बैठी। मिलन देवीने कहा ऐ आल्हा की मां! किस तरह हमारी पृथ्वीराज पर विजय होसकेगी?. यदि हमारी पराजय हुई तो महोवा हाथ से गया और यदि हम करमद होजांय तो लज्जा का स्थान है।

इस पर देवलदेवी ने कहा कि पहिले सरदारों की राय सुनों। माता का कथन सुन कर आल्हा बोला "ऐ माता मेरी बात सुनों मैं रणभूमि में जाता हूं मातृभूमि के के लिये युद्ध क्षेत्र में अपना शरीर तक बली करूंगा इसलिये यदि मैं वीरगति को प्राप्त होजाऊं तो आप शोक न करें। और महाराज मेरा यह पुत्र इंदल आपकी शरण है।

कुछ मनुष्यों की सम्मति हुई कि पृथ्वीराज की सेना अधिक है इसलिये कुछ कर देकर भी सन्धि करके मोहवे की रक्षा करनी चाहिये। इसके उत्तर में ऊदल ने कहा:—"यदि ऐसा ही विचार है तो जब पृथ्वीराज के आदमियों को निर्दोष वध किया था उस समय इस आ०

पत्ति की बात क्यों न सोची। अब तो जो कुछ निश्चय होगा तलवार से होगा। अब ऐसा पराक्रम दिखाओ कि तुम्हारे मा बाप का नाम जगत—विख्यात हो जाय। देखो हमारे राज्य के लोग गावों से निकालदिये गये, जिनका धन दौलत और माल असबाव लूटा गया है, जिनके गांवों में आग लगादी गई है वे यहां आ आ कर उनके अत्याचार के लिये पुकार रहे हैं। उनका न्याय क्या चाहता है ? लड़ना या चुप होजाना ? हे योद्धाओं उठो और चन्देल राज्य की प्राचीन प्रतिष्ठा में कलंक न लगाओ। जबतक मैं जीवित हूं अपने जीते जी महोबा हाथसे न जाने दूंगा।

राजा चन्देल ने कहा कि कल शनिश्चर है परसों शत्रु से लड़ाई होगी।

आल्हा ने यह बात सुन कर कहा—आप शत्रुओं का प्रजापीड़न और आक्रमण देख रहे हैं, और फिर भी युद्ध को परसों पर टालते हैं। जो क्षत्रिय ऐसे अवसर पर युद्ध में शिथिलता करता है वह नरकगामी होता है। परंतु जो योद्धा क्षात्र धर्म पर आरूढ़ होकर कर्त्तव्य पालन करता है वह स्वर्गसुख भोगता है और उसका नाम चिरकाल तक प्रसिद्ध रहता है।

चंदेल राजा रानी मिलनदेवी के समीप गए। उस ने भी तत्काल युद्ध के लिए सम्मति दी और कहा इसी समय अपनी सेना के अध्यक्ष होकर युद्धक्षेत्र के लिए प्रस्थान कीजिये।

प्रातःकाल उठकर उन्होंने धर्म्मसम्बन्धी कृत्य कर और फिर अपनी माता व स्त्रियों से मिल युद्ध के लिये विदा हुए। चलते समय फिर आल्हा ने अपनी माता के सन्मुख अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया कि "आज मैं आप का और अपने पिता जसराज का नाम प्रसिद्ध करूंगा और मैं सिद्ध करूंगा कि मैं असल राजपूत्र और वीर माता देवलदेवी का पुत्र हूं।"

ऊदल ने कहा मैं भी आपका अनुकरण करूंगा।

देवलदेवी ने उत्तर दिया "अच्छा बेटा जाओ, ईश्वर तुम्हारा सङ्कल्प पूरा करे।" उनकी स्त्रियों ने भी सहर्ष अपने पतियों को विदा किया।

निदान आल्हा ऊदल युद्ध में गये। जैसे पराक्रम और वीरोचित कार्य्य उन्होंने किये उनकी प्रशंसा आज तक गायी जाती हैं।

धन्य है माता देवलदेवी, आपके उदार हृदय को। स्वामी की आपत्ति सुन अपने अपमान को भूलकर प्राण-

प्रिय पुत्रों को बलात् स्वामी कार्य के लिए अर्पण किया।

धनलक्ष्मी

स्वनाम धन्य धनलक्ष्मी, डभोई जिलान्तर्गत छतरा निवासी पं० जीवा राम जोशी की पुत्री थी, और इसका विवाह बड़ौदा राज्य के वीलना ग्राम निवासी जगन्नाथ लक्ष्मी राम के पुत्र पं० गिरजा शंकर से हुआ था। यह परम सुशीला और सेवा परायणा थी। सास स्वशुर और पति सेवा से जो समय बचता था उस में यह ऐतिहासिक और धार्मिक पुस्तकें पढ़ा करती थी। बाल्यावस्था में ही इसने जल में तैरना सीख कर उसमें निपुणता प्राप्त की थी। अपने सद्गुणों के कारण यह मंत्र की प्रेम पात्र बन गई थी।

सम्वत् १९४५ में गिरजाशंकर को विश्वनाथ के भतीजे के विवाह में जम्बूसर जाना पड़ा। बारात जम्बूसर से खंभात नाओं में कावी बन्दर जाने के लिये बैठी। नावें कुछ ही दूर गई थीं कि अकस्मात् दरिया में बड़े वेग से तुफान आया इस तुफान से नावें डूबने के लक्षण दिखाई

देने लगे। कोई रोता था कोई परमेश्वर से प्रार्थना करता था सारांश यह कि समस्त मनुष्यों का धैर्य्य जाता रहा था। मल्लाह नांव से कूद कर तैरने लगे। इस आपत्ति समय में चरित्र नायका धनलक्ष्मी को ध्यान आया कि सेमर की छोटी लकड़ी के भी सहारे आदमी भली भांति तैर सकता है अतः शीघ्र कपड़े बांध कर नांव में सेमर की लकड़ी तमाश की क्योंकि नाव पर प्रायः यह लगड़ी रहती है देखते २ नाव डूबने लगी तब धनलक्ष्मी ने पति से कहा आप भी इसको पकड़ लीजिये गिरजा शंकर ने एक हाथ से लकड़ी को पकड़ा और एक हाथ में जेवर का डिब्बा लेलीया यह देख धनलक्ष्मी ने वह ले कर फेंक दिया किन्तु फिर गिरजा शंकर नें उठालिया। नाव डूब गई यह दम्पति दोनों तरफ से उस लकड़ी को पकड़ कर तैरने लगा कुछ देर बाद एक ब्राह्मण का लड़का डूब कर फिर जल के ऊपर आया, और इन दोनों को तैरते देखकर लकड़ी को चिपटनें लगा यह देख कर गिरजा शंकर घबरा गए क्योंकि यह लकड़ी तीन का भार नहीं संभाल सकती थी। यह देख कर धनलक्ष्मी नें यह विचारा कि यदि इन दोनोंके प्राण बचजांय तो अच्छा है और यह बिलकुल तैरना भी नहीं जानते। स्वयं लकड़ी छोड़कर तैरने लगी; पति और

उस लड़के को समझा दिया कि धैर्य्यपूर्वक इस लकड़ी को पकड़े रहना औरइसके ऊपर न बैठना वरन् दोनों डूबजाओगे कईवार लहरों में डूबी किंतु अपनी चतुरता से बचाई गई अभी तक नांव का एक सिरा जल से ऊपर थोड़ा दिखाई देता था। उसपर जेवर का डब्बा जोकि कपड़े में बन्धा था दिखाई दिया, शीघ्रता से उसके पास जाकर उसे अपने पैर में फंसा लिया इतने में एक लकड़ी बहती मिलगई एक हाथसे उसे पकड़ लिया, और उसी हाथ की अंगुली में डब्बा पकड़ लिया। एक हाथ और एक पैर से तैरनें लगी किन्तु अधिक थक जाने के कारण उसनें जेवरों का डिब्बा छोड़ दिया इस प्रकार तैरती हुई और पति की प्राण रक्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती हुई, सांय काल को कारवी बन्दर के समीप पहूंची। वहां पर एक चतुर मल्हानें उसे निकाल लिया।

इस समय उसको अपने पतिका स्मरण हुआ जिससे वह रुदन करने लगी। हाय! मेरे पति वह गए मैं क्यों जीवित निकली? हाय? मैंने एक वार लकड़ी पतिको सौंप कर मरने की तैयारी की इतनें में परमेश्वर ने मुझे फिर लकड़ी क्यों दी। इतने में विश्वनाथ शुक्लने आकर उससे सब वृतांत पूछा। उत्तर में रुदन करती हुई

धनलक्ष्मी ने सब वृत्तांत कहा। शुक्र जी हाय कहकर रुदन करनेलगे जिसे देखकर गांवके सब लोगों में हाहाकार मचगया। धनलक्ष्मी को एक ब्राह्मण के यहां बैठा कर विश्वनाथ शुक्र कुछ मनुष्यों को साथ में लेकर और मशाले लेकर किनारे २ मनुष्यों की तलाश करने लगे। धनलक्ष्मी स्वामी को स्मरण कर रोने लगी। गांव के स्त्री पुरुष धैर्य देने लगे और कहने लगे तूने अपने शरीर की परवाह नहीं की दया से अपने पति और दूसरे ब्राह्मण के बचाने के लिये लकड़ी छोड़ दी थी इसलिये ईश्वर तेरे ऊपर दया करेंगे। तूने उन दोनो के ऊपर दया करके लकड़ी को छोड़ दिया तब ईश्वर ने तेरी इस उदार वृत्ति को देखकर दूसरी लकड़ी दी, यही उसकी दयाका प्रमाण है। सिवाय इसके इतने भयंकर तोफान से इस अगम समुद्र की लहरोंमें पड़कर भी तेरे शिरपर की बिन्दी ज्यों की त्यों बनी हुई है, यह दूसरा शकुन है। ईश्वर तेरे पतिकी रक्षा करेगा। इस प्रकार निकट के मनुष्य उसे धैर्य और दिलासा देकर समझाने लगे, धनलक्ष्मी को धैर्य न हुआ वह न भोजन करती थी और न सोती थी। रात दिन ईश्वर से यह विनय करती थी हे ईश्वर! मुझ अबला पर दया करके मेरे पति की रक्षा करो। एक दिन

इस प्रकार रात्रि के ४ बजगए उस समय इन्स्पेक्टर बयान लिखने आया सिपाहियों ने धन लक्ष्मी को बहकाया कि तू इस प्रकार लिखादे कि "मुझे इन्सपैक्टर ने समुद्र के अगाध जल से बचाया है" किन्तु धनलक्ष्मी ने जो सत्य बात थी वही लिखाई कि मुझे एक नाविक ने जल में से बचाया है, इस पर इन्सपैक्टर क्रुद्ध हो कर बोला। मैं सारोद से बयान लिख लाया हूं यह इसी के अनुसार है या नहीं ऐसा कहकर धनलक्ष्मी के पति का बयान पढ़ सुनाया। जैसे ही धनलक्ष्मी ने उस बयान के ऊपर पति के हस्ताक्षर देखे उसको शान्ति हुई। अपने पतिके जीवित रहने का समाचार पाकर नेत्रों में से हर्ष के आंसु आगए और उसके दर्शन के लिये आतुर हो ही रही थी। इतने में एक मनुष्य ने आकर खबर दी कि तेरा पति आ रहा है। यह समाचार गांव में फैल गया कि उस स्त्री का पति रात के ११ बजे निकला था वह अपनी स्त्री की खोज करता हुआ यहां आया है। यह सुनकर उस समय उसे देखने के लिये बहुत मनुष्य एकत्र हुये। धनलक्ष्मी पति को आता हुआ देखकर खड़ी होकर सामने चली और रुदन करती हुई पांव में गिर पड़ी। उसके पतिने हाथ से पकड़कर बिठादिया

और दोनों रुदन करते हुये स्तब्ध होगये। धनलक्ष्मी के पति ने कहा कि "हे प्रिये! तुझे धन्य व तेरे माता को भी धन्य है! तूने हम दोनों की रक्षा के लिये अपना मरण स्वीकार किया। तेरा कल्याण हो। कृपासिंधु प्रभू ने तुझे फिर एक लकड़ी देकर रक्षा की जिसके लिये उस का धन्यवाद करता हूं। इतना कहने के पश्चात समुद्र में जो अपनी मरण तुल्य दुःखकर दशा हुई थी वह कही जिसे सुनकर लोग अत्यन्त आश्चर्य को प्राप्त हुये।

धन लक्ष्मी का वृत्तान्त कल्पित नहीं है। यह वृत्तान्त सामायिक पत्रों में छप चुका है। और बड़ौदे के एक उच्चपदाधिकारी स्वयं धनलक्ष्मी से मिले थे तथा धनलक्ष्मी को अनेक धन्यवाद दिया था।

जो मनुष्य आपत्ति समय में धैर्य्य को नहीं छोड़ता और कर्त्तव्य पालन में लगा रहता है। वह अवश्य विपत्ति पर विजय प्राप्त करता है। परमेश्वर स्वयं उसकी रक्षा करते हैं जो औरों की रक्षा करता है।

सती नर्मदा

—:(०)*(०):—

न र्मदा प्रतिष्ठानपुर निवासी सोमशर्म्मा की पुत्री थी। नर्मदा के जन्म होते ही इसकी माता का देहान्त हो गया था। माता के पश्चात् पं० सोम शर्म्मा ही ने इसको पाला, परन्तु नर्मदा के भाग्य में पिता का सुख भी न था। वह भी कुछ दिन पश्चात् चन्द्रचूड़ नामक ब्राह्मण को उसे सौंप कर स्वर्ग गामी हुए। सोम शर्म्मा के देहान्त होने पर चन्द्रचूड़ ने बड़े प्रेम के साथ इसका पालन किया, और धर्म शास्त्र, नीतिशास्त्र, व्याकरण, वेदान्त आदि की शिक्षा दी। यह बाल्यावस्था में ही कुशाग्र बुद्धि थी। इस लिये यह शीघ्र ही विदुषी होगई। नित्य विद्वानों से अनेक शास्त्र सम्बन्धी वार्तालाप करती थी।

इसका वाग्दान (सगाई) पांच बार हुआ, परंतु दुर्भाग्य वश विवाह से प्रथम ही पांचो का देहान्त होगया इस लिये नर्मदा से कोई विवाह करने को राजी न होता था। अन्त में इस ने घोषणा की कि "तीन दिन के भीतर जो मुझ से विवाह करेगा आजन्म उसकी देवरूप से सेवा करूंगी" किन्तु इतने पर भी कोई इसके साथ विवाह

करने को तैयार न हुआ। यह बात फैलते २ कौशिक ब्राह्मण के कानों तक पहुंची जो कि लोभादि दुर्गणों से युक्त था और कुष्ट रोग से ग्रसित था। उसने नर्मदा से विवाह करना स्वीकार किया। नर्मदा ने लोकापवाद की कुछ परवाह न करके अपनी प्रतिज्ञानुसार "अर्थात् जो तीन दिन के भीतर मुझ से पाणिग्रहण करेगा उस से विवाह करूंगी" कौशिक से विवाह करलिया। रातदिन कौशिक की सेवा मन वचन और शरीर से करने लगी नित्य उसके सब घावों को धोती, स्नान कराती थी और यथा शक्ति कौशिक के रोग को दूर करने के प्रयत्न में लगी रहती थी तथा ईश्वरसे प्रार्थना करतीथी कि हे! सर्वशक्तिमन्! परमात्मन्! कृपा करके आप मेरे पति को रोग से मुक्त कीजिये, मेरी तपश्चर्या और पतिव्रत के फल में केवल पतिदेव को रोगमुक्त कर दीजिये। और यदि मेरा पुण्य इतना न हो तब यह रोग मुझे देदीजिये इत्यादि अनेक प्रकार से पति देव का मंगल मनाती थी। तथा नित्य स्वामी से यह ही कहा करती थी:—आपकी पवित्र सेवा में जो त्रुटि रह जाय कृपया दासी को क्षमा करते रहा कीजिये।

एक दिन कौशिक ने नर्मदा देवी से कहा "प्रिये!

मेरा पृथ्वी पर जन्म वृथा जा रहा है आज तक इस घोर रोग के कारण मैंने किसी तीर्थ की यात्रा नहीं की न महात्माओं के दर्शन ही किये। इस लिये मेरी इच्छा है तुम मुझे गङ्गा स्नान तो करा लाओ वहां पर इच्छा पूर्ण होजायगी क्योंकि गङ्गाजी पर अनेक महात्माओं के दर्शन होंगे"

पति की इच्छानुसार नर्मदा अपने साथ लेगई और अनेक तीर्थ कराए।

दोनो प्रतिष्ठानपुर की ओर आरहे थे मार्ग में एक राजाने मांडव्य मुनिको चोरी के झूठे अभियोग से शूली पर चढ़ाया था उनके पास होकर ये अंधेरी रातको निकले अजान से उनका स्पर्श हो जाने से कुछ वेदना हुई जिससे मांडव्य मुनिने उसे श्राप दिया कि सूर्योदय होते ही मुझको कष्ट देनेवाला मरजायगा यह सुन कर नर्मदा ने कहा सूर्य्योदय ही न हो। इन दोनों के धर्म संकटमय विवाद में प्रजा दुखी होने लगी, जिससे सब देवों ने मिलकर सती नर्मदाजी को समझाने के लिए सती अनुसूयाजी को भेजा। देवों की आज्ञानुसार अनुसूया नर्मदा के पास आई। सती नर्मदाने अनसूया जी का अतीथ्य सत्कार किया। अनुसूया जी ने उसे कुशल समाचार पूछे कि तू कुशल है ? तू अपने प्राणनाथ के मुखदर्शन कर आनन्द

में तो रही है इत्यादि कह कर नर्मदा की प्रसंशा की।

नर्मदा—तीनों लोकों की भूषण मातः! भगवति अनसूये! मैं आपके समान सतियों की दासी हूं? आप मुझ क्षुद्र दासी की इतनी प्रशंसा करके क्यों वृथा लज्जित करती हो। मैं आप की इस गुण ग्राहता की अत्यन्त कृतज्ञ हूं। वास्तव में यह मेरे लिये सौभाग्य और प्रशंसा के योग्य समय है कि आपने कृपा कर इस स्थान को पवित्र किया और दासी को दर्शन देकर कृतार्थ किया है। वृहस्पति, शुक्राचार्य्य, वाल्मीकी व्यास आदि कवि और मुनि ही जब आपकी प्रशंसा नहीं कर सके तब मैं क्षुद्र क्या प्रशंसा कर सकती हूं। दया करके यह बताईये कि आपने यहां आने का क्यों कष्ट उठाया है दासी से कोई सेवा लेने की कृपा कीजिये। इस प्रकार नम्र भाव से प्रार्थना करते देख कर अनसूया देवी बोली—पुत्रि! नर्मदे! मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। और एक बात कहती हूं आशा है तुम अवश्य मानोंगी क्योंकि इससे संसार का उपकार होगा।

नर्मदा—मातः! ऐसी कौन आज्ञा है जिसको मैं पालन न करूंगी आप निःसंकोच होकर कहिये।

अनुसूया—पुत्रि तुमने जो अपने पति की प्राण रक्षा के लिये उपाय किया है उससे प्रजा को अत्यन्त दुःख है

इसलिये ऐसा उपाय करो जिससे प्रजा के दुःख दूर हों।

नर्मदा—भगवति ! मातः ! अनसूये ! मांडव्य मुनि के श्रापसे सूर्योदय होने पर स्वामी का अमंगल होने की संभावना है इसलिये मैंने यह उपाय किया है। अब यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो आप की आज्ञाका पालन करूंगी।

अनुसूया—पुत्रि तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो जब तुम अपने ऊपर विपत्ति लेना स्वीकार करती हो तो न्यायकारी दयालु परमेश्वर तुम्हारी रक्षा करेंगे। मैं भी अपने सतीत्व के प्रभाव से तुम्हारे पति की प्राण रक्षा करूंगी। अनसूया के इन बचनों को सुनकर सती नर्मदा ने परमेश्वर से प्रार्थना कर प्रजा के हितार्थ सूर्योदय किया अनुसूया ने अपने पतिव्रत के बल से नर्मदा के पति की रक्षा की। जिस को देख कर समस्त देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और सर्वत्र जय २ कार की ध्वनि हुई।

अनसूया के प्रताप से इस प्रकार सूर्योदय हुआ और कौशिक भी रोग से रहित होगये। सत्य है पतिव्रत धर्म का ऐसा ही प्रताप है पतिव्रता जो चाहे कर सकती है।

श्रीमती निवेदिता देवी ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।

उपरोक्त किंवदन्ती को अर्थात् उदार चित्त वालों के लिये समस्त पृथिवी निवासी ही उनका कुटुम्ब हैं । हमारी चरित्रनायका श्रीमती निवेदिता देवी ने अपने पवित्र जीवन से प्रत्यक्ष सिद्ध करदिया कि "कः परः प्रियं वादिनाम्" याने प्रिय बोलने वालों के लिये कोई भी पुरुष पराया नहीं है । और उदार चित्त वालों के समस्त अपने कुटुम्बी हैं । स्वर्गतुल्य आयर्लैण्ड और अपने प्रिय कुटुम्ब को छोड़कर दुःखी भारतवासियों की यहां आ कर आजन्म सेवा की ।

इस आदर्श देवी ने आयर्लैण्ड में एक पादरी के यहां जन्म लेकर आयर्लैण्ड का मुख उज्वल किया और अपने माता पिता को धन्यवादार्ह ही बनाया था । इसका नाम मार्गारेट नोबुल था ।

बाल्यावस्था ही से यह कोमल और दयालु स्वभाव वाली थी । विद्या प्राप्ति करके यह अपनी जाति की सेवा करने लगी ।

एक बार नोबुल के घर एक भारतीय पादरी गए उनकी बातें सुन कर भारत यात्रा के लिये यह अत्यन्त उत्सुक होगई। प्रिय पुत्री की उत्सुकता को देखकर इसके पिताने मरते समय नोबुल की माता से कहा यदि मार्गरेट नोबुल की इच्छा भारतवर्ष जाने की हो तो इसको कदापि न रोकना और यथाशक्ति इसकी सहायता करना। पति की इच्छानुसार माता ने नोबुल के भारतवर्ष में आने में कोई आपत्ति न की।

इस समय परमहंस रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में वेदान्त का प्रचार कर रहे थे। ज्ञानमय वक्तृताएं सुनकर नोबुल ने भारत की सेवा में जीवन दान करने का सङ्कल्प किया, और ईसाई धर्म्म को त्याग हिन्दू-धर्म्म ग्रहण करके भारतवर्ष में आई।

तब से इनका नाम भगिनी निवेदिता हुआ। भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा देख वह बड़ी दुःखी हुई। और स्त्री जाति की उन्नति करने का सङ्कल्प किया। परन्तु एक विदुषी स्त्री के लिये यह काम बहुत ही कठिन था। उन्होंने कलकत्ते में हिन्दुओं के मुहल्ले में एक घर किराये पर लिया, और हिन्दू स्त्रियों की भांति रहने लगीं। उन्हें कोई हिन्दू नौकर तक नहीं मिला; न किसी हिन्दू ने उन-

की सहायता की। परन्तु वे ऐसी त्यागशीला धैर्य्यवती नारी थीं उन्हों ने अपना पहिला आचार व्यवहार सब त्याग दिया। फल फूल खाकर रहनेलगीं। धर्म्म का ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि थोड़े ही काल में जो लोग उनसे घृणा करते थे, वेही सब उनके मित्र व सहायक बन गए।

वे जिस मुहल्ले में रहती थी वह हिन्दुओं का वास-स्थान था परन्तु बहुत ही गन्दा रहता था गली की मोरियों में से दुर्गन्ध निकलती थी। और किसी को इस विषय में कुछ भी परवाह नहीं थी। भगनी निवेदिता केवल गङ्गा स्नान करके शुद्ध नहीं रहती वरन् सारे मुहल्ले को शुद्ध करने के लिए यत्न करने लगीं। हिन्दू लोगो ने उनके इस प्रस्ताव को पसन्द न किया और कहने लगे क्या हम चूढ़े चमार हैं जो मोरी और मुहल्ला साफ़ करेंगे?" निवेदिता हटनेवाली स्त्री नहीं थीं। दुर्गन्ध से सब के स्वास्थ्य की हानि होती है यह कह कर वे आप झाड़ू और पानी लेकर मुहल्ले की मोरियां साफ़ करने लगी और सब स्त्री पुरुषों को सफ़ाई के लाभ समझाये, उनके आदर्श जीवन को देखकर फिर वहां के निवासी भी उनके साथ मोरी साफ़ करने लगे। थोड़े ही काल में वह मुहल्ला साफ़ सुथरा होकर वहां के निवासियों को आनन्द देने लगा।

एक समय कलकत्ते में बहुत प्लेग फैला और सब लोग अपने मुहल्ले और घरों की सफाई करने लगे निवेदिता सब को सहायता देती रही। प्लेग से पीड़ित बालकों की सेवा अपने हाथों से दिन रात करने लगी। युवकों के साथ मिलकर उन्होंने एक सेवा मण्डली बनाई जो असहाय अनाथों की सेवा और मुहल्लों की सफाई करती थी देखिए एक यूरोप की नारी के यत्न और उद्यम से हमारे देशवासियों को कैसा लाभ पहुंचा। क्या हम लोग इसका अनुकरण नहीं कर सकते हमारे देश की स्त्रियां विशेष कर पंजाबी स्त्रियां तो सारे दिन गलियों में फिरती और बैठी रहती हैं क्या कभी किसी ने इस प्रकार से अपनी जाति के उपकार में भी यत्न किया है।

सन् १९०७ में बंगाल के बाकरगंज जिले में बड़ा अकाल हुआ। वहां के प्रधान देशभक्त लोग दुःखी अनाथों की सहायता करने का यत्न करने लगे। इस अकाल में भगिनी निवेदिता दुःखियों को अन्नदान और उनकी सेवा करने के लिए वहां गई। वर्षाऋतु में बंगाले के बहुत से गांवों के रास्तों में पानी का स्रोत बहता है, उस समय वहां जाना आना बड़ा कठिन होता है। परन्तु यह सेवा-परायणा नारी प्रेम से प्रेरित होकर

इस दशा में भी जाकर रोगी, दुःखी और अनाथों की सेवा करने लगी मनुष्य उनकी देवी की नाई भक्ति करने लगे।

वहां से लौट कर सारा वृत्तान्त (The Flood and Famine in East Bengal) नाम के बड़े मनोरंजक लेखों द्वारा Moaren Rewive आदि संवाद पत्रमें लिखने लगी यह बड़ी सुलेखिका भी थी। अंग्रेजी भाषा में तेजःपूर्णवक्तृता देकर और प्रस्ताव लिखकर भारतवासी समाज की उन्नति में उन्होंने बहुत कुछ सहायता की थी ये भारतवर्ष के साधुओं और ज्ञानियों पर गम्भीर भक्ति और श्रद्धा करती थीं और सदा यह कहकर शोक प्रकाश करती, कि भारतवासी कैसे मोह की निद्रा में सो रहे हैं कि इनके देश में ऐसे ऐसे रत्न गौरव के लिये हैं, तो भी यह केवल परदेशियों के भरोसे रहते हैं। भारतवा…ी आध्यात्मिक गौरव में जगत में श्रेष्ठ होकर भी अज्ञानता के वश में पराधीन हो रहे हैं। भारत के लोग कब जाग कर अपना लुप्त रत्न पुनः प्राप्त करेंगे। भगिनी निवेदिता ज्ञान और प्रेम से शोभिता थी। सदा विनय और नम्रता के साथ सेवा व्रत को पालन करके नारी जन्म सुफल करती थीं।

बङ्गाली विधवाओं के दुःखमय जीवन को देख कर उनकी उन्नति के लिए एक आश्रम बनाकर स्वयं उन्हें

शिक्षा देती थीं। छोटे छोटे बालकों को शिक्षा देने के लिए एक पाठशाला भी खोली थी।

निवेदिता ने हिन्दू धर्म्म ग्रहण करके अपने सारे तनमन को भारत की सेवा में लगाया था। उनके इस दृष्टान्त को देख कर बहुत अँग्रेज नर नारी उनको घृणा की दृष्टि से देखा करते थे।

वे कहा करती थी कि हिन्दु पति अपनी स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार करते हैं, वह सभ्यता के विरुद्ध है। स्त्री पति के धर्म्म पथ में सहायक मात्र ही हैं, दासी नहीं। हिन्दू स्त्रियों के पारिवारिक जीवन की दुर्गति देख कर भी वड़ा दुःख प्रकाश करती, और पुरुषों को अपनी स्त्रियो की उन्नति में सहायता देने कि शिक्षा देती कि उन्हें ज्ञानवती और विदुषी बनाकर मनुष्य पद के योग्य बनाना पुरुषों का कर्त्तव्य है।

भारत की सेवा करते करते अचानक रोग युक्त हो कर दार्जिलिङ्ग पाहड़ पर भारत के दुर्भाग्य से परलोक सिधारी।

पद्मा।

यह सती अनरण राजा की पुत्री थी। पिप्पलाद मुनिने राजा अनरण से पद्मा के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की, यद्यपि राजा की इच्छा वृद्ध होने के कारण मुनि पिप्पलाद से विवाह करने की नहीं थी, किन्तु मुनि के श्राप से डर कर विवश मुनि पिप्पलाद के साथ विवाह कर दिया और पद्मा मुनि के साथ तपोवन को चली गई। वहां पर पद्मा ने मन वचन और शरीर से ऋषि पिप्पलाद की सेवा की। प्रातःकाल उठ कर आश्रम को साफ करके मुनि इतने स्नान से निमट ने भी नहीं पाते थे कि पद्मा सन्ध्या हवनादि का सामान तैयार करदेती थी और पश्चात् वन से सुन्दर २ फल लाकर पति देव मुनि पिप्पलाद को अर्पण करती थी। और नित्य उत्तम २ भोजन बनाकर खिलाती थी।

यह देख कर धर्मराज इसके पतिव्रत की परीक्षा के लिये सुन्दर युवा का रूप धारण करके उस वन में गए जहां कि मुनि पिप्पलाद तपस्या करते थे। मुनि के आश्रम से गङ्गा जी जाने वाले मार्ग में खड़े होगए। नित्य के अ-

नुसार सती पद्मा गङ्गा जीं पर स्नान को जा रही थीं उसके पास जाकर कहाः—हे सुन्दरि तुम्हारा यह अनूपम सौन्दर्य अत्यन्त प्रशंसनीय है मुझे शोक है तुम्हारा यह कोमल शरीर बृद्ध मुनि पिप्पलाद की सेवा में बृथा कष्ट उठा रहा है और तुम्हारा यौवन व्यर्थ बूढे ब्राह्मण के साथ नष्ट हो रहा है। इस लिये हे! सुन्दरी तुम मेरे साथ चलो और आनन्द पूर्वक राजमहल में रहना। मैं आजन्म तुम्हारी सेवा करूंगा और आपको किसी प्रकार का कष्ट न होंने दूंगा इस प्रकार धर्मराज ने अनेक लोभ दिखाए किन्तु पद्मा के चित्त पर इसका उल्टा असर हुआ वह एक दम अत्यन्त क्रोध के साथ सिंहनी के समान गर्ज कर धर्मराज को धिक्कारने लगीः—कि जा दुष्ट! पापी अत्याचारी! मेरे सामने से मुख काला करके चला जा अधर्मी तेरा मुख देखने से पाप होता है। तेरी इसी में कुशलता है कि तू यहां से चला जा वरन् तेरा सर्वस्व नाश कर दूंगी क्या पापी तू पतिव्रत के प्रभाव को नहीं जानता। इत्यादि अनेक बातें कहीं परन्तु धर्मराज फिर भी न हटे और उसके समीप में आने लगे यह देख कर पद्मासे न रहा गया तुरन्त धर्मराज को श्राप द्वारा नाश करने को तैयार होगई। यह देख कर सब ऋषि और देवता घबरा

गये और शीघ्र आकर पद्मा से प्रार्थना करने और समझाने लगे कि देवी क्षमा करो तुम्हारे सतीत्व की परीक्षा के लिये इन्होंने ऐसा किया। किसी बुरी इच्छा से ऐसा नहीं किया है। इस लिये क्षमा करना चाहिये इत्यादि कह कर पद्मा को शान्त किया शान्त होने पर पद्मा ने विचारा धर्म का प्रभाव सर्वथा जाते रहने से संसार में अशान्ति फैल जायगी इस लिये क्षमा करना चाहिये किन्तु थोड़ा दंड तो इसकी दुष्टता का देना ही चाहिये। यह विचार कर कहा—जा तेरा कलि युग में चतुर्थांश प्रभाव रहेगा यह सुनकर धर्मराज बोलेः—देवी मैं तेरा दृढ़व्रत देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूं इस लिये तुझे वर देता हूं कि तेरे समस्त कार्य्य सिद्ध होंगे और चिर काल तक तू पति के साथ आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करेगी।

वास्तव में सत्य है जो पुरुष अपने कर्तव्य का पालन करता है उससे समस्त देव दानव डरते हैं।

इसके पश्चात् चिर काल तक पद्मा ने अपने पति के साथ आनन्द पूर्वक संसार में दिन व्यतीत किये।

—०—

पद्मिनी

—:o:—

सन् १२७५ ई० में चित्तौड़ के महाराणा की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र लक्ष्मण सिंह गद्दी पर बैठे। इस समय लक्ष्मण सिंह की आयु बहुत कम थी इसलिये उनके चाचा भीमसिंह ही समस्त राज्य कार्य करते थे। इनका विवाह सीलोन के चौहान राजा हमीर सिंह की पुत्री पद्मिनी से हुआ था। यह अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी और सती थी। इसके रूप की प्रसंशा सर्वत्र फैल रही थी यह परम सौन्दर्य्य ही इसके नाश और राजपूताने की अवनति का कारण हुआ।

इस समय अत्याचारी अलाउद्दीन देहली में राज्य करता था। इसके सौन्दर्य्य की प्रसंशा सुनकर वह इस पर मोहित होगया और इसको बलात् (जबरदस्ती) लेने के लिये मेवाड़ पर चढ़ाई की और चित्तौड को चारों ओर से घेर कर कहला भेजा यदि अपनी कुशलता चाहते हो तो पद्मिनी मुझे देदो इससे तुम्हारी मान प्रतिष्ठा शाही दरबार में बढ़ेगी और मेवाड़ की भी दुर्दशा न होगी।

जो स्त्रियां सती होना जानती हैं, जो वीर मान मर्यादा के लिये तन, मन, धन, रणभूमि में अर्पण करते हैं वह कब अलाउद्दीन की इस घृणित बात को मानने वाले थे इस के उत्तर में राजपूतों ने वीरता से युद्ध किया और अलाउद्दीन को युद्ध क्षेत्र से भगा दिया।

इस बार पराजित होकर अलाउद्दीन ने फिर पद्मिनी के लेने की इच्छा से बड़ी सेना लेकर चढ़ाई की। इसवार युद्ध से प्रथम ही यह ठहर गया कि पद्मिनी का मुख केवल शीशे में दिखा दिया जाय इस प्रस्ताव को अलाउद्दीन ने स्वीकार कर के शीशे में पद्मिनी का मुख देखा।

जिस प्रकार अग्नि पर घृत (घी) की आहुति देने से अग्नि प्रज्वलित होजाती है इसी प्रकार पद्मिनी का मुख शीशे में देखते ही उसकी व्याकुलता बढ़गई। मुख देखकर और राजपूतों को धन्यवाद देकर भीम सिंह सहित बात करता २ गढ़ के नीचे उतर आया और शिविर में पहुंचते ही फौरन कपटी अलाहुद्दीन ने भीम सिंह को कैद कर लिया। इस समय भीम सिंह के साथ कुछ आदमी थे वे इस महान् सेना के सामने कर ही क्या सकते थे इन आदमियों से अलाउद्दीन ने कह दिया भीम सिंह को बिना पद्मिनी के लिये नहीं छोड़ सकता। अलाउद्दीन की

यह दुष्टता सुनते ही सारे चित्तौड़ में हा हा कार मच गया। इस समय किसी की बुद्धि काम नहीं देती थी कि अब क्या करना चाहिये। क्योंकि अलाउद्दीन शक्तिशाली कपटी बादशाह था। राजपूतों की शक्ति का बहुत कुछ नाश अलाउद्दीन के साथ पिछले युद्ध में हो चुका था और इतनी जल्दी राजपूतों के लिये एक बड़ी सेना को एकत्र करना असम्भव था।

अलाउद्दीन की इस दुष्टता को सुनकर पद्मिनी के क्रोध और शोक का पारावार नहीं रहा। जब उसने देखा कि अब पतिदेव का कैद से छुटकारा होना राजपूतों की शक्ति से बाहर है। तब वह परमात्मा से प्रार्थना करने लगी। हे ! देवाधिदेव ! जगत्पते ! प्रभो ? इस महान संकट में आपको छोड़ कर और किस की शरण जांय हे ! नाथ इस समय आपही पतिदेव की रक्षा कर सकते और धर्म बचा सकते हैं इत्यादि प्रार्थना करते हुए पद्मिनी के चित्त में विचार उत्पन्न हुआ कि कपटी के साथ कपट करना चाहिये। यह विचार कर उसने तुरन्त अपने चाचा गोरे और उसके भतीजे बादल को बुलाकर कहा:- चाचा जी अब रणद्वारा अलाउद्दीन को पराजित करना अत्यन्त कठिन है। और इस समय बिना कपट किये मान

मर्य्यादा की रक्षा होना असम्भव है। इसलिये मेरी सम्मति में आप कहला भेजें कि हम अपने संरक्षक की रक्षा के लिये पद्मिनी को देना स्वीकार करते हैं और पद्मिनी भी देहली जाने के लिये तैयार है। परन्तु आपको हमारे कुछ नियम स्वीकार करने होंगे।

इतना सुनते ही गोरे और बादल को बहुत शोक हुआ किन्तु उन्होंने उसे प्रकट (जाहिर) न किया क्योंकि वह जानते थे कि पद्मिनी पतिव्रता और परम बुद्धिमती है वह सहसा कुछ नहीं कह बैठती।

(१) घेरे के उठने पर पद्मिनी को भेजा जायगा।

(२) पद्मिनी को कुछ दासियां छावनी तक विदा करने जायंगी और उसकी निजी दासियां देहली भी उसके साथ जांयगी।

(३) पद्मिनी परम सुन्दरी है अतः संभव है आपके सरदार भी उसके देखने को उत्सुक होंगे इस लिये विशेष प्रबन्ध होना चाहिये जिससे कोई सरदार पद्मिनी को न देख सके।

(४) राजमहल की दासियां उसके साथ होंगी उन को भी कोई न देखने पावे।

यदि अलाउद्दीन इन नियमों को स्वीकार करते तब

आप कुछ डोलियों में वीर योद्धा शस्त्रों सहित बैठा दीजिये यह डोलियां जब वापिस होंगी तब उन में से एक में स्वामी बैठ कर चले आवें और युद्ध का सामान तैयार रखिये। आगे जैसी ईश्वर की इच्छा और अवसर हो करना चाहिये।

गोरा और बादल दोनो ने इस सम्मतिको सहर्ष स्वीकार करके अलाउद्दीन से उक्त नियम कहला भेजे।

कामान्ध अलाउद्दीन को इससे अधिक और कौन शुभ अवसर होगा जो विना युद्ध साधारण नियमों को स्वीकार करने मात्र से अमूल्य रत्न हाथ लगे।

अलाउद्दीन ने सहर्ष उक्त नियम स्वीकार कर लिये। और पद्मिनी की सम्मति के अनुसार डोलियां अलाउद्दीन की छावनी में भेजी गईं। और वहां पर एक बड़े तम्बू में जिसके चारों तरफ कनात लगी हुई थी सब डोलियां उतारी गईं।

अलाउद्दीनने भीम सिंह को पद्मिनी से अन्तिमबार मिलने के लिये आज्ञा दी। इस समय तक भीमसिंह अत्यन्त शोक से व्याकुल हो रहे थे कि हाय! पद्मिनी को तो मैं बड़ी पतिव्रता समझता था शोक उसने मेरी रक्षा के लिये बादशाह से डर कर अथवा किसी पाप की इच्छा

से बेगम बनना स्वीकार कर लिया। हाय हाय उस ने राजपूतों की मान मर्य्यादा की कुछ भी परवाह की। इत्यादि विचार कर बार बार दुःखी होते थे परन्तु तम्बू में बड़ते ही पद्मिनी की जगह बीर नव युवाओं को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और कुछ देर बाद एक डोली में बैठकर कुछ डोली लेकर वहां से चल दिये। रास्ते में में एक शीघ्र गामी घोड़ा तैयार था, उस पर चढ़कर भीम सिंह कुशलता पूर्वक चित्तौड़ में पहुच गये। आध घंटे बाद अलाउद्दीन प्रसन्न होता हुआ पद्मिनी से मिलने की इच्छा से तम्बू में गया वहां पद्मिनी की जगह बीर योद्धाओं को देख कर जैसे तैसे अपने प्राण बचा कर भागा। और बाहर आकर तुरन्त भीमसिंह के पीछे सेना भेजी और स्वयं भी क्रोधन्ध साथ गया परन्तु बादशाही सेना में आए हुए राजपूतों ने उनको रोक लिया और एक एक अन्त समय तक बड़ी बीरता से लड़कर बीरगति (रण में मरने वालों की मृत्यु को वीरगति कहते हैं) को प्राप्त हुआ। भीम सिंह पहिले ही अपने स्थान पर पहूंच गये थे गोरा व बादल सेना लिये हुए चित्तौड़ के द्वार पर खड़े थे। अलाउद्दीन की सेना आते ही दोनों में घमसान युद्ध हुआ। इस समय जिस बीरता से राजपूत लड़े वह अत्यन्त प्रसंशनीय है।

जिसमें लड़ते २ गोरा वीरगति को प्राप्त हुआ और बादल बहुत ही घायल होगया। कहा जाता है इस समय बादल की आयु १२वर्ष थी किन्तु इसके अनूपम पराक्रम को देख कर शत्रु भी उसकी वीरता की प्रसंशा करते थे।

चित्तौड़ से अलाउद्दी न पहिली बार पीछे को हटगया परन्तु उसके हृदय से पद्मिनी लेने की बलवती इच्छा न हटी थी इस लिये सन् १२६६ ई० में अपना दल इकट्ठा करके फिर वह चित्तौड़ पर चढ़ आया। पहिले युद्ध में राजपूतों के बड़े २ शूर सामन्त मारे गये थे वे अपनी कमी पूरी करलेते इतना भी समय उनको अलाउद्दीन ने नहीं दिया तौ भी राजपूत जितनी सेना इकट्ठी कर सके उतनी सेना इकट्ठी करके मुसल्मानों से लड़ने को उद्यत हुए।

चारण रामनाथ रत्न ने इतिहास राजस्थान में लिखा है कि "सिसौदियों ने गढ़ में बैठकर लड़ाई की यह उनकी बड़ी भूल हुई और इनसे पीछें भी महाराणा प्र-तापसिंह जी तक यह भूल होती गई जिससे मुसल्मानों को प्रायः विजय पाने का अवसर मिला क्योंकि गढ़में बैठकर लड़ने से राजपूत लोग घिर जाते थे, देश सब शत्रुओं के हस्तगत हो जाता था, प्रजा को शत्रुओं से ब-

चाने वाला कोई नहीं रहता था शत्रुओं को सब प्रकार से सुख रहता था उनको केवल इतनी सावधानी रखनी पड़ती थी कि गढ़ पर बाहर से अन्न व जल न पहुंचने पावें जिसे से कि गढ़ के भीतर के अन्न व जल के बीत जाने पर दो तीन दिन भूखे मरके विवश क्षत्रियों को बाहर निकाल कर लड़ना पड़ता। उस समय शत्रु तो सब प्रकार रण योग्य होते और क्षत्रिय दो तीन दिनके भूखे इस लिये यद्यपि वे लोग बीरता से लड़ते तो भी अन्त को प्रायः सब के सब मारे जाते। वे बचते तो भी आपस में कट मरते क्योंकि ऐसे अवसरों पर क्षत्रिय सदा अपनी स्त्रियों को जला कर लड़ने को निकला करते थे फिर उनको इस संसार में रहना किसी प्रकार स्वीकार न होता था। इसी प्रकार राजस्थान के सब के सब राजाओंने देहली के बादशाहों से पराजय पाई।

महाराणा प्रतापसिंह ने इस प्रथा को छोड़ दिया था इस लिये अकबर जैसा प्रतापी बादशाह इनको पराजित न कर सका।

छ मास तक बराबर घमसान युद्ध होता रहा। किसी प्रकार विजय की आशा न रहने पर राणा भीम सिंह ने वंश रक्षा के लिये और शत्रुओं से भविष्यत में बदला

खोने के लिये अपने एक पुत्र अजयसिंह को मेवाड़ के पहाड़ों में भेज दिया शेष ग्यारह पुत्रों सहित केसरियां वस्त्र पहिन कर शत्रुओं का नाश करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।

जिस समय निराश राजपूत केशरिया वस्त्र पहिन कर रण भूमि में गये थे। उस समय प्रथम क्षत्राणियों का विचार भी लड़कर वीरगति को प्राप्त होने का था परन्तु यह विचार कर कि कदाचित् कोई स्त्री अर्थात् पद्मिनी शत्रुओं के हाथ पड़गई तब मान मर्य्यादा में कलंक लगेगा पद्मिनी व समस्त स्त्रियां एक बड़ी चिता में बैठकर सती होगई। आज भी उनकी चिता का प्रकाश कीर्ति रूप में हिन्दू जाति का मुख उज्वल कर रहा है।

चित्तौड़ में जाकर अलाउद्दीन ने पद्मिनी की तलाश की परन्तु वहां पर चिता की भस्म के सिवाय कुछ न मिलने पर अत्याचारी अलाउद्दीन बहुत पछताया और वहां के देव मन्दिर तुड़वा डाले।

भारत के किसी एक हिन्दू राजा पर शत्रु के आक्रमण करने पर अन्य राजा उसकी सहायता नहीं करते थे इसका ही फल यह हुआ कि हिन्दूजाति परतंत्रता को प्राप्त हुई इस समय यदि दो एक हिन्दू राजा भीमसिंह को सहायता

देते तब अलाउद्दीन को उसकी घृणित इच्छा का पूरा फल मिलता और आगे किसी बादशाह को एसा घृणित साहस न होता।

प्रभावती।
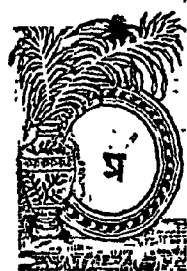
भावती गन्नौर के राजा की रानी थी। यह अत्यन्त सुन्दरी और चतुर थी। इसके सौन्दर्य्य की सुगन्धि चारो तरफ फैल रही थी। जिसको सुनकर यवन बादशाह ने गन्नौर पर चढ़ाई की। इस युद्ध में यह वीराङ्गना स्वयं रण भूमि में जाकर लड़ी।

जब बहुत से वीर सैनिक मारे गये और सेना थोड़ी रह गई तब किला यवनों के हाथ में चला गया। रानी इस पर भी नहीं घबड़ाई और बराबर लड़ती रही। जब किसी रीति से बचने का उपाय न रहा तो अपने नर्वदा के किले में चली गई, परन्तु यवन सेना उसका बराबर पीछा किये गई बड़ी कठिनाई से किले में घुस कर उसने किले का फाटक बन्द करा दिया। राजपूत यहां भी बहुत से लड़

कर मारे गये । यवन बादशाह ने रानी के पास पत्र भेजा जिस में यह लिखा था कि सुन्दरि ! मुझे तुम्हारे राज्य की इच्छा नहीं है मैं तुम्हारा राज्य तुमको देता हूं तुम मेरे साथ विवाह कर लो।

रानी को यह पत्र पढ़ कर बहुत क्रोध आया इस लिये पापी के साथ कपट करना उचित समझ कर उसकी दुष्टता का दंड देने के लिये उसने विचार कर यह उत्तर लिखा कि मुझको विवाह करना स्वीकार । किन्तु अभी आप के लिये विवाह योग्य पोशाक तैय्यार नहीं है । कल तैयार होजाने पर शादी होगी । बादशाह यह उत्तर सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । दूसरे दिन रानी ने बादशाह के पास एक उत्तम पोशाक भेज कर कहलाया कि इसको पहन कर विवाह के लिये शीघ्र आओ । रानी की भेजी हुई पोशाक को पहन कर बादशाह बड़ी खुशी के साथ शादी की उमंग में रानी के महल में आया। रानी का दिव्य रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ अनेक प्रकारकी बातें सोच कर जो आनन्द तरंग उसके हृदय में उठ रही थी उसका कुछ ठिकाना न था परन्तु शीघ्र ही यह आनन्द तरंग शोकसागर में मग्न होगई एकाएक भयंकर दर्द उसके शरीर में उठ खड़ा

हुआ। बादशाह दर्द से व्याकुल हो गया, और आंखो तले अंधेरा छागया शरीर की पीड़ा से चटपटा कर कहने लगा। अरे! रे!! रे!!! मैं मरा, रानी ने यह वचन सुन कर उत्तर दिया आपका जीवन अभी पूरा हुआ चाहता है आपके विवाह से पहिले ही आप की मृत्यु हो जायगी तुम्हारी दुष्ट इच्छा से अपने सतीत्व की रक्षा के लिये इसके सिवाय और कोई उपाय न था। कि मैं तुम्हारी मृत्यु के लिये विष से रंगी हुई पोशाक भेजती। इतना कहकर प्रभावतीने ईश्वर से कुछ प्रार्थना की और किले पर से नर्मदा नदी में कूद कर अपने प्राण त्याग दिये बादशाह भी वहां तड़फ २ कर तत्काल मर गया इस रीति से सती प्रभावती ने समय विचार कर अपने सतीत्व धर्म और कुल गौरव की रक्षा की।

पोरशिया।

ह रोमनगर निवासी मार्कसब्रुटस की पत्नी थीं। वह स्वतंत्र एवं देशहितैषी पुरुष था। पोरशिया अत्यन्त कुलवती, स्वरूपवती, गुणवती, विदुषी साहसी थी पति पत्नि में अत्यन्त प्रेम था। ब्रुटस कोई भी बात अपनी स्त्री से गुप्त नहीं रखता था। पोरशिया अपने पति के कार्य्य में सहायता व सलाह देती थी, रोम में प्रथम प्रजासत्तक राज्य था। उसके बदले राजासत्तक राज्य स्थापन करने का विचार जुलियर सिजर नामक सरदार ने किया। यह विचार स्वतंत्रता के पक्षपाती सरदारों को स्वीकार ही था। किन्तु कुछ लोगों ने मिलकर उस सरदार को मारडालने का विचार किया। इस कार्य्य में देशाभिमानी ब्रुटश भी शामिल था। कहा जाता है कि सिजरने ब्रुटश के ऊपर अनेक उपकार किये थे फिर भी वह इस भयङ्कर कार्य्य में शामिल हुआ इसका यह कारण था कि वह इस कार्य्य मेंअपने मित्रों से विचार कर रहा था,।

किसी २ समय वह निद्रा से जागृत होजाता था।

पोरेशिया ने विचार किया कि पतिदेव मुझसे कोई बात गुप्त नहीं रखते किन्तु न जानें क्या कारण है जो अत्यन्त चिन्तित रहते हैं और मुझसे कुछ नहीं कहते इससे प्रथम पति के विचार को जानने की उसकी इच्छा हुई।
परन्तु ब्रुटश स्त्रीयो से राजनैतिक गुप्त बात करनी पसन्द नहीं करता था।

पोरेशिया बड़ी चतुर स्त्री थी वह जान गई कि वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन के काम में पतिदेव लगे रहते हैं और मुझे इस योग्य न समझ यह रहस्य नहीं कहा इस लिये उसने अपनी जंघामें छुरी मारली और किसीसे नहीं कहा जिससे ब्रुटस को उसकी सहनशीलता की परीक्षा होजाय।

उसके बीमार होनेका कारण उसके पति व अन्य लोगाने पूछा किन्तु उसने नहीं बताया। एक दिन ब्रूटश ने बीमारी के कारण को जनाने के लिये अत्यंत आग्रह किया तब पोरशिया ने उसके विचार व चिन्ता की बात जानने की इच्छा की। ब्रुटश ने कहा "कि कुछ ऐसी बातें हैं जो स्त्रीयों से नही कहनी चाहियें"। तब पोरशियाने कहा कि "मैं भी अपनी बीमारी का कारण आपसे नहीं कह सकती। यह सुनकर ब्रुटश अत्यन्त आतुर

हुआ अपनी स्त्री की बीमारी का कारण जानने को अत्यन्त अधीर होगया। जब पोरशिया ने देखा कि वे कुछ राहपर आये हैं तब उसने अपने पति से कहा कि "प्राणेश्वर! आपने मुझको अपने समस्त सुख दुखों की भागी बनाने के लिये विवाह किया है। यदि आप मुझसे कोई बात गुप्त रक्खेंगे तो मैं आपकी सहायता कैसे कर सकूंगी? और आपकी बात गुप्त रखसकूंगी इस बातका आपको विश्वास कैसे करा सकती हूं! यद्यपि वास्तव में स्त्री जातिका विश्वास करना उचित नहीं है किन्तु आप जानते हैं कि उत्तम समागम से स्त्री जाति के सामान्य दोष नष्ट हो जाते हैं मैं केटो के समान योग्य पिताकी पुत्री हूं। आप इस बातको जान कर आश्चर्यान्वित होंगे कि मैंने आपके विचार को गुप्त रखने को अपनी योग्यता की परीक्षा करने के लिये अपनी जंघा में जखम किया है। मेरी इस उत्कंठा व मेरे धैर्य को देखकर भी आप अपनी बात को मुझ से गुप्त रक्खेंगे?" ब्रुटसने अपना समस्त विचार अपनी स्त्री से कहा पोरशिया उस भयंकर विचार को जान कर दुःखित हुई; किन्तु उस बातको गुप्त रखने का वचन दे चुकी थी जिससे शांत रही।

सिझर को मारने के लिये ब्रुटस तलवार लेकर चा-

हर जाने लगा, उस समय पतिव्रता पोरशिया अधीर सी होगई किन्तु फिर भी उसने अपने हृदय का भाव दूसरे पर प्रकट नहीं किया। सिभ्फर को ब्रुटस ने मारडाला सिभ्फर के मित्रों ने खूनी की तलाश की ब्रुटस उन लोगों के सामने लड़ा, परन्तु अन्त में पराजित हो शत्रुओं का कैदी हुआ, ब्रुटस ने शत्रुओं के बदले आत्महत्या करना उत्तम समझकर प्राण त्याग दिया। पतिव्रता पोरशिया यह समाचार सुनकर मरने को उद्यत होगई। अन्य कोई उपाय हाथ न आने से अग्नि के अंगारे मुख में रखकर उसने आत्महत्या कर अपने पति के साथ परलोक गमन किया।

—०—

पन्ना।

-:0:-

आदर्श रमणी पन्ना ने जिस प्रकार अपने प्राणप्रिय पुत्र का बलिदान किया। संसार के इतिहास में अपनी आंखोंके देखते स्वयं कहकर अपने पुत्रको स्वामी कार्य्य में बलिदान करनेवाली शायद ही कोई स्त्री या पुरुष हो।

राणा सांगा जी की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह गद्दी पर बैठे किन्तु घरेलू झगड़ों के कारण बून्दी के राव सूरजमल का वध कर स्वयं भी उसके आदमियों से मृत्यु को प्राप्त हुए। इनके पश्चात् १५३५ ई० में इनके भाई विक्रमादित्य गद्दी पर बैठे। यह राज्य के योग्य न थे स्वाभाविक भीरु, अभिमानी और उद्दण्ड थे। एक बार विपत्ति के समय में इनके पिता सांगा जी को अजमेर के राव कर्मसिंह ने बड़ी सहायता दी थी। यह उसको भूल गए और उनका भरी सभा में अपमान किया और पिटवाया। जिससे सब सरदार इनसे रुष्ट होगए और सांगा जी के भाई पृथ्वीराज के खवास पुत्र बनवीर के पास जाकर चित्तौड़ की गद्दी पर बैठने की प्रार्थना की वनवीर जिस समय चित्तौड़ आया उस समय कोई भी विक्रमादित्य का साथी न था इस लिये वनवीर ने उसको पकड़ कर मारडाला।

गद्दी पर बैठने के पीछे बनवीर को राज्य लोभ ने ऐसा सताया कि उसने अब निष्कंटक राज्य करने का विचार किया। गद्दी का दावा करने वाला राणा सांगा जी का बालक पुत्र उदय सिंह था जो विक्रमादित्य के समय ही में बूंदी जाचुका था। उसे मार कर निश्चिन्त राज करने का वनवीर ने संकल्प किया। परन्तु

उदयसिंह की धाय को यह खबर लग गई। उसने तत्काल एक टोकरी में उदय सिंह को सुला पत्ते आदि से उसे ढक एक नाई को सौंप कर कह दिया अमुक (फला) स्थान पर जाकर ठहरना। नाई को गये हुए थोड़ी ही देर हुई थी कि वनवीर उदय सिंह को ढूंढता हुआ आ पहुंचा। धाय से पूछा कि उदय सिंह कहां है। उसने अपने लड़के की ओर उंगली उठाकर कहा कि यह सोरहा है। वनवीर वहां पहुंचा और खंजर से उस के दो खंड कर डाले। रात का समय था तथा वनवीर उतावली में था इस से विना देख भाल किये ही उस बालक का वध कर डाला उदय सिंह मारे गये यह कहकर उनकी धाय चिल्ला कर रुदन करने लगी तब तो सम्पूर्ण रनवास में हाहाकार मच गया। समस्त रानियां शोक सागर में डूब गईं उदय सिंह जी की धाय खीची जाति की राजपुत्री थी उसका नाम पन्ना था। वह छिप छिपा कर उस नाई के पास जा पहुंची और अपने बालक राणा को ले प्रतापगढ़ देवलिया के रावल राजसिंह जी के पास जो कि बाघसिंह जी के पीछे गद्दी पर बैठे थे पहुंची। देवलिया के रावल अपने यहां उदयसिंह जी की ठीक रक्षा होती हुई न देख उन्हें लेकर डूंगरपुर के रावल आशकर्ण जी के पास पहुंचे।

आशकर्णजी की इच्छा उनकी रक्षा करने की थी परन्तु उन्हों ने विचार किया कि यदि वनवीर समाचार पाकर चढ़ आया तो मैं उसका सामना न कर सकूंगा अतएव उन्होंने कुम्भलमेर जाने की सलाह दी। वहां के वैश्य सूबेदार के यहां इस बालक की रक्षा निश्शंकता से होसकेगी और भेद भी न खुल सकेगा यह विचार कर पन्नाको कुम्भलमेर के लिये विदा किया। पन्ना ईडर हो कुम्भलमेर पहुंची। वहां देपरा जाति का जैन धर्मानुयायी राणा सांगा जी के समय ही से सूबेदारी करता था। पन्ना ने उसकी गोदी में उदयसिंह जी को रख कर सारी कथा कह सुनाई। आशाशाह इस घटना को सुन व्याकुल हुआ और उदयसिंह जी की रक्षा करने में वनवीर का कोप उसे और भी भयभीत करने लगा। उसकी माता जो पास ही खड़ी थी अपने पुत्रको इस प्रकार दुखित देख कर बोली कि बेटा स्वामी कार्य्यकेलिये भय तथा कठिनता की चिन्ता न करनी चाहिये। यह तेरे राणा सांगा जी का पुत्र है इस से यह तेरे माथे का मुकुट है। इसकी रक्षा तुझे करनी ही चाहिये इसलिये इसे अपने पास रख और अपने घर में अपने बच्चों के साथ मिला कर पालन कर इससे भेद भी न खुलेगा। परमेश्वर तेरे राणा को बड़ा

करेंगे और सब ठीक बानक बनेगा । धर्म्मपरायण अपने पुत्र को शिक्षा देने वाली वैश्य जाति की स्त्री को धन्यवाद दिये विना नहीं रहा जाता । स्त्रियों की भी प्रकृति कैसी होजाती है इसे दिखाने के लिये आशाशाह की माता का उदाहरण यथेष्ट है । पन्ना उदयसिंह जी को आशाशाह को सौंप वहां से चली गई । क्योंकि जैनी के बच्चे की धाय क्षत्राणी नहीं होती और यह भेद इससे खुल जाता तो परिणाम अच्छा न होता । पन्ना क्षत्राणी धन्य है जिसने कि अपने राजा की रक्षा के लिये अपने बालक के प्राण खोये और बड़े २ कष्ट झेल कर उसे निर्भय स्थान में पहुंचा आई । पन्ना की वीरता, चतुरता, कृतज्ञता, गम्भीर विचार दृढ़ता तथा साहस अनूपम थे । पन्ना यथार्थ में पन्ना (रत्न) ही थी । इतिहास में इसके समान स्वामिभक्ति का दृष्टान्त मिलना कठिन है ।

आशाशाह के यहां उदय सिंह तीन वर्ष गुप्त रीति से रहे । पीछे यह बात खुल गई और ग्राम २ फैल गई राणा सांगा जी के पुत्र को जीता सुन कर चित्तौड़ के सब भाई बेटे कुम्भलमेर में आ इकट्ठे हुए । उन्हों ने आशाशाहसे आकर उदयसिंह जी को पूछा तथा पन्नाको बुलवाकर उसका सत्कार किया । आशाशाह और पन्नाके

द्वारा अपना संदेह निवारण करके कुम्भलमेर उदय सिंह जी के नाम की आन फेर दी। इसके पीछे इकट्ठे होकर सब चित्तौड पहुँचे और वनवीर से सब लोगों ने कहा हम लोगों की इच्छा राणा जी के पुत्र उदय सिंह जी को चित्तौड़ की गद्दी पर बैठाने की है, इसलिये आप अपने घर को पधारिये जो आप प्रसन्नता के साथ चले जाओगे तो आप की धन सम्पत्ति सब साथ जाने दी जावेगी। क्योंकि एक समय हमारे कहने के अनुसार आपने इस गद्दा की रक्षा की है। अब आप हमारे कहने से ही यदि इसे छोड़ देंगे तो आपकी हानि करने वाला कोई नहीं है। यह बात वनवीर के चित्त में समा गई और वह अपना सब धन और बाल बच्चों को ले दक्षिण हिन्द में जा बसा। वनीवर के चले जाने पर उदय सिंह जी को चित्तौड़ की गद्दी पर सब सर्दारों ने मिल कर बिठा दिया।

वीरभद्रा।

—:0:—

रभद्रा राजा मानिकरावकी पुत्री थी। उसका प्रथम सम्बन्ध उसके पिताने राठौड़ राजकुँवर अरण्यकमलके साथ करने का विचार किया था, किन्तु वीरभद्रा उसके साथविवाह करना नहीं चाहती थी। यह जेसलमीर के समीप पुगल राजकुमार साधु की वीरता व पराक्रम की प्रसंशा सुनकर उसके साथ विवाहकरना चाहती थी। और उसने अपना यह विचार पिता से भी कहा। उसने उसे स्वीकार किया। जिससे मानिकराव ने वीर भद्रा का उसके साथ विवाह कर दिया। साधु वीरभद्रा को लेकर अपनी राजधानी में आनेके लिये चला। मार्ग में चलते २ चन्दन नामके स्थान पर विश्राम किया। यह समाचार अरण्यकमल को मिले। वह बदला लेने के लिये राठौड़ों की सेना लेकर वहां पर आ पहुंचा। साधु ने किसी प्रकार न डरकर वीरता पूर्वक सामना किया। दोनों सेनाओं के अनेक मनुष्य कट गये, वीरभद्रा अपने पति पर इस प्रकार आपत्ति आई देखकर कुछ चिन्तित हुई, किन्तु धैर्य्य धारण कर अपने पति

को लड़ने के लिये उत्साह देने लगी। और पतिके पराक्रमको देखकर मनही मन उसे धन्यवाद देने लगी। वीरभद्रा ने पति देव से कहा कि स्वामिन्! मैं आपके युद्ध चातुर्यको देखूंगी। यदि आप रण में वीरत्व को प्राप्त होंगे तो मैं आपके पीछे आऊंगी साधु अपनी पत्नी की इस तेजस्विताको देखकर प्रसन्न हुआ। दोनों क्षत्रिय वीरों ने द्वन्द्व युद्ध किया। और दोनों मूर्छित हो रण में वीरगति को प्राप्त हुए। वीरभद्रा अपने प्राणधन के गुम हो जाने से कुछ भी अधीर नहीं हुई और युद्ध क्षेत्र में चिता तैयार कर के प्राणपति के शव को गोद में ले शान्तभाव से जलकर भस्म होगई। इस प्रकार वीरभद्रा अपूर्व पतिभक्ति दिखाकर संसार में अमर होगई।

वीरबाला.

ह वीराङ्गना रूपनगर के राजा अमर सिंह की पुत्री थी। यह अत्यन्त सुन्दरी और धर्मात्मा थी। रात दिन ईश्वर भजन किया करती थी। यद्यपि इसकी बड़ी बहिन का निकाह औरङ्गजेब

से हुआ था। किन्तु इसकी यह प्रतिज्ञा थी कि यदि विवाह करूंगी तो वीर क्षत्रिय से करूंगी वरन् आजन्म क्वारी रहूंगी।

१२ वर्ष पश्चात् इसकी बहिन केशरवाई रूपनगर अपनी माता से मिलने आई परन्तु वीरवाला उससे माता के अनेक समझाने पर भी यह कह कर नहीं मिली, कि मैं ऐसी पापिन का मुख देखना नहीं चाहती जिसने अपना धर्म खोदिया और मुसल्मान की योग्या बनी, यदि डर कर पिता जी ने औरङ्गजेब को दे ही दिया था तब आत्मघात करके परमेश्वर की शरण लेतीं। जो गौवध करने वाले, देव मन्दिरों को गिराने वाले का मुख ही नहीं देखती प्रत्युत: उसकी पत्नी बनी हुई है। ऐसी पापिन का मुख किसी प्रकार नहीं देख सकती।

एक दिन वीरबाला एकांत में बैठी पूजा कर रहीं थी कि सहसा केशर बाई उसके पास पहुंच गई और हिन्दू धर्म तथा हिन्दू देवताओं की बुराई करने लगी। केशर बाई के यह दुष्ट वाक्य सुनकर वीरबाला को अत्यन्त क्रोध आया और उसने कहा:—जा दुष्टा मेरे सामने से चली जा पापिन तूने क्षत्रिय कुल को कलंक लगाया। जा मुख काला करके चली जा (दांत किच किचा कर) वरन तेरे हक में अच्छा न होगा। तेरी जिह्वा निकाल लूंगी।

खबरदार जो कुछ मुख से निकाला।

यह सुनकर केशरबाई बोली:—क्या मुख निकाल कर बोलती है तू जब ही जानेगी जब मियांके पैर दाबेगी इतना कहकर वहां से चली गई। केशरबाई ने देहली जाकर औरङ्गजेब को बहुत कुछ बहकाया। उसने तुरन्त परम सुन्दरी राजकन्या व्याहने के लिये १२००० अश्वारोही सेना बलात् राजकुमारी को रूपनगरसे ले जानेके लिये भेजी। परंतु उस राजकुमारी को यवन से व्याहा जाना पसन्द न था इस कारण उसने अपने पुरोहित द्वारा उदयपुर के महाराणा की सेवा में एक पत्री भेजी। पुरोहित इस पत्री को लेकर प्रसन्नता के साथ उदयपुर जा पहुंचे। राजकुमारी ने पत्री में यह लिखा था कि औरङ्गजेब मुझे व्याहना चाहता है परन्तु क्या राजसिंहनी गिद्ध के साथ जावेगी क्या पवित्र क्षत्रिय वंश की कन्या-म्लेच्छको पति बनावेगी ? इस प्रकार का आशय पत्री में प्रगट करती हुई अन्त में उसने लिखा था कि:—"सीसोदियाकुलभूषण क्षत्रिय वंश शिरोमणि मैं तुमसे पाणिग्रहण की प्रार्थना करती हूं। शुद्ध क्षत्रिय रक्त केवल तुम्हारी ही नसों संचारित है यदि तुम न आ सकोगे और तुम भी मुझे अपनी शरण देना स्वीकार नहीं करोगे तो मैं आत्मघात करूंगी और यह आत्म-

हत्या का पाप तुम्हारे सिर लगेगा"। इस पत्र को पढ राणा राजसिंह जी बड़े उत्तेजित हुए और थोड़े से छटे हुए योद्धा लेकर रूपनगर जा पहुंचे और बादशाही सेना का विध्वंश कर मार्ग में एक स्थान पर बैठ कर इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगे:—

मेरी जैसी इच्छा थी उसी इच्छानुसार आप मेरे हृदय के हार, शिर के मुकुट मिल गये हैं। मेरे अहोभाग्य है जो आपके समान पति मुझ दासी को प्राप्त हुए हैं। प्राणनाथ ! मैं उदयपुर पहुंचकर पतिव्रत धर्म्मानुसार आपके चरणों की सेवा करूंगी यही मेरी आन्तरिक इच्छा है। इस प्रकार वातचीत हो ही रहीं थी कि अमयलाल नामक भील औरङ्गजेब की सेना में से केशरबाई को हर कर ले आया और एक पर्वत की कंदरा में बलात्कार करने की चेष्टा करने लगा। यह देखकर केशरबाई उच्चस्वर से रक्षा करो! कोई दया करो!! ऐसा चिल्लाने लगी। यह हृदय विदारक शब्द राणा जी के कान में आये। सुनते ही राणा जी सशस्त्र वहां जा पहुंचे। केशरबाई इन्हें देखते ही रुदन करने लगी। राणाजी ने उसकी रक्षा की और उसको बंधनमुक्त करदिया। केशरबाई अति लज्जित होकर उनके पैरों पर गिर पड़ी और कहने

लगी "मैंने बिना सोच विचार इस उपद्रव को उत्पन्न किया है, राणा जी ! मैं आपकी अपराधी हूं, आप मेरे अपराध को क्षमा करें मैं आपके शत्रु की स्त्री आपके सामने क्षमा भिक्षा मांगती हूं, आप इस समय चाहो तो मार सक्ते हो, या जीवदान दे सक्ते हो, मैंने वीरबाला को अकारण दुःख पहुंचाया है ।,, राणा जी ने उत्तर दिया "केशरबाई आप घबराईये नहीं,, आपने क्षत्रिय की आन को देखा है ! मुझे तुमसे शत्रुता नहीं है, किन्तु तुम्हारी ही कृपा से मुझे यह दिन प्राप्त हुआ है । तुम अब मेरी शरण हो, किसी प्रकार की चिंता मत करो । वीरबाला बोली, "बहिन केशरबाई ! तुम लज्जित मत हो आपकी इच्छानुसार राणा जी व्यवहार करेंगे ।

भगवती देवी ॥

मातृमान् पुरुषो वेद ।

भगवती देवी रमाकान्त चट्टोपाध्याय की कन्या थी यह संस्कृत के असाधारण विद्वान् और धर्मात्मा थे इनके पास रहने के कारण भगवती देवी भी धर्मात्मा एवं विदुषी होगई थी । इस देवी का विवाह ठाकुर दास के साथ हुआ था । और इसके गर्भ से पं० ईश्वरचन्द्र ने जन्म लिया । बालाल्यावस्था में यह ईश्वरचन्द्र को धार्मिक शिक्षा देती और अनेक महापुरुषों की जीवनी सुनाती थी । तथा तुम्हारे पिताने अनेक कष्ट उठा कर विद्या प्राप्त की है इत्यादि ।

पाठकों के मनोरंजन के लिये यह बतलादेना भी आवश्यक है कि ईश्वर चन्द्र के पिता ने कैसे २ कष्ट उठाकर विद्या प्राप्त की थी । माता से उनकी गाथा सुन ईश्वर चन्द्र ने पिता के समान अनेक कष्ट उठाकर विद्या प्राप्त कर संसार का उपकार किया ।

ठाकुर दास के पिता रामजय इनको अंग्रेजी शिक्षा के लिये सभाराम वाचस्पति के घर छोड़ तीर्थयात्रा को चले गये

ठाकुरदास वाचस्पति के घर पर रहने लगे और जं-हाज के सीप सरकार नामक कायस्थ से अंगरेजी पढ़ने लगे। कुछ दिन पश्चात् शिक्षक ने ठाकुर दास को अति दुर्बल देखकर पूछा कि तुम दिन २ क्षीण क्यों होते जाते हो? इस पर उन्होंने उत्तर दिया महाशय! दिन में दो पहर के समय भोजन करता हूं और रात्रि में भोजन नहीं होता इसका उत्तर पूछने पर ठाकुरदास ने कहा, संध्या के उप-रांत ही वाचस्पति महाशय के भवन में लोग भोजन कर लेते हैं और मैं रात्रि के दश बजे के उपरान्त आपके गृह से वहां जाता हूं इस लिये हमारा भोजन नहीं होता, इस कारण अनाहार से मैं दुर्बल होता जाता हूं। इस पर शिक्षक ने कहा तुम यदि रसोई बना सको तो हमारे गृह निवास करो।

कभी २ शिक्षक सीप सरकार के ग्रह चले जाते थे तब अधिक रात्रि हो जाती थी और ठाकुर दास क्षुधा से कातर हो जाते थे। एक दिन शिक्षक अधिक काम में लगे रहने के कारण घर में न आने से ठाकुर दास क्षुधा से व्याकुल होकर एक वृद्धा जो लावा वेचती थी उसकी दुकान के सामने कुछ देर खड़े रहकर बोले, क्या थोड़ा जल दे सकती हो हमें प्यास लगी है। इस

पर वृद्धा ने पीतल की रकाबी में मुड़की (खीलें) देकर जल दिया। वह खाते खाते ठाकुरदास के चक्षुवों में जल आगया इस पर वृद्धा ने पूछा कि बाबा ठाकुर तुम क्यों रोते हो इस पर उन्होंने उत्तर दिया मां! आज सारे दिन हमारा भोजन नहीं हुआ। वृद्धा ने पूछा क्यों नहीं हुआ तब ठाकुरदास ने कहा कि प्रातःकाल से सरकार महाशय गृह नहीं आये। यह सुनकर दयामयी वृद्धा ने दधि भोजन कराया और कहा जिस दिन तुम्हारा भोजन न होवे उस दिन यहां भोजन कर लिया करो।

इत्यादि कथाओं को सुनकर ईश्वरचन्द्र अपने परिश्रम से वड़े भारी विद्वान् हुए। इन्होंने संस्कृत और बंगला वर्णमाला से लेकर कालेज की पाठ्यपुस्तकों तक की रचना की थी। विविध शास्त्रों में जिस समय यह विद्वान हुए उस समय इनकी माता ने एक दिन बाल विधवाओं के दुःख से कातर हो पुत्रसे से कहा "हे पुत्र! तू तो विद्या पढ़कर विद्या का सागर बना, परन्तु बता तो हिन्दू शास्त्रों में क्या चिरःदुखिनी विधवाओं का दुःख नाश करने का कोई उपाय नहीं? जिन शास्त्रों में दुःखी के दुःख दूर करने का उपाय नहीं ऐसे शास्त्रों को रख कर क्या लाभ है!,; विद्यासागर

माता का यह वचन सुनते ही उठ कर उनके चरणों में हाथ लगा कर बोले, "माता जी आपके चरणों के प्रभाव से मैं निश्चय ही दुःखिनी हिन्दू बाल-विधवाओं के दुःख को नाश करने का उपाय शास्त्र–सिन्धु मथन कर निकालूंगा। यह सुनते ही माता ने आनन्द से पुत्र को आशीर्वाद दिया। और विद्यासागर भी उसी दिन से शास्त्रों में विधवाओं के पुनर्विवाह की सम्मति ढूंडने लगे। दिन रात ढूंडते ढूंडते पराशर संहिता में में उनको विधवाओं के दुःख हरण के उपाय स्वरूप वचन मिले, जिन्हें देखते ही विद्यासागर आनन्द से विह्वल हो माता के निकट आये, और सारा वृतांत उन्हें सुनाया। उन्हीं वचनों के आधार पर उन्होंने विधवा विवाह के पक्ष में ग्रन्थ रच कर प्रकाशित किये। इन ग्रन्थों के प्रचार से वङ्गदेश में विधवाविवाह का आंदोलन आरम्भ हुआ। सारे हिन्दू उनके विरुद्ध होकर भांति भांति के अश्लील शब्दों में उनकी निन्दा करने लगे। विद्यासागर महावीर पुरुष थे। वे ऐसे हिन्दूओं की बातों से भयभीत नहीं हुये। और उन्होंने केवल ग्रन्थ रचना ही नहीं की किन्तु अपने उद्योग से हिन्दुशास्त्र के अनुसार कई बाल–विधवाओं के पुनर्विवाह भी कराये और उनका सारा व्यय स्वयं ही सहन किया। जब सब

आत्मीय और स्वजाती लोग उनके शत्रु बने, तब केवल माता ही पुत्र को उत्साह देती रही माता के स्नेह पूर्ण मधुर वचनों ने पुत्र के हृदय में असीम शक्ति का सञ्चार हुआ और इसी महोपकारी कार्य से विद्यासागर का नाम भारत में चिरस्थायी हुआ। माता की दयालु-ता का पुत्र ने भी अनुकरण किया।

मनिका।

—:0:—

निका देवी ने अफ्रीका के किसी नगर में सन् १७२ ई० में जन्म लिया था। जब यह छोटी थीं तब एक दासी को इनकी रक्षा और शिक्षा का भार दिया गया था। वह दासी भी बड़ी धर्म्म—परायणा और शान्त स्वभाव वाली थी। बालकपन से ही मनिका के कोमल हृदय में धर्म्म का बीज बोया गया था। जब कभी बाल-स्वभाव के कारण वह कोई निषिद्ध कर्म्म करती, तब वह धार्म्मिका दासी उसको वह काम करने से मना करती, और उसको कर्त्तव्य—परायणा होने का उपदेश देती।

धर्म्म के प्रति मनिका की प्रीति और विश्वास दिन पर दिन बढ़ने लगा, युवावस्था में तागस्ता नगर निवासी एक युवा पुरुष के साथ इसका विवाह हुआ। पति का स्वभाव अच्छा नहीं था। परन्तु मनिका सहिष्णुता, नम्रता, सप्रेम व्यवहार और मधुर वचनों से दुराचारी पति को सर्वदा सुपथ में लाने की चेष्टा करती थी। उसके जगद्विख्यात पुत्र सेण्ट अगस्तन के जीवन-चरित्र में लिखा है कि उन्होंने अपनी माता के मुख से कभी कठोर बचन नहीं सुने।

बहुत से स्त्री पुरुषों का यह विचार है कि सन्तान ताडना से सुधरती है किन्तु यह सर्वथा असत्य है, सन्तान का सुधार प्रेम के साथ जितना होता है उतना ताडना से कदापि नहीं होसकता। प्रत्युतः ताडना से श्रद्धा जाती रहती है।

वह अपने पास बैठने वाली स्त्रियों को हमेशा स्नेह-भाव से अच्छे २ उपदेश देती और कहती, "बहिनों! तुम अनपी जिह्वा से प्रेममयी वाणी बोलने का अभ्यास करो तब तुम्हें कोई दुःख नहीं देगा। कड़े शब्दों से कभी दुराचारी मनुष्यों को सुपथ में नहीं ला सकोगी, प्रेम-भाव और परमेश्वर के प्रति उसके मङ्गल की प्रार्थना के द्वारा ही

तुम उन्हें सुधार सकोगी । यह केवल मुँह से ही उपदेश नहीं देती थी किन्तु अपने जीवन में उसका दृष्टांत भी दिखाती थी । उसके चरित्र-लेखक ने लिखा है कि मनिका साधुता विनय और धर्मनिष्ठा के गुणों से अपने पति और परिवार के प्रति गम्भीर श्रद्धा की पात्र हुई थी । उसके सुन्दर धर्म्मभाव और पवित्र चरित्र को देखकर उसकी कर्कशा सास ने भी पीछे उसके धर्म्म में दीक्षा ग्रहण की और उनके पति ने भी सारे कुकर्म्मों को त्याग कर के धर्म का आश्रय ग्रहण किया ।

मनिका के दो पुत्र और एक कन्या थीं । उन में से एक पुत्र जिसका नाम अगस्तिन था, संसार में जो कि अगस्तिन के नाम से सुप्रसिद्ध हुआ है ।

उस समय उस देश के लोगों में न्याय और साहित्य शास्त्र की चर्चा बहुत होती थी । इस कारण जो लोग इन शास्त्रों में निपुण होते थे, वे पण्डित गिने जाते थे । अगस्तिन के माता पिता ने अपने प्यारे पुत्र को उन दोनों शास्त्रों में निपुणता प्राप्त करने के लिए कार्थेज नगर में भेज दिया था । यौवन का आरंभ, ज्ञान का अहंकार, और पास कोई उपदेश देने वाला अर्थात् शासनकर्त्ता न था । इस लिए कार्थेज नगर में अगस्तिन नाना प्रकार के पाप-कर्म्मों में

फंस नास्तिक बनगया । उसी समय उसके पिता की मृत्यु हुई ।

मनिका देवी अकेली ही युवावस्था में उन्मत्त पुत्र के कल्याण में नियुक्त हुई । सन्तान को कुकर्म में निमग्न देखकर पवित्र स्वभाव वाली धार्म्मिका माता का हृदय विदीर्ण होने लगा । मनिका ने पुत्रको बहुत समझाया कि "हे मेरे प्रिय पुत्र ! तूने बडी विपद का रास्ता पकड़ा हैं ।" कुछ काल तक तो मनिका के सब यत्न वृथा हुए । मनिका ने इस दुःख से खाना पीना और पहरना तक छोड दिया । परन्तु उससे भी कोई लाभ न देख दीन दुःखियों के एक मात्र शान्तिदाता परमेश्वर के निकट पुत्र के लिए प्रार्थना करने का ही एकमात्र उपाय अवलम्बन किया ।

मनिका प्रतिदिन मन्दिर में जाकर कुछ देर तक पुत्र के लिये प्रार्थना करती । पूजा के दिन धर्म्मगुरु से पुत्र के लिये विशेष भाव से प्रथना करने की प्रार्थना करती दो चार दिन तो गुरु ने उसका कहा माना परन्तु प्रतिदिन के कहने से किञ्चित विरक्त भाव से आशीर्वाद पूर्वक कहा "देवी ! तू घर जा, जिस पुत्र के लिये तू इतने अश्रु प्रभु के चरणों में गिराती है, वह पुत्र कभी एकबारगी न डूबेगा । " मनिका भी उचित जवाब पाकर लौट आई । जब कार्थेज में अगस्तिन ने सब विद्या सीख ली

तब रोम नगर में जाकर अध्यापक होगया। रोम नगर उस समय पृथिवी पर एक प्रधान नगर था। इसलिये वहां पर युवा पुरुषोंके कुपथगामी होनेका अधिक भय था। जब मनिका ने सुना कि उसका पुत्र रोम में जायगा तब तो वह और अधिक दुःखित माता ने अश्रुपूर्ण नयनों से प्राण सम पुत्र को रोम न जाने के हेतु बहुत मनाकिया। परन्तु उस दुराचारी ने एक न मानी। फिर मनिका देवी भी पुत्र के साथ जाने को तैयार हुई। अगस्तिन यह बात मान कर माता को समुद्रतट तक साथ ले गया। किन्तु रात्री में अभागिनी माता को वहां अकेली छोड़ कर वह दुराचारी और निर्दयी पुत्र स्वयं जहाज़ में चढ़ कर चलदिया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब माता ने देखा कि पुत्र चला गया, तब वह बड़ा विलाप करने लगी परन्तु परमेश्वर की कृपा और धार्म्मिका माता की प्रार्थना के बल से थोड़े काल बीतते ही वह कुपुत्र सुधर गया माता बड़े क्लेश सह कर पुत्र के पास गई। पुत्र ने माता के चरणों में पड़ कर क्षमा की प्रार्थना की। और सब पापकर्म्म त्याग कर धर्म्म जीवन प्राप्त किया। बिगड़े हुये पुत्र के फिर सुधरने पर माता का हृदय आनन्द और प्रेमसे भर आया। माता ने पुत्र को छाती से लगा लिया माता पुत्र

दोनों मिलकर खूब रोये क्रम से पुत्रका जीवन शुद्ध हुआ और फिर उसे धर्म्मगुरु का पद मिला। धन्य है, वह पुत्र जिसने ऐसी धार्मिका माता के गर्भ से जन्मलिया।

मरीची।

रीची सिक्किम देश निवासी यशलाल सिंह की पुत्री थी। यशलालसिंह का जन्म लेपचा वंश में हुआ था। यह जाति सौन्दर्य के लिये प्रसिद्ध है। इनके जीवनका उत्तम महत्व यही है कि वे परस्पर प्रीतिपूर्वक साथ में रहते हैं। वे भूखों मरना स्वीकार करते हैं किन्तु परतंत्र होना नहीं चाहते। मरीची अत्यन्त स्वरूपवती थी। उसकी उमर २० वर्षकी थी। बुद्ध देव के मन्दिर में जाकर वह देव सेवा किया करती थी। उसके पिता यशलालसिंह ने उसको वाल्यवस्था से उत्तम शिक्षा दी थी। इसने अपनी इच्छा से मन्दिर की कुमारिका श्रेणी में इस कन्याको रक्खा था। मन्दिरका लामा (बौद्धगुरु) हिन्दू धर्मशास्त्रज्ञ एक सन्यासीके पास अध्ययन करता था। उस सन्यासीसे मरीचि

ने भी संस्कृत और हिन्दी भाषा पढ़ी । मरीचीको उसका पिता बहुत चाहता था । वह कभी भी उसके विचार से विरुद्ध आचरण नहीं करता था । उसको पूर्ण विश्वास था कि मरीची कोई भी अनाचार नहीं करती । क्योंकि उसने अपनी कन्या की कई बार परिक्षा ली थी । मरीची का हृदय प्रेम से पूर्ण एवं सरल था । वह पर्वत के निवास के कारण सांसारिक प्रपञ्चों से दूर रही थी । वह स्वभावतः ब्रह्मचारिणी थी । पर्वतीय लोग किसी प्रकार के अत्याचारको सहन नहीं कर सकते उस देशका स्वभाविक धर्म है कि अनाचार से मरना श्रेष्ट समझते है । किन्तु धर्म त्यागना नहीं चाहते वे किसी से नहीं लड़ते और शांति से जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु अपनेपर जुल्म करने वालों के प्राण लेने में वे कुछ भी विचार या विलम्भ नहीं करते । मरीचीका ने भी पाप दृष्ठि करने वाले पांच पापियों को अपनी छुरी से वध किया । उस देश की विवाहित स्त्रियों के पास प्रायः ऐसी छुरियां नहीं रहतीं है। किन्तु मन्दिर में रहने वाली कुमारिकायें अपने धर्मकी रक्षा के लिये एक २ छुरी अपनी जटा में रखती हैं । एक दिन मरीची अपनी बहिन के साथ घूम कर घर पर आई, तो वहां एक साहेब आकर उसके द्वार

के पास घूम रहा था। उसकी बहिन तो थक गई थी इसलिये घरमें चली गई। मरीची को साहेब ने अपने पास बुलाया, वह निर्भयता से उसके पास गई जिस से साहब अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मरीची ने उसको मन्दिर लुटने के पहिले एक वार देखा था। साहब ने मरीची से कहा कि मैं इस देश का अधिकारी हूं। तुम मेरे साथ चलो मैं तुम्हारी सेवा करूंगा इत्यादि वचनो से उसे समझा ने व भय दिखाने लगा; किन्तु मरीची कुछ भी नहीं बोली। जब साहेब उसके पास आने लगा। मरीची उस से दूर हटने लगी; किन्तु साहब ने यकायक पकड़ लिया। मरीची उससे हाथ छुड़ा कर फिर दूर हट गई परन्तु फिर भी उस दुष्ट ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। तब मरीची ने क्रोधित होकर कहा:— कि "हे दुष्ट! यदि तू मेरे शरीर का स्पर्श करेगा तो अभी ही मैं उसका फल चखाऊँगी!" साहेब उन्मत्त होकर बोला कि "हे सुन्दरी! अभी तू निःसहाय है इस समय तेरी रक्षा कौन करेगा। इतना कह कर उस ने मरीची को पकड़ लिया मरीची ने बहुत बल किया किन्तु उससे छुड़ा नहीं सकी अन्त में उसने धर्म की रक्षा के लिये छुरी को जूड़े से निकाल कर साहेब की छाती में मार दिया। जिससे

यह चिल्ला कर पृथ्वी पर गिर गया और वह निर्भयता से चली गई।

इस समय पर्यन्त अनेक सती स्त्रियों ने अपने सतीत्व की इस प्रकार से रक्षा की है। इस लिये मरीची ने सतीत्व की रक्षा के लिये जो कुछ किया वह उत्तम ही किया था। इस कार्य के लिये उसे धन्यवाद है! इसके बाद दूसरे दिन अंग्रेजों ने सिक्किम को अपने कब्जे में करने के लिये प्रपञ्च रचने शुरू किये। वहां का मन्दिर लूट लिया जिसका वैर लेने के लिये कई स्त्रियां हथियार बांध कर अंग्रेजों के साथ लड़ने को तैयार हुई जिन में मरीची भी गई थी। अंग्रेज सेनापति घोड़े पर बैठकर लड़ाई के मैदान में गया वहां उसने सेना के बहुत से सिपाहियों के मुरदे पड़े हुए देखे। ज्यों २ आगे बढ़ने लगा त्यों २ अधिक मुरदे दिखाई देने लगे यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ और घोड़ा आगे बढ़ाया, किन्तु घोड़े के पांव फिसल जाने से वह नीचे कूद पड़ा। थोड़ी देर में उसके पांव में आकर एक तीर लगा जिससे वह एक पांव पर तलवार हाथ में ले खड़ा हुआ और इधर उधर देखने लगा। इतने में एक युवती कि जिसके एक हाथ में धनुष और दूसरे हाथ में कटार थी।

आती हुई देखकर साहेब को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और अपने हाथकी तलवार को दूर फेंक कर कहने लगा कि वीर कन्ये ! जखमी हुए सिपाही के ऊपर शस्त्र मत उठाना । देखो मैंने अब शस्त्र को छोड़ दिया है । युवती ने कहा कि अत्याचारी तू उस दिन की वातको याद कर पापी तू ने किस कारण से मंदिर के धर्म याचकों के ऊपर अत्याचार किया था । ऐसा कहकर जोर से वह रमणी उसके पास आ पहुंची सेनापति ने कहाकि, वीर कन्ये ! हम नारकी हैं, आपं कृपाकर क्षमा कीजिये युवती ने कहा कि अब मैं तुझे नहीं छोड़ना चाहती अभी इस कटार से तेरी छाती चीर डालूंगी । सेनापति ने गिड़ गिड़ा कर कहाकि आप छाती को चीर ने के लिये स्वतन्त्र है, किन्तु मैं एक भिक्षा मागता हूं । युवती ने कहा कि क्यां मांगते हो ! तेरे सहस्रों अपराधों को भूल कर मैं भिक्षा देना स्वीकार करूंगी । सेना पतिने कहा कि आज की लड़ाई किसने की ! आप किस की पुत्री हैं ? और आपका नाम क्या है ! युवती ने कहाकि मंदिर में रहने वाली स्त्रियों के द्वारा तुम्हारी सेनाका नाश हुआ है । मैं यशस्तालसिंह की पुत्री हूं मेरा नाम मरीची है सेना पति ने कहाकि अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा

कीजिये । यह सुनकर मरीची के हृदय में दया आई और हाथ की कटारी को छोड़ कर कहाकि अब आप जा सकते है । मैं आप को क्षमा करती हूं । इस प्रदेश में फिर कभी मत आना । साहेब अपनी तरवार को हाथ में ले मरीची को प्रणाम कर वहां से विदा हुआ । और मरीची मन्दिर में आकर सबसे मिली । उसकी इस वीरता को देख कर सब कोई प्रसन्न हुए । मरीची ! तेरी वीरता व तेरे साहस के लिये तुझे सहस्रों बारधन्यवाद है ! तूने अपने शौर्यसे अपने धर्म की रक्षा की और देश को पराधीनता से बचाया । ऐ चरित्र पठिकाओं मरीचीके विमल चरित्र से शिक्षा लेकर भारत का कुछ उपकार कर अक्षय पुण्य की भागी बनो ।

मालती

—:०:—

ती मालती सद्गुणों तथा नीति और व्यवहारिक कार्य्यों में चतुर थी। माता पिता का स्नेह कन्या होते हुये भी पुत्र से कुछ कम न था उसके पिता ने उसका विवाह उपवर्हण नामक श्रेष्ठ गन्धर्व से किया। वह स्त्रियों में शिरोमणी मालती अपने पतिव्रत धर्म्म में दृढ़ और आचर्णों में पवित्र होने के कारण केवल अपने पति को प्रसन्न करके सुख को नहीं प्राप्त करती थी प्रत्युतः समस्त लोकमें शीघ्र विख्यात होगई। किसी समय ब्रह्मलोक में महान उत्सव होने के कारण समस्त देव-कन्या एकत्रित हुई मालती और उपवर्हण भी इस महोत्सव में सम्मिलित हुए।

सभा में उर्वसी, मैंना, और रम्भा आदि अप्सरायें नृत्य कर रहीं थी। उपवर्हण रम्भाके सौन्दय को देखकर मोहित होगया। और कामवश लज्जा को त्याग कर मनोभाव को गुप्त न रख सका। यह देख कर ब्रह्मा जी ने अत्यन्त कुपित होकर कहा ऐ कामान्ध! अविवेकी पापी गन्धर्व यहां से चला जा और अपना कलंकी मुख मत दिखा।

उपवर्हण इस अपमान को न सह कर वहीं मूर्छित हो गिर पड़ा।

मालती पति की इस दशाको देखकर अत्यन्त विह्वल होगई। पति के शरीर का आलिंगन कर विलाप करने लगी "हाय! यह आपत्ति कहां से आयी हाय! नाथ! दीन दासी पर कृपा कर उठिये और मुझे धैर्य दीजिये। मैं आपको सहस्रों बार प्रणाम करती हूं आप मुझे कृपाकर अपनी अमृतमयी वाणी को एकबार सुनाइये। हे दीन बन्धो! आप इस दीन दासी को इस दुःख समुद्र से पार उतारिये! मुझे और कुछ भी नहीं चाहिये। केवल पतिके अपराध की मैं क्षमा मांगती हूं इत्यादि प्रार्थना कर वह जलकर मरने को तैयार हुई तब देवोंने दया की क्योंकि सती के कोप से राम सीता का वियोग हुआ। कौरव व रावण के कुलका नाश हुआ। इसलिये सती को कुपित नहीं करना चाहिये ऐसा विचार कर देवों ने उपवर्हण की मूर्छा का नाश किया और उसको पूर्व के समान बनादिया। पीछे मालती अपने पति के साथ आनन्द से अपने घर गई और सुखसे समय व्यतीत करने लगी। इस प्रकार सती मालती ने अपने पतिको देवताओं के अपराध से मुक्त किया।

मीरावाई।

—:o:—

मीरावाई मारवाड़ के राजा जयमल्ल राठोर की पुत्री थी। उसका जन्म संवत् १४८० में राजपूताने के नेरेटा नामक ग्राम में हुआ था। कर्नल टाटसाहव की सम्मति के अनुसार इसका विवाह मेवाड़ के सुप्रसिद्ध कुंभा राणा के साथ सन् १४६५ में हुआ था परन्तु माननीय मुंसिफ देवी प्रसाद जी की सम्मति के अनुसार मीरांवाई का विवाह सन् १५७३ में राणासांगा जी के पुत्र भोजराज से हुआ था। जो हो परंतु मीरांवाई का चरित्र आदर्श था। जिसको लिखकर पाठकों का हृदय पवित्र करते हैं। मीरांवाई के पिता जयमल जो विष्णु भगवान् के भक्त थे। पिता के ऐसे आचरण को देखकर मीरावाई का चित्त भगवान् की भक्ति में लग गया। मीरांवाई अत्यन्त स्वरूपवती थी उसके समान उस समय में और कोई भी स्त्री स्वरूपवती नहीं थी, दोनों स्त्री पुरुष साहित्य के अत्यन्त प्रेमी थे और दोनों काव्य शास्त्र व संगीत शास्त्र में कुशल थे। राणा जी मीरांवाई से राज्यकार्य्य में भी सलाह व सहायता

लेते थे और पति का धर्म अच्छी तरह से समझाते थे और उसके अनुसार आचरण करते थे। मीरांबाई दया परोपकार व ईश्वर भक्ति में प्रेम रखती थी। वह अपनी प्रजापर प्रेम रखकर उनके भलेके लिये राणा को बार २ शुभ सलाह दिया करती थी। इससे प्रजा उसके ऊपर अत्यन्त प्रेम रखती थी। मीराबाई का मन ईश्वर व पति की सेवा में लगा हुआ था वह पतिव्रत धर्मानुसार चलकर पति के मनको सदैव प्रसन्न रखती थी। अवकाश के समय में कविता बनाकर और संगीत सुनाकर महाराणा को प्रसन्न करती थी। प्रतिदिन राणा का मन सांसारिक विषयों की ओर आकर्षित होता था और मीरा का मन ईश्वर की ओर। यह जैसी शरीर की स्वरूपवती थी वैसी ही बुद्धिमती भी थी। वह विवाह के पश्चात् सुसराल में गई और स्वामी की सेवा में लगी फिर भी उसका मन ईश्वर भक्ति से किंचत भी चलायमान नहीं हुआ। वर धीरे २ संसार के क्षण भंगुर विषय सुखका त्याग करने लगी उसने राज्य वैभव के सुख भोगविलास तथा सांसारिक प्रपञ्च को छोड़ कर भक्तिमार्ग को स्वीकार किया। वह अपनी सखियों के साथ ईश्वर भजन करने लगी और श्री कृष्ण की स्तुति के भजन

बनाने लगी । उसका कण्ठ अत्यन्त मधुर था और वह कविता बड़ी उत्तम बनाती थी । उसके भजनों को सुनकर मनुष्य मुग्ध होजाते थे । वह अपनी सास से कहने लगी कि, "अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। आपके राज्य वैभव व भोग विलास को मैं क्या करूं मेरा मन तो श्री हरि में लगा है इसलिये मैं अन्य समस्त विषयों को छोड़ कर उसी का ध्यान व भजन करूंगी" वह इस प्रकार कहकर दृढ निश्चय पूर्वक भगवान् की भक्ति करने लगी । उसने चित्तौड़ के क़िले में रहकर ईश्वर भजन करनेकी अपेक्षा श्री कृष्ण के मन्दिर में जाकर उनकी भक्ति करना उत्तम समझा और इस प्रकार भजन करने का निश्चय किया । प्रथम दिन अपने स्वामीकी स्तुति कर उनकी आज्ञा ले उसने भगवत्मन्दिर में जाकर भगवान की भक्ति की । उसमें वह इतनी लग गई कि उसको कुछभी ज्ञान नहीं रहा । कुछ समय के पश्चात् उठकर वह अपने राममंदिर में आई । उस दिन से वह प्रतिदिन मन्दिर में जाकर अपने मधुर स्वर से ईश्वर का भजन करने लगी । वह अब राज महल को छोड़कर अपना अधिक समय ईश्वर भजन में लगाती थी फिर भी राणा जी उसको कुछ भी नहीं कह कर उसको सब

प्रकार का सुवीधा कर देते थे। और अपनी पत्नी का चित्त ईश्वर भक्ति में लगा देखकर प्रसन्न होते थे। मीरा बाई भूख प्यास की परवाह न करके भजन करने लगी। उसने अपनी भक्ति से अन्य लोगों के मन सरलता से ईश्वर की ओर आकर्षित किये। उसको इस कार्य से रोकने के लिये राजमाता ने अत्यन्त परिश्रम किया; किन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ। आखिर उसने मीराबाई को राज महल से बाहर निकाल दिया, राणाजी ने उसके लिये अलग महल का प्रबंध कर उसके भोजनादिका प्रबंध कर दिया। यह सब कुछ होने पर भी उसने भक्तिका त्याग न किया और उसमें दृढ़ रही, जिससे उसकी कीर्ति सम्पूर्ण देशमें फैल गई।

जब मीराबाई की अपूर्व भक्ति को दिल्ली के बादशाह ने सुना; तब उसके दर्शन व उसके भजन सुनने के लिये बादशाह आतुर हुआ। प्रकट रीति से मीराबाई को देख कर उसके भजन सुनने की इच्छा करना यह राजपूतोंके क्रोध के पात्र बनने का कार्य है यह समझ कर उसने अपने सुप्रसिद्ध गवैये को बुलाकर इस विषय में उसकी सलाह मांगी। तत्पश्चात् दोनों ने विचार कर सन्यासी के भेप में चित्तौड़के जिस मंदिर में महाराणी प्रतिदिन जाती

थी वहां आये और सर्व साधारण मनुष्यों के बीच में बैठकर मीराबाई का भजन सुना, इससे वे दोंनों मुग्ध हो गये। मीराबाई के समान सुन्दर नारी के कंठ के मधुर गायन सुनने से शहंनशाह के ऊपर इतना असर हुआ कि वह तुरन्त उठकर उसके चरणों में पड़ा और अपने पापों से छुटकारा पाने का व ईश्वर के मिलने का रास्ता पूछा साथ ही उसने अपने कपड़ों में से बहु मूल्य हीरे का हार निकाल कर उसके पास में धरा और कहा कि,—"मानीया देवी इस छोटी सी भेंट को स्वीकार कीजिये और अपने हाथ से इस देवमूर्ति को अर्पण कीजिये। मीराबाई ने उस हार को अपने हाथ में लिया और उसको देखकर कहा कि,—महाराज! यह हार बहुत मूल्य का मालूम होता है! आपके समान सन्यासी के पास ऐसी वस्तु कहां से आई है।

भेषधारी सन्यासी ने जवाब दिया कि देवी! हम यमुना जी में स्नान करने के लिये गये थे वहां से यह हमें मिला है इसे आप अपने आराध्य देव को अर्पण कीजिये हमें इसकी कोई जरूरत नहीं है। इसके पीछे मीराबाई ने उसकी दैव भक्तिको देखकर उनकी प्रशंसा की और वे दोनो सन्यासी चलते हुए।

इसप्रकार बादशाह हार अर्पण कर दिल्ली गया, किन्तु यही हार मीरांबाई के समान पवित्र नारी के संसार सुखका नाश करनेवाला हुआ। वह हार अधिक मूल्य का था, जिससे इसकी बात थोड़े समय में सर्वत्र फैल गई और अन्त में यह बात इसके स्वामी के कान तक पहुंची। जिससे उसने उस हार को देखने के लिये मंगवाया। जौहरियों से उसका मूल्य कराने पर १००००००) रु० मालूम हुआ। फिर एक जौहरी ने तो यहां तक कहदिया कि यह हार दिल्ली के बादशाह के यहां बिका था वही है। राणा जी को तलाश करने पर मालूम हुआ कि जो दो मनुष्य सन्यासी के भेष में आये थे और हार दे गये थे उनमें से एक दिल्ली का बादशाह व दूसरा उस का गवैया था। मीराबाई के शत्रुओं ने राणा जी को बहकाया कि दिल्ली का मुगल बादशाह देखने के लिये आया था और उसने उसका स्पर्श कर हार अर्पण किया इससे मेवाड़ की निष्कलंकी शिशोदिया राजवंश की बद्‌नामी हुई है। इत्यादि कहकर राणा जी को खूब बहकाया. इससे वह मीराबाई के ऊपर नाराज़ हुए और उसको मारडालने की आज्ञा दी। किन्तु उस आज्ञा को पूरा करने का किसी को साहस नहीं हुआ। निदान राणा जी

ने मीरांबाई के पास विष भेजा। मीरांबाई ने सहर्ष उसको पीलिया किन्तु वमन (कै) होकर वह कुल विष निकल गया। और मीरांबाई अच्छी होगई। मीरांबाई ने उदयपुर रहना उचित न समझकर वहां से हरिभजन गाती और उपदेश देती हुई बृन्दावन चलीगई। मार्ग में सैकड़ों नरनारी इनके पवित्र उपदेश को सुनकर इसके साथ होगए बहुत थोड़े समय में ही मीरांबाई की कीर्ति समस्त भारत में फैलगई। राणा जी मीरांबाई की प्रसंशा सुनकर बृन्दावन गए और मीरांबाई को वहां से लिवा लाए। इस प्रकार समस्त जीवन मीरांबाई का ईश्वर भक्ति और पति सेवा में व्यतीत हुआ। मीरांबाई की अनेक कविताएं आज भी वैष्णव लोग बड़े प्रेमसे गायन करते हैं। धन्य है मीरांबाई की ईश्वर भक्ति को।

मैत्रेयी ।

—०—
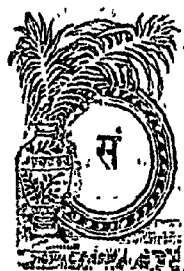
संसार में स्त्री जाति के इतिहास में यही स्त्री रत्न ऐसी है जिसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके योगाभ्यास किया हो। यद्यपि भारत वर्ष में हजारों पतिव्रता स्त्रियां हुई परन्तु इसके समान पति के साथ सन्यास लेकर ब्रह्म में लय होने वाली स्त्री शायद ही कोई हो।

महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियां थीं एक का नाम मैत्रेयी और द्वितीय का नाम कात्यायनी था। दोनों में मैत्रेयी अत्यन्त चतुर और विदुषी थी। इस सतीने याज्ञवल्क्य जी से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था और पति सेवा से जो समय बचता था उसमें सर्वसाधारण स्त्री पुरुषों को धार्मिक उपदेश देती थी।

यावल्क्यने चतुर्थाश्रम अर्थात् सन्यास ग्रहण करने के समय दोनों स्त्रियों को बुलाकर कहा :—"मैं वृद्ध होगया हूं इसलिये अब सन्यास ग्रहण करके वन में एकान्त तपस्या करते हुए शेष आयु समाप्त करने का मेरा

विचार है, तुम दोनों मेरी सम्पत्ति को बांट कर संसार में आनन्द पूर्वक निवास करो।

कात्यायनी ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया किन्तु परम विदुषी मैत्रेयी ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया:—'येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम्' अर्थात् जिस से मैं अमर नहीं हो सकती उसका क्या करूं। अर्थात् ब्रह्मज्ञान का उपदेश दीजिये जिसके प्राप्त करने से आपके समान मैं भी अमरत्व को प्राप्त होजाऊँ। मुझे क्षण भंगुर सम्पत्ति की कोई आवश्यकता नहीं। नाथ! आप जहां पर तपस्या करने जांयगे वहां पर ही मैं भी जाऊंगी और आपकी सेवा करती हुई मैं भी उसी अमृत को प्राप्त करूंगी जिसको आप प्राप्त करेंगे।

याज्ञवल्क्य जी मैत्रेयी का यह उत्तर सुनकर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक बोले:—प्रिये! मैत्रेयी तुम्हारी ब्रह्म प्राप्ति की पुनीत अभिलाषा सुनकर मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम जिस प्रश्न को पूछती हो उसका उत्तर सुनो:—

संसार में समस्त कार्य्य किसी विशेष स्वार्थ के आश्रय से होते हैं। जैसा कि स्त्री पति की इच्छानुकूल प्रिय नहीं होती प्रत्युत: आत्मा की कामना के अनुरूप स्वामी की प्रीति पात्र होती है। अर्थात् पत्नी अपनी ही इच्छा

के पूर्ण होने से सन्तुष्ट होती है यदि स्त्री पुरुष को कुछ न समझे तब पति की प्रेमपात्र नहीं रहती । वृद्धावस्था में पुत्र से सुख मिलने की आशा से ही पिता को पुत्र प्रिय होता है । इसीप्रकार वेद भी इसी कारण मनुष्यों को प्रिय है कि उसके मननसे इस लोक में सम्मान और परलोक में श्रेय होता है । इत्यादि दृष्टान्तों का अभिप्राय यह कि वास्तव में आत्मा ही प्रिय और स्त्री पुत्रादि केवल आत्म श्रेय के उद्देश्य से ही प्रिय होते हैं इससे स्पष्ट है कि आत्मा ही मुख्य है । इसलिये जिस प्रकार हो परमेश्व का साक्षात्कार करना चाहिये इसके लिये वेद का मनन और श्रवण करना चाहिये । इस प्रकार मनन और अभ्यास करते हुए परमेश्वर के तत्वरूप जगत् को जानसकते हैं।

इसके पश्चात् मैत्रेयी ने पूछा:—भगवान् आपने जिस महान् आत्मा के सम्बन्ध में कहा है क्या वह मोह में फंस सकता है ।

याज्ञवल्क्य:—नहीं वह आत्मा अविनाशी, है, अज्ञानता कभी आत्मा के से स्पर्श करने में समर्थ नहीं है ।

इत्यादि बहुत कुछ विद्वत्ता पूर्ण ब्रह्म विषयक सम्वाद हुआ जिसका वर्णन बृहदारण्य उपनिषद में लिखा है ।

उपनिषद् जो कि वेद के समान माननीय हैं उन उप

निषद् में लिखा है:—"तयोर्हि मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव" अर्थात् इससे मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी हुई।

एक बार याज्ञवल्क्य राजाजनक की सभा में गए वहां पर वैराग्य का उपदेश देने के बदले प्रयोग करके दिखाया जिससे राजा को वैराग्य उत्पन्न हुआ। यह दम्पति सन्यास धारण करके संसार में अक्षय कीर्ति छोड़ वैकुठं वासी हुआ।

गार्गी याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी व याज्ञवल्क्य का पूरा सम्वाद "मैत्रेयी गार्गी" नामक पुस्तक में है दीनबन्धु प्रेस बिजनौर से चार आने मिलती है।

एक दिन था कि जब हमारे यहां मैत्रेयी जैसी ज्ञानवती विदुषी स्त्रियों भारत को सुशोभित करतीं थीं। शोक आज उसी भारत वर्ष की स्त्रियां मूर्खता और द्वेष की मूर्ति बन रही हैं। हे! ईश्वर अब दीन भारत पर दयाकर मैत्रेयी जैसी स्त्रियों को भारत वर्ष में उत्पन्न करो जिससे भारत के सब दुःख दूर होजांय।

———————

मोरियापिया।

पुर्तगाल की रानी मोरियापिया सारे युरोप में वस्त्रालंकार से धनी थीं। सब से अधिक मूल्यवान रत्न इन्हीं के पास थे किन्तु यह कभी अहंकार नहीं करती थीं। उस समय में दया और परोपकार के लिए विख्यात थीं। पुर्तगाल में जितनी सभा हैं उन सभों में धन दान करती और स्वयं उनमें जातीं। ये घोड़े की सवारी और पानी के तैरने में बड़ी निपुण थीं। एक बार दो बालक समुद्र के तट पर खेलते खेलते पानी में गिर पड़े इतने में रानी ने उन्हें जलमग्न होते देख कर उसी क्षण समुद्र में कूद कर और बड़े साहस और यत्न से दोनों बालकों को डूबने से बचा लिया। ये बड़ी कर्तव्य परायणा और गृह कर्म में भी बड़ी निपुण थीं। सती स्त्रियां ही लक्ष्मी स्वरूपा होकर संसार को सुख और शान्ति से पूर्ण करती हैं।

❀ मन्दोदरी ❀
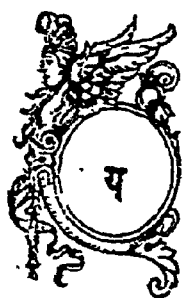
ह साध्वी राजा मयदेव की पुत्री थी जोकि अपने समय का अद्वितीय विद्वान् और धर्मात्मा था। इसको महाराजाधिराज वीर शिरोमणि परम विद्वान् रावण की धर्मपत्नी होने का सौभाग्य प्राप्त था। यह देवी परम तेजस्विनी नीतिपरायणा, और परम धर्मशीलवती थी। जिस प्रकार वीरवर रावण परम विचारशील और दीर्घदर्शी थे। उसी प्रकार यह विदुषी और दूरदर्शिनी और स्पष्टवक्ता स्त्री थी। जिसको यह धर्म समझती थी बड़ी निर्भीकता और विद्वत्ता के साथ उसका समर्थन करती थी। जिस रावण के देव दानव सब आधीन थे उस महाप्रतापी रावण के सामने भी अपने मन्तव्यों का प्रकाश करने में संकोच नहीं करती थी। राजनैतिक और धार्मिक कार्यों में रावण इससे सदैव सम्मति लिया करते थे।

महाराज रावण का सीता को दण्डकारण्य से लाना सुन दयामयी मन्दोदरी को बहुत दुःख हुआ, कि मेरे प्राणेश्वर ने यह क्या अधर्म किया जो पर स्त्री को बलात्

लंका में ले आए । फिर मन्दोदरी ने रावण को इस प्रकार समझाया ।

हे ! प्राणेश्वर ! आप परम विद्वान् एवं धर्मात्मा हैं आपका पर स्त्री को इस प्रकार बलात् ले आना धर्म और नीति के विरुद्ध हैं । इस लिये हे ! नाथ कृपाकरके आप सीता को रामचन्द्र के पास पहुंचा दें । क्योंकि अबला पर बल दिखाना वीरता के विरुद्ध है । और कुल को कलंक लगता है यश तथा वंश नाश करने वाला है । आपने त्रिलोक जीत रक्खे हैं । देव दानव सब आपके वश हैं । सैकड़ों परम सुन्दरी आपकी हर प्रकार सेवा को तैयार हैं । फिर आप ऐसा अनर्थ क्यों कर रहे हैं ।

यह सुनकर रावण ने हंस कर इस प्रकार कहा:—प्रिये ! आप क्या कह रही हैं, कि मैंने यह अनर्थ किया तुमको बिना पूर्वापर बात विचारे कोई सम्मति कायम नहीं करनी चाहिये । तुम जानती हो कि राम ने मेरी भगिनी की नाक काट कर उसको कुरुपा बनाया क्या इस प्रकार अबला पर अत्याचार करने वाले या बल दिखाकर बहादुर बनने वाले उस राम से बदला न लूं जिसने कि मेरी बहिन को कुरूपा करके मेरा अपमान किया । क्या ! प्रिये! तुम नीति के इस वाक्य को नहीं जानती कि:—

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधि रोहति ।
स्वस्थादेवोपमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥ १ ॥

अर्थात् पैर से मारी हुई धूलि भी ऊपर को उठकर बदला लेती है ; याने पदाघात करने वाले के सर पर चढ़ती है जो अपमान होने पर चुप रहते हैं उन से धूलि भी अच्छी है। देखो राम ने अकेली अबला पर कितना अत्याचार किया।

मन्दोदरी—नाथ ! क्षमा कीजिये आप की बहिन ने भी तो राम के स्त्री होते हुवे उनसे विवाह को कहा। और यदि दोष आप राम का समझते हैं तब राम को दंड न देकर अबला स्त्री को क्यों ले आए।

रावण—प्रिये ! देखो दशरथ के तीन रानियां हैं। और भी अनेक राजा और ऋषियों के कई पत्नियां हैं। तब उसका विवाह के लिये प्रार्थना करना क्यों बुरा है। और राम ने स्त्री को कष्ट दिया है इस लिये मैं भी राम को स्त्री का कष्ट दूंगा। और सीता को किसी प्रकार कष्ट न दूंगा। उसकी सेवा के लिये अनेक दासियां छोड़ दी हैं। और उसको अपने महिल से पृथक् अशोक बाटिका में रक्खा है

एक दिन सीता और मन्दोदरी की प्रम विषयक वार्तालाप हुई। सीता की प्रसन्नता को देख कर उदार हृदया मन्दोदरी ने सीता की प्रशंसा की और पति के शत्रु की स्त्री होते हुवे भी मन्दोदरी ने सीता का बहुत सम्मान किया। और आकर हाथ जोड़ कर सीता की अत्यन्त प्रशंसा करते हुवे कहा नाथ! सीता परम ज्ञानी और सती है आप उनको राम के पास पहुंचा दीजिये क्योंकि राम के वियोग में सीता को भी अधिक कष्ट है और राम अलौकिक पुरुष है इससे बहुत संभव है कि आप रण में सफलता प्राप्त न कर सकेंगे।

रावण—सती तुम सत्य कहती हो सीता वास्तव में परम सती है। मेरे बार २ परिक्षार्थ भय दिखाने पर भी उसने कभी अपने व्रत से हटने का विचार भी नहीं किया। संसार इस बात को जानता है कि मैंने राम से उसके अत्याचार का बदला लेने के लिये बैर किया है। क्या मैं स्वाभिमान को त्यागकर कायर की भांति सीता राम को दे आऊं। यदि अब मैं स्वाभिमान का त्याग करता हूं तब संसार मुझे कायर और भीरू कहेगा मान नाश होने पर संसार में कल्पांत तक भी जीना वृथा है। कौन पृथिवी पर अमर रहेगा जब संसार में मृत्यु निश्चित

है तब वीरता के साथ मरना भला है।

यह असंभव है कि राम मुझे रण से जीतलें। यदि जीत भी ले और मेरी वीरगति (रण में मृत्यु) होजाय। तब क्या चिन्ता है क्योंकि रण में वीर ही मरते और मारते हैं शोक है तुम वीरपत्नी होकर किस प्रकार कायरता की बात कर रही हो। क्या ! तुम नहीं जानती " जयो वधो वा संग्रामे धात्रा दिष्टविः सनातनः,, अर्थात् ब्रह्माने युद्ध में जय और बध दो बात बनाई है।

मन्दोदरी०—नाथ ! देखो हनुमान ने लङ्का में आग लगा दी। इस से आप जान सकते हैं कि राम कितने प्रतापी हैं और उसकी महती सेना से आप कितनी कठिनता से जय प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि जब आप एक हनुमान को ही वश न कर सके तब उनकी सेना से किस प्रकार विजय की आशा की जाय।

रावण०—प्रिय ! तुम कैसी बातें कर रही हो? क्या तुम आशा करती हो, कि हनुमान जैसे मूर्ख सैनिकों से राम सहसा जय प्राप्त कर सकता है। देखो वह गुप्तचर बन कर आया और आकर कैसे उपद्रव किये निरापराध मालियों को मारा। और मैंने रामका दूत समझ कर उस को प्राणदण्ड नहीं दिया प्रिये ! धर्म की सदा जय होती

है । यद्यपि संसार समझता है कि मेरी सीता के साथ बुरी इच्छा है किन्तु मैं उसको परम सती समझता हुआ सीता का हार्दिक सम्मान करता हूं । यदि मैं सीता को कुदृष्टि से देखता तब मैं निश्चय हनुमान को मरवा डालता ।

युद्ध होते कई दिन समाप्त होगये । रावण का परम प्रतापी पुत्र मेघनाथ लक्ष्मण के हाथ से वीरगति को प्राप्त होगया । तब उसकी पत्नी सुलोचना रोती हुई मन्दोदरी के पास गई कि मुझे सती होने के लिये प्राणनाथ का सिर मंगा दो । प्रिय पुत्र के वियोग से परम दुखी मन्दोदरी विलाप करती हुई रावण के पास गई और रावण को समझा कर कहने लगी कि प्राणेश्वर ! देखो आपकी हट से कुटुम्ब की क्या दशा होगई । हाय हाय आज प्रतापी इन्द्रजीत भी इस युद्धाग्नि में बलि हो गया । शोक है तुम आज भी निश्चिन्त बैठे हो । विधवा सुलोचना के दुःख को देख कर ही सन्धि करलो अभी कुछ नहीं बिगड़ा । क्या ? आज भी तुम्हारा कठोर हृदय नहीं दुखता

रावण०—प्रिये ! क्या बात कर रही हो । मालूम होता है कि तुम धर्म और मर्य्यादा को पुत्र शोक में बिलकुल ही

भूल गई हो। आज तुम्हारे लिये सौभाग्य का अवसर है कि तुम्हारा पुत्र अपने पिता की आज्ञा पालत हुआ और मेरा अपमान करने वाले राम से लड़ता हुआ समराग्नि से बैकुंठ को गया। क्या प्रिये तुम मुझे इतना भीरु समझती हो कि मैं भी राम की भाँति विलाप करके रोऊं। जिसने लक्ष्मणके मूर्छित होने पर रणभूमि में विलाप करके क्षत्रिय कुल की मर्य्यादा को नष्ट किया। प्रियतमे! इस क्षणभंगुर संसार में कौन नहीं मरता जो जन्म लेता है वह अवश्य एक दिन मृत्यु को प्राप्त होता है। केवल वही जीवित है जिसका यश संसार में आदर्श हो। अब तुम इन्द्रजीत के लिये शोक मत करो वह वीरता के साथ लड़ता हुआ सदा के लिये संसार के बन्धनों को काट कर वैकुण्ठवासी होगया। कल मैं स्वयं रणभूमि में जाकर राम से पूरा बदला लूंगा।

रावण की इन वीरोचित बातों का कुछ उत्तर न देकर मन्दोदरी अपने स्थान को चली गई और सुलोचना से कहा पुत्रि! महाराज तो इस समय शत्रुदल से इन्द्रजीत का सिर नहीं मंगा सकते। इसलिये तुम स्वयं रामचन्द्र के पास जाओ और उनसे सिर लेकर संसार में अपने सतीत्व का ज्वलन्त उदाहरण छोड़ कर सती होजाओ।

यद्यपि राम हमारे शत्रु हैं किन्तु वह परम वीर हैं क्योंकि प्रिय मेघनाथ को मारनेवाला साधारण योद्धा नहीं हो सकता। तुम अधिक दुखी न होओ क्योंकि मेघनाथ वीरता के साथ रणभूमि में बैकुण्ठगामी हुआ है।

राम ने परमवीरता से मेघनाथ को मारा है इसलिये शत्रु होते हुए भी मुझे पूर्ण आशा है कि राम मेघनाथका सिर तुम को देंगे।

धन्य है सती मन्दोदरी तुम्हारे पवित्र और उदार हृदय को जो पुत्र को मारने वाले राम को घृणित शब्दों का व्यवहार न करके तुम उसकी वीरता पर भरोसा कर के वधू को राम के पास सिर लेने को भेजती हो।

सुलोचना के सती होने पर घोर संग्राम हुआ जिस में कुम्भकर्ण और प्रसिद्ध २ मन्त्री और सेना पतियों के मारे जाने पर कोलाहल मच गया। तब फिर मन्दोदरी रावण के पास जा कर उसको इस प्रकार समझाने लगी नाथ! आपकी इस हट से राज्य और कुल का नाश हो रहा है। अब कृपा करके अपनी हठ को छोड़ दीजिये। प्रबल शत्रु से सन्धि करना पाप नहीं है इसलिये आप जैसे हो राम से सन्धि कर लीजिए क्योंकि सन्धि करने से राज्य और कुल दोनों की रक्षा होजायगी। अभिमान

और लोभ मनुष्य की लौकिक और पारलौकिक उन्नति का नाश ही नहीं करते प्रत्युत: अधोगति को पहुंचा देते हैं। इस लिये आप से बार २ प्रार्थना करती हूं कि आप जय के मिथ्याभिमान को छोड़ कर राम से सन्धि कर लीजिये।

रावण ने दीर्घदर्शिनी मन्दोदरी की यह शिक्षा नहीं मानी और यह कह कर टाल दिया कि "अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति" अर्थात् सज्जन अपने प्रणको नहीं छोड़ते। इसलिये जो कुछ भी आपत्ति आएगी मैं सहर्ष सहन करूंगा किन्तु कायर बन कर राम की आधीनता कदापि स्वीकार न करूंगा।

मन्दोदरी की दूरदर्शितामयी सम्मति को रावण ने न मानकर कुल और राज्य का नाश किया। इस चरित्र से मन्दोदरी की दीर्घदर्शिता विद्वत्ता और स्पष्ट वादिता सिद्ध है।

कहा जाता है कि सतरंज के खेल की आविस्कर्त्री यही विदुषी थी सतरंज के खेलने वाले इस बातको अच्छी तरह से जानते हैं कि यह कितनी बुद्धिमानी से भरा खेल हुआ है।

रुक्मणि।

—!o!—

यह सती बिदर्भ देश के राजा भिष्मक की पुत्री थी। यह अत्यन्त स्वरूपवती और विदुषी थी। बालकपन से ही यह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने में प्राणों तक का सं- नहीं करती थी।

इसके भ्राता ने इसका विवाह मगध देश के राजा चेदी के साथ करने का निश्चय किया। किन्तु रुक्मणी को इसके साथ विवाह करना स्वीकार नहीं था क्योंकि प्रथम ही यह चित्त से द्वारका निवासी श्री कृष्ण को बर चुकी थी।

चेदी राजा के साथ रुक्मणी के विवाह की पूरी पूरी तैयारी होचुकी थी। सबसे कहा कि मैं चेदी राजा से वि- बाह न करूंगी किन्तु किसी ने एक न सुनी। निदान रुक्मणी ने श्रीकृष्णचन्द्र को पत्र लिखा कि हे! नरश्रेष्ठ! आर्यपुत्र! मेरा विवाह मेरी इच्छा के विरुद्ध चेदी राजा के साथ होने वाला है किन्तु मैं चिरकाल से आपको वर चुकी हूं इसलिये प्रार्थना है कि कृपा करके आप मुझे बलात् यहां से लेजाईये। मैं आपको अम्बिका देवी के

मन्दिर पर मिलूंगी। यह पत्र पातेही द्वारका से श्री कृष्ण वैदर्भ देशको चले किन्तु रास्ते में कुछ देर होगई तब रुक्मणी ने प्राण त्यागने का निश्चय किया। इतने में श्री कृष्ण आगए और रुक्मणी को हरण करके लेगये।

धन्य है रुक्मणी तुम्हारे दृढ़ विचार को जो प्राण देना स्वीकार किया किन्तु अपना निश्चय नहीं बदला।

लीलावती।

—:o:—
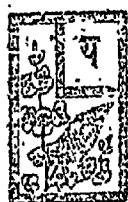
यह विदुषी धारा नगरी के राजा भोज की धर्मपत्नी थी। जिसके समय में भारतवर्ष में सब से ज्यादा विद्या का प्रचार था। महाराज भोज के समय में अनिवार्य्य शिक्षा का प्रचार था क्योंकि भोज की आज्ञा थी कि शिक्षित चाण्डाल भी मेरे राज्य में आ सके परन्तु अशिक्षित मेरे पुत्र को भी राज्य से निकाल दिया जाय।

भोज राजा स्वयम् परम विद्वान् था इसी प्रकार हमारी

चरित्र नायका लीलावती भी परम विदुषी थी इसने गणित का एक अपूर्व ग्रंथ लीलावती बनाया। जिसमें पद्य में गणित के नियम और प्रश्नोत्तर हैं यह ग्रन्थ बहुत सम्मान दृष्टि से देखा जाता है।

लोपामुद्रा !

यह सती विदर्भ राजा की पुत्री थी और इस का जन्म वैदिक समय में हुआ था।

यद्यपि यह राजपुत्री थी और राज्य वैभव में इसका लालन पालन हुआ था। सैकड़ों दास दासियां इसकी सेवा करते थे। इसको बाल्यावस्था से ही विद्योपार्जन की ओर अधिक रुचि थी।

वैदिक समय में कन्या के माता पिता या कन्या वर्तमान समय के समान धनवान् या राजा को देखकर कन्या को दुःख के कूप में धक्का नहीं देदेते थे। जहां पर कि वह पतिसुख को सम्पादन न कर सके ऐसी जगह भूलकर भी विवाह नहीं करते थे।

लोपामुद्रा का विवाह महर्षि अगस्त्य के साथ हुआ था जिनके पास कि खाने को भोजन पहरने को वस्त्र तक न थे। विवाह के पश्चात् यह महर्षि के साथ नंगे पांव वन में रहने लगी और छायानुरूप होकर मुनि की सेवा करती हुई मुनि से अध्यात्म विद्या सीखती थी।

अहाः! कैसे आश्चर्य और आनन्द का विषय है जो कोमलांगी राजकन्या सैकड़ों दास दासियों की सेवा से पाली गई थी वही आज भयंकर वन में मुनि की सेवा करती हुई पतिव्रत धर्म का पालन कर रही है।

इस देवी ने अपनी विद्वत्ता से ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं की रचना की।

इस परम तेजस्विनी सतीसे धमवाह नामक पुत्र हुआथा महर्षि अगस्त्य के साथ इस सती ने अनेकानेक देशों की यात्रा की थी। कहा जाता है मुनिराज अगस्त्य ने समुद्र को पान कर लिया था। इसका यही अभिप्राय मालूम होता है कि अगस्य मुनि ने समस्त समुद्रों की यात्रा की थी।

इस दम्पति ने तपश्चर्या तथा विद्या के द्वारा संसार में अक्षुण्य यश की स्थापना की।

विमला।

-o-

ह वीरांगना गुजरात के राजा जयशेखर की भगिनी थी जो कि सं० ६९५ ई० में पंचासुर नामक राजधानी में राज्य करता था। राजकुमारी विमला अद्वितीय सुन्दरी और बड़ी विदुषी थी।

किसी यात्रासे आते हुए सुलतान महाराज पञ्चापुर में ठहरे। उनको जयशेखर ने एक मास तक अपने मकान पर ठराया एक दिन जयशेशर ने सुलतान के राजकुमार को अपना शस्त्रालय दिखाया। अकस्मात् उसकी रानी ने कहा कि—"मैंने कभी शेर का शिकार नहीं देखा इसलिये मुझे इस शिकार के तमाशे को दिखाओ।" जयशेखर ने हंसकर उत्तर दिया "अच्छा तुमको यह तमाशा शीघ्र दिखायेंगे क्योंकि राजकुमार सुरपाल बड़े वीर पुरुष

हैं इस लिये दोनों मिल कर शेर का शिकार दिखायंगे । अगले दिन रानी और राजकुमारियों सहित जयशेखर शेर के शिकार के लिये वन को गया । एक मचान (पेड़ों के ऊपर लकड़ी वगैरा बांधकर निर्भय होकर बैठने के स्थान को मचान कहते हैं) पर रानी और राजकुमारियों को बैठाकर हाथी पर जयशेखर और मुलतान महाराज का पुत्र सुरपाल दोनों शिकार के लिये चले । कुछ दूर नदी के किनारे पर एक बड़ा शेर दिखाई दिया जयशेखर ने तीर मारा किन्तु निशान खाली गया । शेर गर्जता हुआ हाथी पर चढ़गया और जयशेखर को नीचे गेर दिया। जयशेखर को नीचे और शेर को ऊपर देखकर सुरपाल ने एक बाण मारा और स्वयम् भाला लेकर हाथी से कूदपड़ा और शेर को मारकर जयशेखर की जान बचाई ।

सुरपाल की वीरता देखकर विमला इस पर आशक्त होगई । और जयशेखर ने बड़े हर्षसे विमला का विवाह सुरपाल से करदिया ।

लाटदेश के राजा ने जयशेखर को युद्ध के लिये पत्र भेजा । जयशेखर ने उसको समझाने के लिये अपने सेनापति और सुरपाल को भेजा । इनके जाने के प्रथम ही

लाटदेश के राजा ने गुजरात पर चढ़ाई करदी इस युद्ध में सेनापति के मारे जाने से गुजरात की सेना रणभूमि को छोड़ २ कर भागने लगी। यह देखकर सुरपाल ने सेना को एकत्रित कर एकदम धावा किया। इस आक्रमण को लाटदेश की सेना न रोकसकी और युद्धभूमि से भागगई।

इस युद्ध के पश्चात् लाटदेश का राजा पंजासुर के महाराज से बहुत द्वेष रखनेलगा रातदिन इसी चिन्ता में रहता था किस प्रकार पंजासुर पर अधिकार करूं। अन्त में यह देखकर कि जबतक सुरपाल और जयशेखर में भेद न होगा मेरी आशा कदापि पूर्ण नहीं होसकती। दोनों में लड़ाई कराने के लिये अनेक प्रपंच रचने लगा एकबार लाटदेश के राजा ने सुरपाल को इस आशय का पत्र लिखा कि जय शेखर से अलग होनेपर तुमको उसके देश का बड़ा भाग मिलेगा।

यह पत्र सुरपाल ने पढ़कर सम्मति के लिये विमला को दिया जिसको पढ़कर विमला क्रोधित होकर बोली:— इस पत्र का लिखा जाना तुम्हारे और भाई दोनों के लिये अत्यंत लज्जा व शोक को उत्पन्न करनेवाला है क्योंकि बिना आपकी तरफ से किसी प्रकार इशारा पाए किसी को ऐसा पत्र लिखने का साहस नहीं होसकता। और इसका स्पष्ट

यह अर्थ है कि आप में और भाई में कोई विशेष बात हो-गई है। यद्यपि मैं अब गुजरात में नहीं रहती इस लिये और मुझे मुलतान के राजा की पत्नी होने से मुल-तान से ही अधिक प्रीति होनी चाहिये परन्तु मैं रिश्वत लेकर भाई के विश्वासघात की कदापि सम्मति न दूंगी। देखो लाट देश का राजा भूवड़ कहता है कि ''तुम्हारे पुत्र को पंजासुर की गद्दी पर बैठाऊंगा। क्या मेरा पुत्र अपने मामाको और उसकी प्रजाको मारकर राज करेगा इत्यादि कह कर बहुत शोक प्रकाशित किया और लाट देश के राजा को पत्र लिखवाया कि मेरा और जयशेखर का किस प्रकार का सम्बन्ध है इस लिये मेरा धर्म वि-श्वास घात करना नहीं है।

यह पत्र जाने के पश्चात् लाट देश के राजा भूवढ नें बलवती सेना लेकर पंजासुर पर चढ़ाई की। इस युद्ध में सुरपाल भी आया था। कई दिन तक बड़ी वीरता से दोनों ओर के योद्धा लड़ते रहे। अन्त में जयशेखर ने विजय की आशा छोड़ अपनी पत्नी रूपसुन्दरी जो कि 'उस समय गर्भवतीथी' उसे और विमलाकोशत्रु से बचानके लिये जंगल में एक सुरक्षित स्थान पर सुरपाल के साथ भेज दिया। इस युद्ध में जयशेखर वीर गति को प्राप्त हुआ।

भूवड़ ने स्वयं किले को विजय किया और अपने युवराज करण को सुरपाल की तलाश में भेजा किन्तु करण को सुरपाल नहीं मिला और करण तलाश करता २ वहां जा पहुंचा जहां पर कि रूपसुन्दरी और विमला छुपी हुई थी।

विमला ने यह देखकर कि शत्रुओं ने यहां भी पीछा नहीं छोड़ा और शत्रु निकट आरहे हैं। रूपसुन्दरि को एक पेड़ की खोकर में छिपा दिया। स्वयं छुपने न पाई थी कि करण सेना सहित पास आगया। अब विमला ने छुपना उचित न समझा कुछ भीलों को लेकर युद्ध किया परन्तु सेना के सामने गिने चुने थोड़े भील क्या कर सकते थे। सब मारे गये और करण बलात् रोती पीटती विमला को अपने साथ लेगया।

करण उसके रूप पर परम मोहित था। इसलिये इसने विमला को अनेक प्रकार के लोभ दिखाये किन्तु सती विमला ने एक बार भी इस दुष्ट की ओर न देखा।

जब यह विमला को प्रसन्न न कर सका तब इसके एक मित्र ने सम्मति दी कि जबतक विमला को सुरपाल से मिलने की आशा है वह कदापि आपको स्वीकार न करेगी। इस लिये आप यह प्रसिद्ध करदीजिये कि सुरपाल मरगया। सुरपाल को अपने मित्र की सम्मति बहुत

पसन्द आई। उसने एक पञ्जासुर निवासी ठाकुर को इस काम के लिये नियत किया। इस दुष्ट ने एक दिन रोते हुए विमला से जाकर कहा पश्चात्ताप है कि आपकी तलाश में फिरते हुए सुरपाल को विषेले सर्प ने काटलिया जिससे उनका स्वर्गवास होगया।

यह सुनते ही विमला विलाप करने लगी और उस दुष्ट ठाकुर से कहा शीघ्र चिता तैय्यार करो। वह ठाकुर वहां से चला गया और करण को यह समाचार सुनाया करण ने आकर विमला को बहुत समझाया परन्तु विमला ने एक न मानी। और कहाः—

"यदि तुम चिता तैय्यार न करोगे तब पीछे तुम्हे मेरा मृतक शरीर भस्म करना पड़ेगा"।

करण ने निराश महल के बाहर एक बडे चबूतरे पर चिता तैय्यार करादी। शहर के हजारों नर नारियां सती के दर्शनों को आने लगे।

इधर पञ्जासुर में शत्रु का अधिकार होगया। विजय की आशा छोड़ सुरपाल रूपसुन्दरि और विमला के पास गया। वहां जाकर देखा तो दोनों में से एक को भी वहां न पाकर एक भील से पूछा। भील ने रोकर कहा रूपसुंदरी तो नाले के पार जंगल में छुपी है जिसका मुझे ठीक २ पता

नहीं। परन्तु उनकी सेवा में दो एक भील हैं। आ आपके गुर्जर सवार तथा भीलों को मारकर करण विमला को जीवित बांधकर लेगया। यह सुनकर सुरपाल विमला को छुटाने का प्रयत्न करने लगा, कुछ भीलों की छोटी सी सेना बनाकर गुप्त रूप से करण की छावनी के पास पहुंचा वहां सुना कि आज विमला तीन बजे सती होगी यह सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ कि विमला की यदि अकाल मृत्यु हुई तो स्वर्ग में भी विमला से मिलना कठिन है। इत्यादि विचार कर धैर्य्य धारण कर साथियों को सचेत कर विमला को छुटाने का प्रयत्न करने लगा जब कि विमला सती होने के लिये चिता पर बैठ गई सहस. वहा से लेजा कर सुरपाल एकान्त जंगल में विमला से मिला और दोनों ने अपनी २ दुःखमयी कथा सुनाकर हृदय को शांत किया। इन दोनों के मिलने के आनन्द को लिखने की हमारी क्षुद्र लेखनी में शक्ति नहीं है। धन्य विमला तूने मरना स्वीकार किया। परन्तु धर्म न छोड़ा इसके ही फल से आज तुम्हारी पति से भेंट हुई कुछ दिन बाद सुरपाल ने मुलतान पर अधिकार कर लिया और रूप सुन्दरी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हुआ बड़े होकर मूरड़ स पंचा सुर का राज्य छीन लिया।

शकुन्तला।

ह सती कण्व मुनि की पालिता पुत्री और महाराज दुष्यन्त की पत्नी थी। इसकी उत्पति महाभारत में इस प्रकार लिखी है।

एक वार इन्द्र ने राजर्षि विश्वामित्र के तप से डर कर मेनका नाम्नी अप्सरा को विश्वामित्र जी का तप भंग करने के लिये वन में भेजा। उनसे जो सन्तान उत्पन हुई उसको मेनका वनमें छोड़कर चली गई। अकस्मात् महामुनि कण्व भ्रमण करते हुए वहां जा पहूंचे और उनकी दृष्टि इस कन्या रत्न पर पहुंची इसको अनाथिनी देखकर उन्हें दया आई और वह इसको अपने आश्रम में लेगए और पालन किया वहां पर इसकी रक्षा शकुन्तल नामक पक्षी ने की। इसलिये महर्षि कण्व ने इसका नाम शकुन्तला रक्खा।

शकुन्तला ने कण्व ऋषि की सत्संगति से धान्या-

वस्था में विद्या और अनेक गुण प्राप्त किये। यह पशु पक्षियों के साथ प्रेम करके और वृक्षों को जल देकर समस्त आश्रम वासी मुनि औरपशु पक्षियों की प्रेमपात्र बन गई। इसकी अनुपम दया से मृगों के बच्चे इसके साथ खेलते थे कोई हिंसक पशु भी इसको कदापि क्रूर दृष्टि से नहीं देखते थे वरन् इसके साथ प्रेम करते थे। किसी महात्मा ने ठीक कहा है "निस्वार्थ सच्चे प्रेमी से जड़ चेतन भी द्वेष नहीं करते,, इस सुवर्णमय वचन की यह देवी साक्षात् मूर्ति थी।

एक बार शकुन्तला अपनी सखियों के साथ लता कुँज में बैठी थी कि अकस्मात् राजा दुष्यन्त शिकार खेलते हुए वहां जा पहूंचे। उनकी दृष्टि इस कमलनयनी, खगमृगानुरागिणी तापस कन्या पर पहुंची। चार नेत्रों के होते एक ही दोनों में प्रेम उत्पन्न होगया और दोनों का परस्पर गान्धर्व विवाह होगया। कुछ दिन दुष्यन्त आश्रम में रहे और शकुन्तला को धूम धाम से राजधानी में बुलाने के लिये कहकर और स्मारक रूप अंगूठी देकर राजधानी को चलेगये।

एक दिन शकुन्तला आश्रम में दुष्यन्त के वियोग में चिन्तित बैठी थी कि दैवात् दुर्वासा मुनि वहां आनिकले।

यह देखकर कि शकुन्तला ने मेरा सम्मान नहीं किया क्रोधित होकर दुर्वासा मुनि ने शाप दिया:—'तुझे दुष्यन्त भूलजायगा, और जब वह अपनी दी हुई अंगूठी देखेगा तब तू याद आयगी।'

एकबार नदी में स्नान करते हुए शकुन्तला के हाथ से अंगूठी गिरगई। अनेक खोज करने पर भी नहीं मिली। और दुर्वासा के शाप से दुष्यन्त शकुन्तला को भूलगया। कुछ दिन पश्चात् इसके सुन्दर और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ।

पुत्र उत्पन्न होने पर मुनिराज कण्व ने शकुन्तला को उसके पुत्र सहित अपने शिष्यों के साथ दुष्यन्त के पास भेजा। दैव की गति बड़ी विचित्र है जब आपत्ति का समय आता है तब मित्र शत्रु होजाते हैं। किसी कवि का वचन है—"भवतीश्वरेच्छयाऽमृतं विषम्" अर्थात् ईश्वर की इच्छा से अमृत भी विष होजाता है। ठीक यही दशा हमारी चरित्र नायका शकुन्तला की हुई। दुर्वासा मुनि के शाप से वह दुष्यन्त जोकि शकुन्तला को प्राणप्रिये कहकर सम्बोधित करचुका था। जिसका वियोग दुष्यन्त के लिये असह्य था। आज अपनी प्राणप्रिया को भूलगया।

शकुन्तला ने दुष्यन्त से जाकर कहा मैं आपकी पत्नी और यह आपका पुत्र सेवा में उपस्थित हैं। इसके उत्तर

में दुष्यन्त कहा 'मैं तुमको नहीं पहचानता। फिर तुम कैसे कहती हो कि मैं तुम्हारी पत्नी और यह पुत्र है।' इतना कहकर दुष्यन्त बारम्बार अपने चित्त में यही विचारता रहा यद्यपि मैं इन दोनोंको नहीं पहचानता तथापि ईश्वर जाने क्यों मेरा चित्त इनकी ओर आकर्षित होता है। दुष्यन्त का उत्तर सुनकर शकुन्तला बोली:—

राजन्! भार्य्या धर्मकार्य्य में सहायक और आर्त मनुष्य की जननी स्वरूप है और यात्री के लिये विश्राम स्थान है। पत्नी का पालन करना पति का परम धर्म है। अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना मनुष्य का धर्म है आप मुझे पत्नी बना चुके हैं इसलिये प्रतिज्ञा का पालन करना आपका परम धर्म है।

शकुन्तलाने दुष्यन्त से वारंवार आग्रह पूर्वक कहा परंतु दुष्यन्त ने शकुन्तला का विश्वास न किया। शकुन्तला का इससे अपमान और महान् कष्ट हुआ। क्योकि संसार में पति यदि स्त्री को छोड़ दे तव इस से ज्यादा कोई कष्ट नहीं होसकता।

यद्यपि शकुन्तला का दुष्यन्त ने असह्य अपना किया तथापि यह आदर्श सती अपना दुर्भाग्य समझकर हाथ जोडे महान् दुःख सहती हुई चुपचाप खड़ी रही।

ईश्वर की दया से तभी एक मछियारा आया और उसने रत्नजटित सुन्दर अंगूठी राजा को देकर कहाः— राजन्! एक मछली के पेट से यह अंगूठी निकली है। इसे बहुमूल्य जान कर आपकी भेंट करता हूं यह वही अंगूठी थी जो कि दुष्यन्त ने शकुन्तला को दी थी यह स्नान करती हुए नदी में गिर गई थी और वहां पर मछली ने निगल लिया था। इस अंगूठी को देखकर दुष्यन्त को शकुन्तला का स्मरण होगया और बड़े सम्मान के साथ राजमहल में लेगए और रानी बनाया।

पतिव्रता शाण्डली देवी

महाभारत में लिखा लिखा है कि पतिव्रता शाण्डली मृत्यु के बाद जब स्वर्ग में गई, वहां पर देवलोक वासिनी सुमना देवी ने उन से पूछा कि हे देवी! तुमने पृथिवी में रह कर ऐसा क्या पुण्य किया था कि जिसके प्रभाव से ऐसा उच्चासन मिला है? शाण्डली देवी ने उस का धर्म और नीति पूर्ण उत्तर इस प्रकार से दिया थाः—

"हे देवी! मैंने शिरो मुण्डन जटाधारण गेरुये रङ्ग का कपड़ा या वल्कल पहिन कर स्वर्ग लाभ नहीं किया मैंने कभी अपने पति को अहितकर या कटु वचन नहीं कहे। मैं सर्वदा आनन्द चित्त और पतिव्रता होकर देवता और पितृलोक की पूजा और सास ससुर की सेवा करती थी। मेरे मन में कभी कुटिल भाव नहीं हुआ मैं कभी घर के बाहर के द्वार पर खड़ी होकर किसी पर पुरुष से बात चीत नहीं करती थी। क्या प्रगट में और क्या छिप कर कभी मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया जिसमें हंसी हो। मेरे पति जब बाहर से घर में आते तब मैं एक चित होकर उनको आसन देती और उनकी यथा नियम सेवा करती थी। जो खाने की वस्तु मेरे स्वामी को पसन्द नहीं होती मैं भी वह वस्तु नहीं खाती। पुत्र कन्या प्रभृति परिवार के लोगों के जो जो कार्य आवश्यक होते, मैं प्रति दिन प्रातः काल ही उठकर वह सब काम कर लेती थी, और दूसरों से भी करवाती थी। मेरे स्वामी यदि किसी काम के लिये विदेश को जाते तो मैं केश सुधारना तथा और सब प्रकार विलास सामग्री का व्यवहार करना परित्याग करती और संयत चित्त हो कर पति की मङ्गलकामना करती रहती थी। परिवार

और कुटुम्ब के लोगों के प्रति पालन के लिये उन्हें यथाशक्ति कष्ट नहीं देती। किसी गुप्त बात को बाहर या दूसरे के निकट प्रकाश नहीं करती, अपने सारे घर को स्वच्छ और साफ सुथरा रखती थी। तथा जो नारी निष्कपट हृदय से अपना कर्त्तव्य पाला करती हैं उन्हें निश्चय ही स्वर्ग होता है।

सती

यह आदि महासती महातरजा, दक्ष प्रजापति की पुत्री थी। बाल्यावस्था में इसने वेदादि विद्याओं को प्राप्त किया था। विद्याभ्यास के साथ साथ इसने कठोर तपस्या भी की थी। जिस के प्रभाव से यह परम तेजस्विनी थी। और इस सती का विवाह महादेव जी से हुआ था। महादेव जी (शिव) भिक्षा टन करके तपस्या करते थे।

एक वार दक्षप्रजापति ने यज्ञ किया जिस में अनेक देशों से राजा और ऋषि महात्मा आये थे। किन्तु दरिद्री होने के कारण महादेव जी को नहीं बुलाया था। पिता के यहां महोत्सव के समय सती से विना जाये न

रहा गया। उसनें महादेव जी से यज्ञ में जाने के लिये आज्ञा मांगी महादेव जी ने प्रथम तो बिना बुलाए जानेके लिये मना किया परन्तु पारवती की अत्यन्त इच्छा देख कर आज्ञा देदी। वहां पर पिता के मुख से महादेव जी की निन्दा सुनकर सती ने दक्षप्रजापति से कहा:—

अत स्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकंठ गर्हिणः। जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्ध मन्धसा जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते। अर्थात् तू शिव से द्रोह करता है और यह शरीर तेरे से उत्पन्न होने के कारण अपवित्र है इस लिये मेरे काम का नहीं। बुरा अन्न यदि भूल से खा लिया जाय तो उसको वमन द्वारा निकाल देना चाहिये।

यह कह कर प्रज्वलित अग्नि कुण्ड में पति का स्मरण करती हुई कूद पड़ी। यह दारुण समाचार सुनकर शिव जी अनुचरों सहित वहां आये और दक्ष का सिर काट दिया। चारों तरफ हाहाकार मचगया।

महादेव जी वहां से सती की भस्म और अस्थियों को लेकर तीर्थों में भ्रमण करने लगे। हिमालय पर जा कर बारह वर्ष तक कठिन तपश्चर्या की। धन्य है ऐसे दाम्पत्य प्रेम को।

हिन्दू शास्त्रों का सिद्धान्त हैं कि मृत्यु के समय

नुष्य का जहां ध्यान होता है वहां ही जन्म होता है। और यदि ईश्वर में ध्यान हो तो मोक्ष हो जाती है। पति प्रेम मग्न सती ने हिमालय के राजा के यहां जन्म लिया और कठिन तपस्या करके फिर महादेव जी से विवाह किया तब से यह पारवती नाम से प्रसिद्ध हुई।

एक बार शुम्भ और निशुम्भ नामक दो राक्षसो ने देवताओं से युद्ध किया ग्राम के ग्राम उजाड़ दिये। और अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगे जब ऋषि किसी प्रकार विजय प्राप्त न कर सके तब योग्य सेनापति की तलाश में दधीच ऋषि के पास गये और प्रार्थना करके उनको सेना पति बनाया। दधीच अत्यन्त बृद्ध थे कमर तक टेड़ी हो गई थी। इन्हों ने बड़ी रणचातुरी और बीरता से युद्ध किया अन्त में शत्रु के हाथ से वीरगति को प्राप्त हुवे।

तब निराश्रित यह शिव जी को सेनापति बनाने के लिये उनके पास गये। शिव जी उस समय समाधि में थे सती ने उनको सम्मान पूर्वक बैठाया और आने का कारण पूछ कर कहा:—मुझे समाधि से जगाने की आज्ञा नहीं है। इसलिये मैं स्वयं आपके साथ चल कर आपकी सहायता करूंगी। यह सुन कर सब चुप होगये। इनको

चुप देख कर पारवती उनका मनोभाव समझ कर बोली जिन स्त्रियों के शरीर से उत्पन्न हुये हो और जिनका दुग्ध पी कर वीर कहाते हो उन को ऐसा समझते हो। इन वचनों का इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा और सहर्ष पारवती को अपना सेनापति बना लिया।

पारवती हिमालय से आकर रणक्षेत्र के पास सुमन वाटिका में फूल तोड़ने लगी। जिसकी सुन्दरता की प्रशंसा सुन निशुम्भ ने पारवती को बुलाया। पारवती ने कहा रण में जीत कर मुझे लेजा सकते हो। निदान घोर संग्राम हुआ। जब पारवती ने निशुम्भ के बड़े २ योद्धा और सेनापति को मारदिया तब अन्तमें स्वयं लड़ने आया। लड़ते लड़ते पारवती निशस्त्र होगई तब निशुम्भ पारवती के बाल पकड़ कर घसीटने लगा। अकस्मात् शिव भी वहां आ निकले और पारवती की यह दशा देख कर निशुम्भ की छाती में त्रिशूल मारा जिस से वह तुरन्त परलोकगामी हुआ।

धन्य है सती तुम्हारे प्रेम, वीरता और पातिव्रत को जो निशुम्भ को मार कर देश में शान्ति स्थापित की।

सारामार्टिन

सारामार्टिन का जन्म सन् १७८१ में इग्लैंड के कईसार नामक ग्राम में हुआ था। इसका पिता बाल्यवस्था में ही छोड़कर परलोक गामी होगया था। इसकी माता ने उसका पालन पोषण किया था यह वन में वृक्ष के नीचे बैठकर पक्षियों के मधुर गाने का श्रवण करके अत्यंत प्रसन्न होती थी। किन्तु उसके पास पेट भरनेका कोई साधन न होने के कारण उसे पाठशाला छोड़कर दर्जी के कामको सीखना पड़ा और इस कार्य से जो द्रव्य उपार्जन होता उससे अपने पेटकी अग्नि को शांत करती थी। यारमाऊथ नामक नगर में अपराधी लोग नर्क के समान दुःख भोगते थे और उनपर अत्यंत अत्या चार होता था। सन् १८१६ में एक अपराधी स्त्री को कैद का दंड हुआ था। वहां उस हतभागिनी के पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु उस बालक पर उस स्त्री को प्रेम नहीं था। वह दुष्टा उसे दूध न पिला कर मारती थी। उस दुष्टा के इस कृत्य को देखकर दयालू सारामार्टिन के हृदय में बड़ी दया उत्पन्न हुई और उसे उपदेश दिये।

इसके सदुपदेश से वह निर्दयी स्त्री पुत्रको दूध पिलाने

लगी और स्नेह से उस बालक का पालन किया प्रेम व दया की मूर्ति सारामार्टिन को जेलखाने के कैदियों की दुर्दशा देखकर अत्यन्त पक्षपात होता था। इस लिये साराने अपने जीवनका आदर्श कैदियों का सुधार करना निश्चित किया। क्योंकि उसका विश्वास था कि मनुष्य कुसंगति से नीच कार्य करता है जिससे जेल जैसी कठिन यातनाएं भोगता है। यदि ऐसे मनुष्यों को जो एक दो बार ऐसे अपराध कर चुके हैं। धार्मिक उपदेश दिया जाय और सत्संग मिले तो अवश्य सुधर सकते हैं। इस विचार से नित्य जेल खानों में जाकर धर्म ग्रन्थ सुनाने और सदुपदेश करने लगी। यह लिखना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि देवी सारामार्टिन निर्धन थी। इस लिये सप्ताह में एक दिन दर्जी का काम करके पेट भरती और शेष दिन परोपकार में लगाती थी।

सन् १८२३ में सारा की माता का देहान्त होगया देहान्त के पश्चात वह अपनी जन्म भूमि को छोड़ कर यारमाऊथ नगर में आगई। और अपने कार्य्य को फिर आरंभ कर दिया।

परमेश्वर अपने भक्तों की सहायता करते हैं। और संसार उनकी सेवा करना अहो भाग्य समझता है।

देवी सारा को परोपकार में रत देख कर यारमाऊथ निवासिनी एक स्त्री ने हाथ से सिलाई करके एक दिन की मजदूरी सारा को देना स्वीकार किया जिससे सारा के महान् कार्य्य में बाधा न हो। शनैः २ सारा का यश चारों तरफ फैल गया और अनेक पुरुष इसको सहायता देने लगे। किन्तु यह देवी उसमें से एक पैसा भी नहीं लेती थी और उस धन की धार्मिक पुस्तकें लेकर कैदियों को बांट दिया करती थी। और अपना अधिकांश समय जेलखाने में व्यतीत करने लगी।

सत्य है मनुष्य जिस कामको सच्चे हृदय व परिश्रम से करता है उसमें चाहे प्रथम कितनी कठिनाइयां उठानी पड़े परन्तु एक दिन सफलता अवश्य होतीहै। निर्दय अज्ञानी और चोर भी सारा के सदुपदेश से से सदाचारी और ईश्वर विश्वासी बन गये। नगर के मनुष्य इसको अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति भाव से देखते थे। यह सब के दुःख में दुःखी और सुख में सुखी होती थी यह मजदूरों के विद्यालय में जाकर उनको मजदूरी के सुगम उपाय बताती और शिक्षा देती थी। चालीस पचास लड़कियां इससे घर शिक्षा प्राप्त करने आती थीं। सायंकाल को शहर के रोगियों के घर जाती और उनके

साथ प्रेम मय वर्ताव करती तथा अपने उपाय चिकित्सा सम्बन्धी बताती थी। इस प्रकार सेवाव्रत का पालन करती हुई सारा संसार का आदर्श बन गई।

ईश्वर प्रेम का उपदेश करती हुई सन् १८४७ में स्वर्गगामिनी हुई। परमात्मा हमारी बहिनों को भी ऐसी सुमति दो जो अपने देश या जाति की सेवा करें।

सावित्री।

रत वर्ष के भद्र प्रान्त में महाराज अश्वपति राज्य करते थे। इनके कोई सन्तान न होने के कारण गायत्री का जप किया जिससे मालवी रानी के उदर मद्रा सती सावित्री ने जन्म लिया यह रूप और गुणों में अद्वितीय थी।

जब यह युवावस्था को प्राप्त हुई तब इसके पिता ने मंत्री और सेना साथ देकर वर ढूंडने के लिये भेजा। अनेक राज कुमारों को देखा किन्तु कोई पसन्द नहीं आया तब अन्त में ऋषि आश्रम में राज चिन्ह युक्त अवन्ती के राजा द्युमत्सेन को पत्नी और पुत्र सहित तपस्या करते देखा उनके पुत्र सत्यवान परम तेजस्वी और स्वरूपवान् थे

जिसको देख कर सावित्री मोहित होगई।

समय की कुटिल गति से इस समय द्युमत्सेन किसी शत्रु से पराजित होकर वन में आ बसे थे। इस शोचनीय दशा में भी सावित्री ने सहर्ष चित्त से सत्यवान को अपना पति बनाया। मंत्री ने अत्यन्त समझाया परन्तु यह एक न मानी। किसी महात्माने ठीक कहा है "अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम्" अर्थात् प्रेम की व्याख्या अकथनीय है क्योंकि प्रेम में गरीब अमीर, सुन्दर और बदसूरत किसी की गणना नहीं होती।

मंत्री ने आकर सब हाल महाराज अश्व पति से कहा। राजा अपनी पत्नी मालवी से विचार कर ही रहा था कि सावित्री का राज्य भ्रष्ट सत्यवान से विवाह करना चाहिये या नहीं। अकस्मात् महर्षि नारद वहां आ पहुंचे राजाने बड़े सम्मान के साथ बैठा कर पूछा देव! सावित्री ने अपना विवाह सत्यवान से करने का विचार किया है। कृपा करके अपनी सम्मति दीजिये।

नारद मुनिने सावित्री की प्रशंसा करते हुए कहा:- "हे राजन्! सावित्री अत्यन्त विचारशाला है। और दृढ़व्रती है। इसलिये अब वह किसी की न सुनेगी। सत्यवान सब प्रकार से सावित्री के योग्य है किन्तु आज से

एक वर्ष बाद उसकी मृत्यु होगी परन्तु सावित्री का उससे अवश्य सम्बन्ध होगा।

इतना कह कर मुनि नारद वहां से चले गये। और राजा रानी दोनों ने ही सावित्री को बहुत समझाया परन्तु वह न मानी। अन्त में विवश होकर अश्वपति ने सत्यवान् से विवाह कर दिया।

जो सावित्री सैकड़ों दास दासियों के द्वारा पाली गई थी। जिसने कभी कोई कार्य्य न किया था और महिलों में रहती थी वही आज वन वासिनी हुई।

पति के आश्रम में आकर मन, शरीर और वचन से सास स्वसुर तथा पति की सेवा करने लगी। जब कभी सावित्री को पृथ्वी पर पड़ी व दासी के समान काम करती देख उसकी सास अपने पूर्न राज्य को याद करके रोती थी। तब सावित्री बड़ी सान्त्वना देती और समझाती थी। सावित्री के शिष्टाचार और सेवा व्रत से समस्त आश्रम वासी ऋषि मुनि प्रसन्न थे।

एक दिन जब सत्यवान वनको समिधा लेने के लिये जाने लगे तब सावित्री ने नम्रता पूर्वक कहा :—"देव! मैंने आपके इस वनको नहीं देखा इसलिये आज वन की रमणकिता देखने को चित्त करता है। सत्यवान ने

कहा माता से पूछो यदि वह कह देंगी तब सहर्ष साथ ले चलूंगा। सावित्री सास से आज्ञा लेकर सत्यवान के साथ वनको चली गई।

वहां पर सत्यवान के सिर दर्द होने लगा जिससे सावित्री अत्यन्त व्याकुल होगई। क्योंकि सत्यवान की आयुष्यका आज अन्तिम दिवस था। सावित्री पतिदेव का सिर गोद में धरे बैठी थी कि एक परम तेजस्वी पुरुष दिखाई दिया। जिसे देखकर सावित्री बोली यहां आप कौन हैं।

पुरुष—मैं धर्मराज हूँ और तुम्हारे पति के प्राण लेने आया हूँ। तुम पतिव्रता हो इसलिये तुमसे बोलता हूं। जो इच्छा हो वर मांगो।

सावित्री—मेरा प्राण लेकर मेरे पति को प्राण दान दो जिस से मैं सुखी होऊं।

यमराज—अच्छा तुम सुखी होगी परन्तु तुम्हारे पति जीवित नहीं रह सकते।

सावित्री—भला यह किस प्रकार सम्भव है कि पति के विना स्त्री सुखी रह सके। आप धर्मराज हैं इस लिये अपने वचन का पालन कीजिये और मेरे पति को प्राण दान दीजिये।

यमराज यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और सत्यवान को प्राण दान दिया और सावित्री को आशीर्वाद देकर कि तुम्हें पुनः राज्य प्राप्त हो चले गये।

यमराज के जाते ही सत्यवान् निद्रा से आलस्ययुत पुरुष के समान उठ के कहने लगा:—ओफ्! बड़ी निद्रा आई और देर होगई। चलो शीघ्र चलो मार्ग में इनको ढूंढते हुए इनके माता पिता मिले। आश्रम में जा कर सावित्री ने समस्त वृत्तान्त सुनाया जिस से समस्त आश्रमवासी प्रसन्न हुये और पुष्प बरसाये। आज हजारों वर्ष व्यतीत होने पर भी सौभाग्यवती स्त्रियां जेष्ट सुदी चतुर्दशी को सावित्री का यश गान करती और व्रत करती हैं।

सुकन्या।

इस सती का जन्म महाराज शर्य्याति के यहाँ हुआ था। राजा के और कोई सन्तान न थी इसलिये राजदम्पति की यह एकमात्र प्रेमपात्र थी। यह अत्यन्त सुन्दरी और सुशीला थी। इन के राज्य में एक परम-रम्य सरोवर (तालाब) था। वहां पर महर्षि भृगु के पुत्र समाधि लगाने से परमानन्द में मग्न च्यवन मुनि को बहुत दिन एक स्थान पर बैठे व्यतीत होगये।

यहां तक कि समस्त शरीर में मिट्टी जम गई और उनका शरीर मिट्टी के टीले समान हो गया।

एक दिन महाराज शर्याति इस तालाब पर भ्रमण करने को सकुटुम्ब गये। सखियों के साथ खेलती हुई सुकन्या मुनि उस मिट्टी के टीले के पास गई और उस में छिद्र देख कर लकड़ी डाल कर खेलने लगी, जिस से च्यवन ऋषि की आंख फूट गई और पानी निकने लगा जिसे देख आश्चर्य्यान्वित होकर सुकन्या ने अपने पिता से जाकर सब वृत्तान्त कहा। जिससे राजा अत्यन्त चिन्तातुर हुआ कि अवश्य कन्या से च्यवन मुनि का अपराध हुआ होगा। राजा ने शीघ्र आ कर उस टीले की मिट्टी उठवाई और वहां मुनि को देखकर उनके पैरों में गिर कर प्रार्थना की कि मेरी पुत्री से यह घोर अपराध अज्ञानता से होगया कृपया क्षमा कीजिये।

महर्षि ने उत्तर दिया कि राजन् मुझे उस कन्या पर क्रोध नहीं आया आप चिन्ता न करें। केवल इतनी चिन्ता है कि वृद्धावस्था में मेरी सेवा कौन करेगा क्योंकि मेरी दोनों आंखें फूट गई हैं। राजा ने उत्तर दिया आप चिन्ता न कीजये मैं अनेक सेवक आपकी सेवा को भेज दूंगा। यह सुन मुनि ने कहा अपनी कन्या मुझे अर्पण कीजिये क्योंकि

सेवक ठीक २ काम न कर सकेंगे।

मुनि के यह वाक्य सुनकर राजा अत्यन्त चिन्तित हुआ और विचारने लगा कि सुकुमारी पुत्री को किस प्रकार अन्धे और बहरे मुनि से विवाह दूं। और यदि नहीं विवाहता तो कुपित होकर यदि मुनिवर शाप देदेंगे तब कुल का क्षय हो जायगा। इत्यादि विचार राजा शर्य्याति कर ही रहा था कि सुकन्या वहां आगई और सब को चिन्तित देख कर पूछने लगी कि आज आप लोग किस चिन्ता में मग्न हैं आज और दिनके समान आनन्द क्यों दिखाई नहीं देता। क्या मुनि ने कुछ कहा है ? आप मेरे लिये इतने चिन्तित न हूजिये। मैं स्वयं मुनि की सेवा करूंगी और अपने अपराध को क्षमा कराऊंगी। और उनकी कृपा से योग साधन करूंगी। राजा ने सुकन्या के यह वचन सुनकर समझाया कि तू युवति है और मुनि वृद्ध व अन्धे हैं। इसलिये तेरा उनके साथ सम्बन्ध ठीक नहीं किन्तु सुकन्या ने एक न सुनी निदान राजाने उस का विवाह अन्धे च्यवन मुनि से किया। और अनेक प्रकार के बहू मूल्य वस्त्र और आभूषण देने का आग्रह किया। किन्तु सुकन्या ने कहा 'पिता जी मैं मुनि की अर्धाङ्गिनी बन चुकी हूं इस लिये इन रजोगुणी वस्तुओं की मुझे

आवश्यकता नहीं ! मुनि पत्नी होने के कारण मैं तदनु-
कूल वलकल धारण करूंगी। इसलिये यह मेरे योग्य नहीं'
यह कह कर सब वस्त्राभूषण वापिस कर दिये ।

विवाह के पश्चात् सुकन्या मन, क्रम, वचन से महर्षि
की सेवा में तत्पर हुई । मुनि से प्रथम उठकर सन्ध्या-
वन्दनादि को जल, समिधा एकत्रित कर देती और वन
से फलादि लाकर प्रथम मुनि को भोजन कराके स्वयं
भोजन करती थी। ।

एक समय अश्विनीकुमार भ्रमण करते हुये च्यवन
मुनि के आश्रम के पास से जाते हुये परम सुन्दरी सुक-
न्या को देख कर बोलेः—सुन्दरी तुम्हारे इस वनको प-
वित्र करने का क्या कारण है । आप इस वन में मेघों में
बिजली के समान शोभायमान हो रही हो । तुम्हारा यह
कान्तिमान शरीर वलकल धारण करने योग्य नहीं मालूम
होता है तुम राज कन्या या अप्सरा हो । अपना सब
सत्य सत्य हाल सुनाओ ।

सुकन्या ने अश्विनीकुमारों से अपना समस्त वृत्तान्त
कह सुनाया । जिससे सुनकर अनेक प्रकार के लोभ
दिखाकर कहने लगे सुन्दरि तुम राज कन्या हो इस लिये
वन में अन्ध पति की सेवा कर क्यों अपना समय नष्ट

करती हो हम दोनों में से किसी को पसन्द करलो और हमारे साथ चल कर अनेक प्रकार के आनन्द करना।

यह सुन कर सुकन्या अत्यन्त क्रोधित हो कर धैर्य पूर्वक बोली :—"शोक आप देवता होकर पर स्त्री को कुदृष्टि से देखते हैं आपको ऐसा कदापि योग्य नहीं मेरे लिये सांसारिक सम्पत्ति तृणवत हैं। मेरे लिये मेरे तपोधन पति ही रूप की खान व तीनों लोकों में ऐश्वर्य शाली हैं। तुम यहां से चले जाओ वरन शाप देदूँगी। सुकन्या के यह वचन सुन कर अश्विनी कुमार भयभीत क्षमा मांगते हुए बोले :—"देवी ! तू परम पवित्र है हमने तुम्हारी परीक्षा के लिये ऐसा कहा था। क्षमा करो हम देवताओं के वैद्य है इस लिये तुम्हारे पति को स्वरूपवान बलवान बनाकर नवीन नेत्र देदेंगे आश्रम में जाकर अश्विनी कुमारों ने चिकित्सा के बलसे च्यवन ऋषि को युवा बना दिया। जिससे राजा शर्याति आदि परम आनन्दित हुए और यज्ञ करके अश्विनी कुमारों को सोम पान कराया। धन्य है सती तेरे व्रत को।

संज्ञा—रनादेवी

ह साध्वी सूर्य्य देव की स्त्री थी। इस को रनादेवी और अब रांदेलमाता भी कहते हैं। यह बहुत ही विदुषी थी। इस का नाम वेदों की ऋचाओं के साथ भी देखा जाता है। इसमें धर्मनीति का अधिक बल था। उसने प्रजा में धर्मनीति के प्रचार के लिये उपदेश देने में महान् परिश्रम किया था। इससे यह सती सूर्यदेव को अत्यन्त प्रिय थी। उसने विवाह के समय अपने स्वामी से कहा था कि:—

"हे स्वामिन्! आप मेरे साथ रह कर सुख को भोग करें। मैं आपको सुख देनेवाली हूंगी। मेरे अनेक शुभ कर्मों के कारण देवताओं ने मेरा आपके साथ सम्बन्ध कराया है। मैं बाल यौवन और वृद्धावस्था में आपके कुटुम्ब की सेवा करूंगी। मैं सदैव आपकी आज्ञानुसार चलूंगी और नित्य निर्मल रहूंगी। सौभाग्य के दर्शानेवाले हाथ पांव कान और नासिका प्रभृति के आभूषणों को सदैव धारण करती रहूंगी। मन वचन और शरीर के कर्मों से आपकी ही सेवा करूंगी। मैं आपके पास रहकर जो सुख दुःखादि प्राप्त होंगे उन्हें प्रसन्नता से सहूंगी

मुझको आप सदैव अपने पास रक्खेंगे। प्राणेश्वर ! मेरा पालन करनें वाले आपही हैं आपही मेरे नमन करने योग्य हैं। इत्यादि उसने इस प्रकार प्रार्थना की थी। इसके सौभाग्य-पने की आर्यों में अत्यन्त महत्ता है, यहां तक कि विवाह संस्कारके समय कन्या को सौभाग्यप्रद आशीर्वाद दिया जाता है तब सूर्य रनादेवी का सौभाग्य अर्थात् सूर्य्य और रनादेवी का जिस प्रकार चिरकाल तक सौभाग्य रहा वैसेही ईश्वर इस कन्या का सौभाग्य चिरकाल तक रक्खे। ऐसा सौभाग्यवती स्त्रियाँ आशिर्वाद देती हैं। लोग अपनी मनोकामना पूर्ण होनेसे रांदल देवी की स्थापन कर उसका पूजन करते हैं। इस प्रकार उसने अपने सोभाग्य नीति के उपदेश से और पति सेवा के प्रताप से संसार में अक्षय यश को प्राप्त किया है !

रानी हेमन्त कुमारी।

ह साध्वी बंगाल प्रान्तार्तगत राजशाही जिले के पुतिआना के राजा योगेन्द्रनाथ के दत्तक पुत्र की पत्नी थी। इसके पति का थोड़ी ही अवस्था में देहान्त होनें के कारण यह युवावस्था में ही विधवा हो

गई थीं। वैधव्य दशा में राजमहिलों को छोड़ अपनी सास शरतसुन्दरी देवी के पास काशी में जा रही। ईश्वर भजन और शास्त्राध्ययन में समय व्यतीत करने लगी।

ईश्वरेच्छा से कुछ दिन बाद इसकी सास महारानी शरतसुन्दरी का भी देहान्त हो गया। सरकार ने यह देखने के लिये कि रानी राज कार्य्य सम्भालने के योग्य है या नहीं एक क्लक्टर को भेजा। क्लक्टर ने कई सज्जनों के साथ हेमन्तकुमारी के पास जाकर गणित, भूगोल और ज़मींदारी सम्बन्धी अनेक प्रश्न किये। रानी से सब का उचित उत्तर पाकर क्लक्टर ने धन्यवाद पूर्वक सलाम कर के कहा "रानी साहब आपको जो कष्ट हुआ इसके लिये क्षमा चाहता हूं"। इसके उत्तर में रानी ने कहा कि आपको बारम्बार सलाम करके प्रार्थना करती हूं मुझे मेरी सम्पत्ति दी जाय। और आपको जो कष्ट हुआ उसके लिये क्षमा चाहती हूं। यह सुनकर क्लक्टर ने कहा "मुझे राज्य देने का कोई अधिकार नहीं किन्तु मैं यथा शक्ति तुमको तुम्हारा राज्य दिलाने का प्रयत्न करूंगा। किन्तु आप अकेली इतनी सम्पत्ति का क्या करेंगी। रानी ने इस का उत्तर यह दिया 'मेरी स्वर्गवासिनी सास के कई काट परोपकार सम्बन्धी अधूरे रह गये हैं, उनको

परोपकारा के लिये पूरा करूंगी" कलक्टर ने रानी के अनुकूल रिपोर्ट की जिस से हेमन्तकुमारी राज्यकी उत्तराधिकारिणी हुई। जिससे इसने अनेक परोपकारी कार्य्य किये। इस के आचार विचार अत्यन्त प्रशंसनीय थे।

इसकी सास ने लाखों रुपया विद्यादानादि शुभ कार्य्यों में लगाया था। जिससे उसे सरकार ने महारानी की पदवी दी थी। सास के सहवास से यह भी दानशीला सुशीला होकर अपनी कीर्ति को संसार में अमर करगई।

हरुक।

स साध्वी का जन्म १८ मई १८५० ई० को जापान के एक उच्च वंश में हुआ १६ वर्ष की आयुमें जापान के वर्तमान सम्राट मिकाडो से विवाह हुआ। जिस समय इनका विवाह हुआ, जापान की रीति नीति में परिवर्तन हो रहा था। इन्होंने कुरीति निवारण करके सुधार करने में अत्यन्त प्रयत्न किया था। सब से पहिले युरोपियन पहिनावे का जापान में इन्होंने ही प्रचार किया। यद्यपि पहिनावा यह अंग्रेजी पहिनती हैं परन्तु आचार विचार अपने देश और जाति के अनुकूल

ही रखती हैं। क अपने जेबखर्च से दीन दुःखियो स-हायता देती हैं। चीन जापान के युद्ध में इन्होंने एक स्त्री सभा बनाई थी जो घायलों की शुश्रुषा करती और पट्टियां तैय्यार करती थी। १९०५ में रूस जापान के युद्ध में महाराज मेकाडो और यह अपने खर्च में एक पैसा भी खर्च नहीं करते थे। रणशायी सैनिकों की माताओं और विधवाओं को स्वयं सान्त्वना देती थीं।

प्रति वर्ष अपने सरदारों, जागीरदारों और दरबा-रियो को एक बार भोजन कराती हैं। आप अत्यन्त द-गावती और बुद्धिमती हैं।

समाप्त

सतीसुचरित्र ।

द्वितीय खंड ।

इस में अहिल्याबाई, अंजिनी, अदिती, उमादे, उत्तरा, उर्वशी, ऊषा, उभय कुमारी, कला, केतूबाई, कदलीगर्भा, कृष्णा कुमारी, कालिन्दी, कादंबरी, कोखोना, कामिनी, गान्धारी, चन्द्रप्रभा, चन्द्रमुखी, चित्ररेखा, जगत्कारु, तिलोत्तमा, त्रिमूर्ति, पद्ममिनी, भारती, भगवंती, बहूला वीरमती, यशेश्वरी, यमुना, रुक्मणी, रेणुका, रूपवती, राजिमती, रोहिणी, विक्टोरिया, वीराबाई, वेदमती, वनदेवी, लालवा, सिन्धुदेश की रानी, सत्यवती, सती, सरमा, सुव्रता, सत्यभामा सुलोचना, सुन्दरी, श्रद्धा और शिवा आदि अनेक पतिव्रता, विदुषी वीरांगना, और कलाकुशल में निपुण स्त्रियों के जीवन चरित्र हैं। और जल चिकित्सा जो कि सब रोगों में बिना औषधी केवल जल द्वारा ही एक विधिसे सब रोगों का नाश करती है। जिसके द्वारा स्त्रियां अपने गुप्त रोग और बालकों की चिकित्सा बड़ी सुगमता से कर सकती हैं वर्णन है। पृष्ट संख्या ५०० के करीब होगी छपने मूल्य १।)

वीणा ।

इस पुस्तक की अधिक प्रसंशा करना वृथा है । इसमें सामयिक पत्रों में छपी हुई अनेक उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह है । मतमतान्तर के विषय को छोड़ कर केवल देशहितैषी कविताएं हैं । टाईटिल पर सुन्दर भारत माता का चित्र है । यह चित्र क्या है ? भारत की चित्रकारी का अद्भुत नमूना है इस चित्र का आकार ठीक हिन्दुस्तान के नक़्से के समान है । सच पूछिये तो ।) चित्र का ही मूल्य है । मूल्य ।)

मेवाड़ का उद्धार कर्त्ता ।

यह पुस्तक प्रसिद्ध प्रोफेसर हरिदास माणिक द्वारा लिखी गई है । इस में मेवाड़ के उद्धार कर्त्ता महाराणा प्रतापसिंह को सहायता देने वाले भामा शाह की जीवनी बड़ी रोचकता से औपन्यासिक ढंग पर लिखी गई है । मूल्य केवल ≈)

हल्दी घाटे की लड़ाई ।

यह भी उक्त प्रोफेसर साहब द्वारा लिखी हुई पुस्तक है । इसमे हिन्दू पति महाराणा प्रतापसिंह की हल्दीघाटी की लड़ाई का वृत्तान्त ओजस्विनी कविता में है मूल्य ≈)

संयोगता हरण नाटक।

इस में प्रसिद्ध सती संयोगता का जबरदस्ती लाना और घोर संग्राम का वृत्तान्त नाटक रूप में लिखा गया है। मूल्य ॥)

जयश्री वा वीरबालिका।

यह परम रोचक ऐतिहासिक उपन्यास है। मूल्य ।=)

स्वाधीन विचार।

इस में प्रसिद्ध लाला हरदयाल एम० ए० के अनेक लेखों का अनुवाद है। मूल्य ।=)

महात्मा गौतम बुद्ध।

ऐसा कौन पुरुष होगा जिसने महात्मा गौतम बुद्ध का नाम न सुना हो और उनका पवित्र जीवन चरित्र पढ़ने की इच्छा न करता हो इस में उन्हीं का जीवन चरित्र लिखा है। मूल्य =)

पता—श्रोत्रिय पुरुषोत्तमदत्त
दीनबन्धु पुस्कालय बिजनौर

———

Printed and Published by Soti Jagdish Datta at the Deen Bandhu Press Bijnor.